चौमासा

वर्ष-24 अंक-73
मार्च -जून, 2007

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल,
बाणगंगा, भोपाल-462003
www.mpculture.in ● E-mail : directorculturemp@gmail.com

मूल्य
एक प्रति बीस रूपये
वार्षिक पचास रूपये
आजीवन सदस्यता पन्द्रह सौ रूपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

प्रचार/प्रसार
श्रीमती उर्मिला पारखे / प्रवीण गावण्डे

शब्दांकन
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण
लघुचित्र शैली, साभार

मुद्रण
शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, भोपाल

- चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।
- पत्रिका और प्रकाशन से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

डॉ. कपिल तिवारी, निदेशक, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक द्वारा शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, मैदा मिल, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक-डॉ. कपिल तिवारी

इस अंक में

कविता में ऋतुएँ / आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी / 5
लोकगीतों में सरस बरखा / रमेशचन्द्र पंडित / 12
बदरिया बरसो बिरन के देसा में / डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त / 16
बरखा गीतों में कजरी / डॉ. अर्जुनदास केसरी / 20
ब्रजमण्डल में पावस ऋतु / रागिनी चतुर्वेदी / 25
कुमाउनी ऋतु गाथा: रितुरैण / प्रो. देवसिंह पोखरिया / 30
निमाड़ी बारामासा की लोक कविता / वसन्त निरगुणे / 38
निमाड़ी कहावतों में वर्षा / डॉ. मंजुला जोशी / 55
जनजातीय वर्षा गीत / प्रो. गुलाब डाबर/डॉ. मंजुला जोशी / 58
कालई रे वादलई नीलई रेख.... / रमेश चन्द्र तोमर निमाड़ी / 61
लोकगीतों में वर्षा / डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर' / 69
अमान सिंह बुन्देला और प्राणसिंह धँधेरे कौ राछरौ / डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव / 72
बोलियों में राष्ट्रीय साहित्य / डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त / 85
लोकगीतों में राष्ट्र / डॉ. रामनिवास शर्मा / 93
बुन्देली साहित्य में राष्ट्रीय एकता / लखन लाल खरे / 98
छत्तीसगढ़ी गीतों में राष्ट्रीय चेतना / श्यामलाल चतुर्वेदी / 101
प्रथम स्वाधीनता संग्राम : अवधी-बुन्देली गीतों में / डॉ. परशुराम विरही / 105
प्रथम स्वाधीनता संग्राम और निमाड़ के आदिवासी / डॉ. शिवनारायण यादव / 109
ऐसो जोगी न देखो / डॉ. हरीमोहन पुरवार / 122
अमर शहीद महाराज बख्तावर सिंह / राधाकृष्ण बावनिया / 126
कालजयी बिरसा मुंडा / डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा / 128
श्रम गीत बिलवारी / गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त / 132
छत्तीसगढ़ की नाट्य परम्परा / प्रो. अश्विनी केशरवानी / 141
छत्तीसगढ़ी और मैथिली गीत / श्रीमती शान्ति यदु / 147
कानड़ा एवं रावला नृत्य गीत / डॉ. आशा खरे / 152
कोरकू जनजाति के मृत्यु गीत / डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य / 157
भारतीय प्राचीन उकेरित आभूषण / डॉ. कमला गर्ग/ डॉ. शिव धमेजा / 160
फाग साहित्य / लोकेन्द्र सिंह नागर / 165

कविता में ऋतुएँ

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी

साहित्य या हिंदी साहित्य में ऋतुओं पर कुछ कहने से पहले वे जिस 'प्रकृति' तथा 'काल' के अंग या अंश रूप में जानी जाती हैं- स्वयं उनका और उनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ परिचय अपेक्षित प्रतीत होता है। अपेक्षित तो यह भी लगता है कि भारतीय वाङ्मय में वैदिक वाङ्मय से लेकर अद्यावधिक वाङ्मय या साहित्य में काव्यात्मक रूप में इनकी कबसे और कैसी प्रस्तुति हुई है? इस चैन्तनिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हिंदी साहित्य में उसकी प्रस्तुति विवेच्य रूप में अधिक संगत होगी।

भारतीय दर्शनों में भी 'प्रकृति' का सन्दर्भ आता है- चाहे वह सांख्य या योग हो या उत्तरमीमांसा या वेदान्त। सांख्य और पातञ्जल योग चेतन या 'पुरुष' से भिन्न 'प्रकृति' को जड़ परिणमनशील मानता है। मानने को तो उत्तरमीमांसा और शैव दर्शन भी अपने-अपने ढंग से 'प्रकृति' को परिभाषित करते हैं। एक का कहना है कि माया ही प्रकृति है (मायान्तु प्रकृतिं विद्यात्) और दूसरा सृष्टि विकास के अशुद्ध-अध्या में व्यक्त 'प्रकृति' को पुरुष से भिन्न बताता है। परन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में 'प्रकृति' की अर्थ-परिधि कुछ और ही तथा भिन्न है। पं. विद्यानिवास मिश्र का मानना है कि विश्व-प्रपंच में वस्तुत: तीन प्रकार की सत्ताएँ हैं-

1. मनुष्य

2. मनुष्य द्वारा निर्मित समाज, संस्कृति और सभ्यता के संस्थान एवं उसका स्वयं का अन्त:करण और

3. शेष वह समस्त चराचर जगत् जिसके निर्माण में मनुष्य का योगदान न होते हुए भी उसके साथ मनुष्य का जन्म से ही (साहचर्यवश) किसी न किसी प्रकार का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इसी तीसरी सत्ता को हम प्रकृति कहते हैं। इस प्रकृति के प्रति संस्कृतजन की तीन दृष्टियाँ होती हैं- आकर्षण, विकर्षण एवं उदासीनतापरक। पहली दृष्टि में वह प्रकृति के सहज आह्लादन, उन्मादन एवं उद्दाम अनगढ़ रूप को अपने जीवन की सहज वृत्तियों की प्रतिकृति के रूप में पाना चाहता है। यह दृष्टि संश्लेष की दृष्टि है- यह काव्य या कलाकार की दृष्टि है। विकर्षण या विश्लेषण की दृष्टि वैज्ञानिक की है और उदासीन अपने या समाज तक ही जीवन को समेटकर रखने की दृष्टि है।

ऋतु काल की एक विशिष्ट इकाई है और हमारी काल सम्बन्धी अवधारणा चक्राकार या शंखवलयाकार है। साथ ही यह काल से जुड़ी एक और हमारी पारम्परिक अवधारणा है जो उसे द्विरूप मानती है- एक तो प्रतिक्षण आवर्तमान काल, जो कभी चुकता नहीं, जो निरन्तर पूरा होता रहता है इसलिए वर्ष, वत्सर, ऋतु एवं अब्द- जैसे कालावधि वाचक शब्द प्रवाहात्मक अर्थ पर ही बल देते हैं। अब्द का अर्थ- अ+पत्, अर्थात् जो गिरे नहीं, हार कर भी जो समाप्त न हो। वर्ष का अर्थ तो बरसने वाला है ही, 'वत्सर' का अर्थ है- निरन्तर पिन्हाने वाला- स्वयं पीने वाला और दूसरे को पिलाने वाला बछड़। ऋतु का अर्थ है- चलने वाला, केवल चलने वाला नहीं, विशेष लक्ष्य से, सृष्टि के प्रवर्तन के लक्ष्य से चलने वाला। यह तो रहा काल का आवर्तमान रूप।

काल का एक दूसरा रूप भी है- निरवधि या अखण्ड काल। पहले रूप से दूसरे रूप को जोड़ना ही जीवन की साधना है। इसका अभिप्राय है- खण्ड का अखण्ड में विलय, बूँद का समुद्र हो जाना, अणोरणीयान् को महतो महीयान् में विलय। काल की एक खण्ड इकाई है- कला, जिसका अर्थ ही है- खण्ड, पर हर खण्ड कला नहीं है, वही खण्ड कला है जो अखण्ड से जुड़ती हो। ऋतु सामान्य जनता में तीन, पाश्चात्य शास्त्र में चार तथा पौरस्त्य शास्त्र में पाँच या छः मानी गई है।[1]

'प्रकृति' और 'काल' से जुड़ी हुई ऋतु हमारे भारतीय वाङ्मय से भी चैन्तनिक और वर्णनात्मक-दोनों रूपों से सम्बद्ध है। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य दो ऋतुओं के विभागकारी हैं-

उत संहायास्थादृव्यूर्तूरदर्ध ररयतिः सवितादेव आगमत्।

2/38/4

विरामहीन और ऋतु विभागकारी ज्योतिष्मान् सूर्य जब फिर निकलते हैं, तब मानव शय्या छोड़ देते हैं। एक दूसरी ऋचा[2] में सूर्य को पंचपाद अर्थात् पाँच ऋतु वाला बताया गया है। भाष्यकार सायण के अनुसार हेमन्त और शिशिर एक ही हैं।

ऋक् संहिता में यह भी मिलता है कि पृथ्वी कक्ष के अनुसार ऋतुएँ बदलती है। मंत्र है-

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते समाधिः॥

1/164/13

अर्थात् परिवर्तनशील पञ्च अरा युक्त चक्र में निखिल भुवन लीन है। उसका अक्ष अधिकतर भार-वहन से भी क्लान्त नहीं होता। उसकी नाभि चिरकाल समान रहती है और कभी शीर्ण नहीं पड़ती। सुश्रुत ने भी माना है-

संवत्सरान्मको भगवानादित्यो गतिविशेषाक्षितिमेषकाष्ठा कला मुहूर्त होरा पक्षमासर्तु अयनसंवत्सरयुगविभाग करोति।

अर्थात् भगवान् सूर्य की गति विशेष द्वारा काल के देह को अक्षि, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग- जैसे अंशों में बाँटते हैं। सुश्रुत के मत से ऋतुओं की संख्या छह है। सुश्रुत के मत से माघ-फागुन शिशिर, चैत्र-वैशाख बसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद वर्षा, आश्विन-कार्तिक शरद तथा अग्रहायण-पौष हेमन्त माना जाता है। आयुर्वेद के ही मतान्तर से भाद्रपद-आश्विन वर्षा, कार्तिक-अगहन शरद, पौष-माघ हेमन्त, फाल्गुन-चैत्र बसन्त, बैशाख-ज्येष्ठ ग्रीष्म और आषाढ़-श्रावण वर्षा के रूप में माना गया है। सूर्य द्वारा विभाजित होने से दो अयन बनते हैं- दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन में वर्षा, शरद तथा हेमन्त और उत्तरायण में शेष तीन शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म का समावेश है। दक्षिणायन में चन्द्र तथा उत्तरायण में सूर्य तेजःपुञ्ज रहते हैं। चन्द्र के तेजःपुञ्ज होने से अम्ल, लवण और मधुर इन तीनों रसों वाली औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। जब सूर्य तेजः पुञ्ज रहता है- तब कटु, कषाय और तिक्त-इन तीन रसों का बल बढ़ता है और प्राणियों का पराक्रम घटता है, चन्द्र के तेजःपुञ्ज रहने पर वह बढ़ता है।

वैदिक वाङ्मय के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि अद्वैतवादी है। हमने बराबर अपनी चेतना की प्रतिच्छाया ब्रह्माण्ड में बाहर देखी है और ब्रह्माण्ड की प्रतिच्छाया अपने भीतर देखी है। हमने बाह्य प्रकाश को आन्तरिक ज्ञान का और अन्धकार को अज्ञान का प्रतिबिम्ब माना है। वैदिक मानसिकता प्रकृति के उसकी अधिष्ठात्री शक्तियों से मण्डित करके देखती थीं- फलत: विस्मयान्वित और कभी-कभी भयाक्रान्त होकर वाञ्छित की प्राप्ति के लिए स्तवन करती थी।

महाकाव्य, रामायण और महाभारत के ऋषियों को प्रकृति के प्रशान्त और स्वस्थ वातावरण में मर्यादा-भंग पसन्द नहीं था, इसलिए वाल्मीकि और व्यास- दोनों मर्यादा भंग करने वाले व्याध एवं पाण्डु को शाप देते हैं। वे प्रकृति की गोद में निरुपद्रुत वास करते थे और प्रकृति के साथ साहचर्यजन्य निबिड़ राग से प्रपूरित थे। इसीलिए वाल्मीकि काव्य में प्राकृतिक ऋतुओं का आह्लादकारी निर्मल मन:प्रसाद-परिचालित संश्लिष्ट सहज-चित्र मिलता है। कालिदास, भवभूति और बाण भी प्रकृति के चौखटे में रमते हैं- पर इनमें कलात्मक उद्रिक्त है।

मध्यकाल में प्राकृत और अपभ्रंश का भी साहित्य है- तदनन्तर भाषाबद्ध का क्रम आता है। इस कालावधि में दो तरह के सर्जक दृष्टिगोचर होते हैं- शहंशाहों के दरबार से जुड़े राज-कवि और शहंशाहों के शहंशाह दिव्य विभूतियों से जुड़े भक्त-कवि। हिंदी साहित्य के आदिकाल का महाकवि विद्यापति है- उसकी प्राय: हर कविता राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमा देवी को समर्पित है। इससे इनकी मनोदशा स्पष्ट है। अब ये प्रकृति के चौखटे में न रहकर प्रकृति को अपने चौखटे में प्राय: उद्दीपक रूप में रख लेते हैं- अपवाद सर्वत्र सम्भव है। संयोग एवं वियोग की घाटियों में संचरणशील इनकी मनोवृत्ति अनुकूल ऋतु का ही सहारा लेती है। यह बात भिन्न है- 'माधव हम परिनाम निरासा।' उनका वसन्त का एक चित्र लें-

फुटल कुसुम नवकुंज कुटिर वलु कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिमसिखर सिधारल, पिया निज देस न आवे रे॥
चानन चाने तन अधिक उतापए, उपवन अलि उनरोले रे।
समय बसन्त कन्त रहु दुर देस, जानल बिधि प्रतिकूल रे॥

शिष्ट-साहित्य में 'ऋतु' और लोक-साहित्य में 'बारहमासा' की स्थिति प्राय: दिखाई पड़ती है। विद्यापति में शिष्ट-तत्त्व के साथ लोक-तत्त्व का प्रचुर समावेश मिलता है। 'बारहमासा' का एक चित्र देखें- रचना काफी लम्बी है- फलत: कतिपय पंक्तियाँ ही दी जा सकती हैं। इसमें आषाढ़ से आरम्भ कर जेठ मास तक का वर्णन किया गया है-

मास अखाड़ उनत नव मेघ-पिया विसलेखे रहओ निरथेघ।
को न पुरुष सखि कओन सेह देस-करब मोए तहाँ जोगिनि बेस॥

× × ×

जेठ मास उजर नव रंग-कंत चहए खल कामिनि संग।
रूपनरायन पूरथु आस-भनइ विद्यापति बारह मास।

इन दोनों उद्धृत रचनाओं में ऋतुओं का समावेश अपने मानसिक चौखटे में है- समर्पण तो राजा-रानी को बरकरार है।

राज-कवि के बाद पूर्व मध्यकाल में शहंशाहों के शहंशाह दिव्य विभूतियों के प्रति समर्पित भक्त-कवि आते हैं। इन्हें अपनी आन्तरिक दिव्य अनुभूतियों की प्रतिच्छाया प्रकृति के ऋतु विशेष वर्षा में दिखाई देती है-

रस बरसे बदरिया गगन घहराय

अथवा-

गगन घटा घहरानी साधो गगन घटा घहरानी।
पूरब दिसि ते उठी है बदरिया, रिमझिम बरसत पानी
आपन आपन मेड़ सम्हारो, बह्यो जात यह पानी।
सुरत-निरत का बेला नहायन, करे खेत निरवानी।
धान काटि माड़ घर आवै, सोई कुसल किसानी।
दोनों धार बराबर बरसैं, जेवैं मुनि और ज्ञानी॥

यह आध्यात्मिक वर्षा है। परमेश्वर कृपा की निर्झर वृष्टि हो रही है- सब तरफ का वातावरण अनुकूल है, पात्रता साधक को ठीक रखनी है- अन्यथा यह पानी अकारथ बह जाएगा। इस पात्रता के अर्जन में सुरत-निरति का मंथन अपेक्षित है- तभी थिरता का नवनीत ऊपर आएगा- निर्वानी खेती तभी सम्भव है।

इहलोक और परलोक-दोनों लोकों के लिए उपयोगी फसल लहलहा उठेगी।

कबीर में वर्षा अप्रस्तुत है- परन्तु जायसी में वह प्रस्तुत और अप्रस्तुत उभयविध है। जायसी के 'नागमती' विरह खण्ड में जो बारहमासा प्रस्तुत हुआ है- उसमें सभी ऋतुओं का विद्यापति की तरह समावेश है। वहाँ ऋतुएँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत- दोनों रूपों में प्राय: आई हैं। बारहमासा के अतिरिक्त यहाँ एक पूरा 'बसन्त खण्ड' ही है। गुरु सुआ रानी से कहता है-

आवै ऋतु बसन्त जब, तन मधुकर तव बरसु।
जोगी जोग जो इमि करै, सिद्धि समापत तासु॥

इस खण्ड में पद्मावती स्वयं बसन्त का प्रतिरूप बन गई है। सम्पूर्ण प्रकृति में बसन्त की छटा फैलाकर जब चली गई- 'राजहिं तब बसन्त सुधि लई।' यहाँ बसन्त और वर्षा के बीच ग्रीष्म की दशा देख ली जाय-

जेठ जरै जग चलै लुवारा। उठहिं बवण्डर परइ अंगारा॥

सगुण धारा में सूर तथा तुलसी की ऋतुपरक बानगी लें। सूर की गोपियाँ प्राय: विप्रलंभ में भुनती रही हैं। उन्हें भी मानस की छाया प्रकृति में परिलक्षित होती है। सूर की गोपियाँ कहती हैं-

नैननि होड़ बदी बरसा सौं
रात दिवस बरसत झर लाए, दिन दूनी करषा सौं।

अथवा-

ब्रज तें द्वै रितु पै न गई।
ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि, तुम बिनु अधिक भई।
उर्ध उसास समीर, नैन घन, सब जल जोग जुरै।
बरखि प्रगट कीन्हें दुख दादुर, हुते जे दूरि दुरै।
विषय वियोग जो वृष दिनकर सम हिय उदौ करै।
हरि पद विमुख भए सुनि सूरज को तन ताप हरै॥

उद्धव श्रीकृष्ण से कह रहे हैं- 'ब्रज से दो ऋतुएँ गई ही नहीं। यहाँ तुम्हारे बिना ग्रीष्म और पावस का प्रकोप बढ़ गया है। गोपियों की ऊर्ध्व नि:श्वासें ही पुरवा हवा है और उनके नेत्र ही बादल हैं- अत: इनसे सब जल योग (वर्षा का) एकत्रित हो गया है। इन नेत्र रूपी बादलों ने वर्षा करके उन दु:ख रूपी मेढकों को प्रकट कर दिया है, जो दूर छिपे हुए थे। उन गोपियों का कठिन वियोग वृष राशि के सूर्य (प्रचण्ड) के समान हृदय में पूर्णतया विद्यमान रहता है (वियोग रूपी सूर्य की गरमी से उनका हृदय संतप्त रहता है)।'

गोस्वामी तुलसीदास के ऋतु-वर्णन की पद्धति सबसे अलग है। राम भी प्रिया-विरह में ऋतुओं का परिवेश प्रस्तुत कर रहे हैं। विरही की विरहाग्नि यहाँ भी दीप्त है और वर्षा का माहौल उसे और बढ़ा रहा है-

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

इस आरम्भ के साथ ही सादृश्यमूलक अलंकारों से मण्डित विभिन्न ऋतुओं का वर्णन करने लगते हैं। वर्षा का पूरा चित्र देने के बाद क्रमश: शरद का वर्णन भी समृद्ध ढंग से हुआ है-

वर्षा विगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ सन्तोषा॥

कहते-कहते सीता की सुधि उन्हें विकल कर देती है। इस सन्दर्भ के समस्त अप्रस्तुत उपदेशों से भरे हुए हैं- उनमें मूल्य चेतना उद्रिक्त है। अलंकारिक छटा भी क्या है- कास रूपी सफेद बालों के रूप में मानों वर्षा ऋतु ने अपना बुढ़ापा प्रकट कर दिया है। बरवै रामायण में भी ऋतु प्रस्तुत है-

सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिस आनि।
विधुहिं जोर करि बिनवति कुलगुरू जानि॥

वर्षा कबीर में अध्यात्म के स्तर पर व्यक्त हुई। जायसी में नागमती की विरहाग्नि को बढ़ाने वाली वर्षा का वस्तुनिष्ठ विवरण भी है- पर अलंकारिक प्रभा से मण्डित है। वर्षा क्या है मानो विरह ने अपना मारक दल सजा रखा है- वस्तुनिष्ठता तो तुलसी के ऋतु-वर्णन में है- पर अप्रस्तुत योजना चेतना पर छाई हुई है। सूर की वर्षा और ग्रीष्म आत्मनिष्ठ है। अप्रस्तुत की योजना सर्वत्र है।

लक्ष्य से लक्षण निकाले जाते हैं- फलत: महाकाव्य में तो ऋतु-वर्णन अनिवार्य मान ही लिया गया, दृश्य-काव्य में भी उसका विधान हुआ-

ऋतुं कंचिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत्-दशरूपक

महाकाव्यों में सर्ग के सर्ग ऋतु-वर्णन से पटे हुए हैं। कालिदास ने तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ ही लिख दिया। माघ ने छठें सर्ग को ऋतु-वर्णन के लिए ही समर्पित कर दिया है। यह परम्परा हिंदी साहित्य में भी चलती रही। भक्तिकाल की सीमा में केशव के साथ सेनापति भी हैं- पर इनकी रचनात्मक मनोदशा भक्तों या कवियों से भिन्न शहंशाहों की मनोदशा से जुड़ी है। मध्यकाल प्राय: दृश्य-काव्य से सूना पड़ा है। कालिदास ने 'शाकुन्तलम्' में ग्रीष्म ऋतु की वस्तुनिष्ठ प्रस्तुति दी है। बात विशेषत: यहाँ श्रव्य-काव्य की ही है। वर्षा और शरद का वर्णन विरहतप्त राम भी 'रामचन्द्रिका' में करते हैं-

देखि राम बरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदायी॥

केशव वर्णन करें और अलंकारिता न आए- यह कैसे सम्भव है? राम की सीता के साथ सहानुभूति भूल जाती है और अलंकारिता उभर आती है। घनमण्डल के नीचे उड़ती बक-पंक्ति राम को ऐसी लगती है मानो भेद्य समुद्र से जल लेते हुए शंखावलि भी पी गये हों और बक-पंक्ति के रूप में अनयवी शंखावलि ही शंखावलि उगल रहे हों। उन्हें वर्षा कालिका-सी दिखाई पड़ती है- समान धर्मिता के कारण उन्हें सन्देह हो रहा है-

कालिका कि बरखा हरषि हिय आई है।

श्लेष-गर्भ सादृश्यमूलक अलंकार है। इसमें संस्कृत का पाण्डित्य उभर आया है। छन्द है-

भौंहैं सुरचाप चारू प्रमुदित पयोधर,
*भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है....*इत्यादि।

भौं हैं अर्थात् भय है, सुरचाप ही भौंह है। पयोधर एक तरफ उनए हुए बादल का बोध कराता है और दूसरी ओर उन्नत स्तनों का। भूखन जराय से एक तड़ित की ज्योति भू और ख (आकाश) में दृष्टिगोचर होती है और दूसरी ओर तड़ित ज्योति मण्डित भूषण से लदी है। इस प्रकार केशव राम की व्यथा भूलकर अपने पाण्डित्य को व्यक्त करने पर उतर आते हैं।

सेनापति ने 'कवित्त रत्नाकर' की तीसरी तरंग में केवल 'ऋतु-वर्णन' ही किया है। कालिदास ने ग्रीष्म से आरम्भ किया है और बसन्त से समापन- साथ ही एक-एक ऋतु पर एक-एक सर्ग है। सेनापति ने एक ही तरंग में बसन्त से आरम्भ कर शिशिर से समाप्त किया है। वर्षा, बसन्त, ग्रीष्म और शरद की बात तो बहुत हो चुकी है। यहाँ हेमन्त और शिशिर की बात देख ली जाय-

बरसै तुषार, बहै सीतल समीर नीर,
कंपमान उर क्यौहूँ धीर न धरत है।
राति न सिराति, सरसाति विथा विरह की,
मदन अराति जोर जोवन करत है।
सेनापति स्याम हम धन हैं तिहारी हमैं,
मिलौ, बिन मिले, सीत पार न परत है।
और की कहा है, सविता हू सीत ऋतु जानि,
सीत कौ सतायौ, धन राशि में परत है॥

इनके यहाँ अगहन और पौष मास शिशिर ऋतु में समाहित हैं। इन कवियों का साथ विरह कभी नहीं छोड़ता-अलंकारिता तो उदग्र रहती ही है। गोपियाँ प्रिय को शैत्य-हरण के लिए याद करती हैं और बताती हैं कि वे तो वे शीत का सताया सूर्य भी धन (स्त्री) राशि की ओर दौड़ पड़ता है। थोड़ी शिशिर की भी छटा निहारें-

सिसिर मैं ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घामूह में चाँदिनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झांई बासर में झमकति है।
चाहत चकोर, सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमादिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूली न सकति है॥

ये वर्ण अलंकारिता से मण्डित होने पर भी वस्तुनिष्ठ हैं।

चकवा और चकोर को, कमलिनी और कुमुदिनी को अनुरूप-प्रतिरूप लगें- यह बात भिन्न है।

उत्तर मध्यकाल में रीति-सिद्ध और रीति-मुक्त कवियों में बिहारी, पद्माकर और घनानन्द को लिया जा सकता है। बिहारी की विरहिणी को पावस की आक्षितिज छाई घनघटा धुँआ-सी लग रही है, कारण पावस का यह प्रथम पयोद समस्त जगत् को जलाता हुआ जो आ रहा है-

धुरवा होंहि न अलि उठै धुआँ धरनि चहुँ कोद।
जारत आवै जगत् को पावस प्रथम पयोद॥

पद्माकर का वसन्त वर्णन तो प्रसिद्ध ही है-

कूलनि में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन कली न किलकत है।

× × ×

वीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
वनन में बागन में बगरो बसन्त है।

विरह की अन्तर्वृत्ति के निरूपक घनानन्द भी वर्षा की बात करते हैं- परन्तु सूर की गोपियों की भाँति अपने भीतर ही बाहरी वर्षा की प्रतिच्छाया देखकर कुछ व्यतिरेक भी दिखाती हैं। यहाँ भी ग्रीष्म और वर्षा है-

विरहा रवि सौं घट-व्योम तच्यौ
बिजुरी सी खिवैं इक लाँ छतियाँ।
हिमसागर ते दृग-मेघ भरे उघरे बरसें दिन औ रतियाँ।
घन आनन्द जानि अनोखी दशान लखैं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक में टपकै बरूनी तिहि ओलतियाँ।

अथवा-

घन आनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनहूँ न कहूँ दरसैं।
सुन जानिये धौं कित छाय रहे दृग-चातिग प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ इन धावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरस ऋतु में घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं॥

एक वह वर्षा है जो ऋतु-विशेष में घिर कर बरसती है और एक यह गोपी के भीतर की वर्षा है जो ऋतु-अऋतु का ख्याल किए बिना उघरकर नित्य बरसती रहती हैं। एक है आनन्दवर्षी घन या घनश्याम, जिन्हें जीवन (जल और प्राण) का मूल मानती हूँ- उनकी तो कहीं कौंध भी नजर नहीं आती और यहाँ दृग-चातक हैं, उनके प्राण तृषा के मारे तड़प रहे हैं। घनश्याम आएँ तो पावस हो, तब जाकर इन्हें कुछ स्थिरता मिले, बेचैनी जाय।

मध्यकाल के बाद आधुनिक काल में ऋतु-वर्णन की रूढ़िबद्ध तथा परिपाटीग्रस्त वर्णना प्राक्-छायावाद चाहे थोड़ी-बहुत हो, पर यह छायावादी दौर है, जहाँ प्रकृति के प्रति उसमें गहरी सम्पृक्ति और संसक्ति है और उसके तीन कारण हैं- एक तो भारत की अपनी संस्कृति, जो पीठ पर आँख रखकर आने वाले नवजागरण के कारण आकर्षक बनी, दूसरे विज्ञान की प्रतिक्रिया में Back to nature और तीसरे पश्चिम का रोमाण्टिक आन्दोलन और उसका प्रकृति दर्शन। 'प्रसाद' प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में मधुचर्या देखते हैं, निराला वसन्त और बादल के राग छेड़ने में बेजोड़ प्रतीत होते हैं। महादेवी दु:ख की बदली है जो 'उमड़ी कल थी मिट आज चली।' वे उसकी प्रतिच्छाया अपने जीवन के आकाश में देखती हैं। पन्त ने तो कल्पना की आँखें ही प्रकृति की गोद में खोली। उनका पावस-वर्णन नितान्त आकर्षक है- गो कि वह ऋतु-वर्णन की परिपाटी से ग्रस्त और रूढ़िबद्ध नहीं है।

प्रसाद ने कई खण्डकाव्य और 'कामायनी' जैसा महाकाव्य भी लिखा, परन्तु क्रमागत ऋतु-वर्णन कहीं नहीं मिलता। मुक्तक रूप में अवश्य कई रचनाएँ हैं जो ऋतुपरक शीर्षक देकर लिखी गई है। 'बसन्त की प्रतीक्षा', 'पावस-प्रभात', 'नव बसन्त', 'वर्षा में नदी कूल' तथा 'शारदीय शोभा'- ऐसी ही ऋतुपरक रचनाएँ हैं। 'प्रसाद' अपनी प्रकृति के अनुरूप प्राय: सर्वत्र चेतन का आरोप और मधुचर्या जैसा सन्दर्भ देते हैं। एक चित्र-

मधुर मलयानिल मटक की मौज में मदमत्त है।
लता ललिता से लिपटकर ही महान् प्रमत्त है।
क्यारियों की कुसुम कलियों को कभी खिझला दिया।
सहज झोंके से कभी दो डाल को ही मिला दिया।

-नव वसन्त

'पन्त' ने 'ग्रन्थि' जैसे खण्डकाव्य में पीठिका के रूप में

मधुमास का और मुक्तक प्रगीत के रूप में पावस आदि ऋतुओं का भावाक्षिप्त वर्णन पर्याप्त मात्रा में किया है। पर इस प्रवाह के कवियों की रचनाओं में प्राप्त ऐसे वर्णनों को ऋतु-वर्णन की जगह प्रकृति-वर्णन कहना कहीं अधिक उपयुक्त लगता है। पन्त द्वारा बसन्त की पृष्ठभूमि देखें-

वह मधुर मधुमास था, जब गन्ध से,
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।
जानकर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कई।
सफल होने को अवनि के ईश से। -'ग्रंथि' से

'पर्वत प्रदेश में पावस'-पर्याप्त लम्बी रचना है। 'अलमोड़े का बसन्त'-भी एक रमणीय रचना है। निराला प्रणीत 'बादल राग' में पावस तथा 'वासन्ती' एवं 'वसन्त समीर' में वसन्त एवं 'शरत् के प्रति' तथा 'शरत् पंकजलक्षणा' में शरत् का वर्णन नितान्त मनोरम रूप में प्रस्तुत है। उद्धरणों से निबन्ध की तुंदिलता बढ़ेगी। जैसा कि पहले कहा गया है यहाँ का रचनाकार कभी अपने मानस की प्रतिकृति ब्रह्माण्ड में देखता है और कहीं ब्रह्माण्ड को मानस पर प्रक्षिप्त करता है। इसके उदाहरण हैं- महादेवी, जो कभी अपने पर बदली का प्रक्षेप करती हैं और कभी 'मैं बनी मधुमास आली' मधुमास के व्यापारों का अपने पर आरोप करती हैं।

'अज्ञेय' जी का कहना है कि छायावाद की समाप्ति के साथ ही प्रकृति-वर्णन की अन्त्येष्टि हो गई। छायावादोत्तर काव्य पर विज्ञान के प्रभाव में एक तो बौद्धिकता का प्रभाव बढ़ गया। प्रगतिवादी रचनाओं में शोषक और शोषित के प्रति नफरत और लगाव का भाव जगाने का दौर अवश्य चल रहा था- पर 'नई कविता' की प्रतिस्पर्द्धा में वह भी नवीनता और असाधारणता के प्रदर्शन में अपनी जमीन छोड़ता गया। गीतकार भी नवगीतकार बनने के चक्कर में अपनी जमीन से दूर होते गए। लोक-साहित्य में अवश्य लोक अपनी प्रकृति में मुखर होता रहा।

इस प्रकार प्रकृति के प्रति परिवर्तित होते हुए विविध विध दृष्टिकोण से परिचालित रचनाकार हिंदी साहित्य में एक विशेष ढाँचे पर ऋतु-वर्णन करते रहे, जो जैसे-तैसे प्राक्-छायावाद तक चलता रहा। छायावादी काव्य के ऋतु-वर्णन को प्रकृति-वर्णन जैसी संज्ञा से बोधित करना ज्यादा संगत लगता है। 'अज्ञेय' के शब्दों में कहें तो छायावादोत्तर काव्य-प्रवाह में नावीन्य और असाधारणता लाने के अभिनिवेश ने इस क्षेत्र में अराजकता फैला दी। 'कविता' और 'गीत' के फाँकों में बँटकर चलने वाली धारा में भी 'नयापन' लाने का प्रतिस्पर्द्धी दौर सहजता से छिन्न मूल होकर प्रकृति के प्रति सम्पृक्ति और संसक्ति से दूर होता गया।

पानी बरस रहा है
पर फसल सूख रही है पैसा बरस रहा है
पर बिचौलिए लूट रहे हैं-
सत्पात्र मर रहे हैं

ये सभी धाराएँ मानव समाज की वर्तमान विद्रूपताओं के अंकन में जुटती गई। अपवाद सर्वत्र विद्यमान रहता है- औसत स्थिति यही है।

संदर्भ

1. यूरोपीय ज्योतिर्विद्गण के मत में पृथिवी की आक्षिक स्थिति से कक्ष के सम्बन्ध पर सकल ऋतुएँ उदित होती हैं। सूर्य के दक्षिणायनान्त बिन्दु से महाविषुवत् रेखा को जाते मध्य का समय शीत[1], महाविषुवत् से उत्तरायण बिन्दु को जाते मध्य का समय वसन्त[2], उत्तरायणान्त बिन्दु से तुला राशि को जाते मध्य का समय ग्रीष्म[3], और तुला राशि से दक्षिण अयनान्त बिन्दु को जाते शरत्[4] काल कहलाता है। सूर्य के द्वारा ऋतु का उक्त परिवर्तन पृथिवी की ही गति से पड़ता है।
2. पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः पदे अर्धे पुरीषिणम्।
   अथे ये अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रेवत्रर आहुरर्पितम्॥ 1/164/12

लोकगीतों में सरस बरखा

रमेशचन्द्र पंडित

बरखा ऋतु रसवंती एवं सरस ऋतु है। कजरारे मेघ इस ऋतु में सावनी उत्सव मनाने का झुंड के झुंड धरा पर मेहमान बनकर आते हैं। चपल-चपला उनके स्वागत में मनोहारी नृत्य प्रस्तुत करता है। पवन भी सर-सर बहकर मृदु संगीत सुनाती है। उधर नदी-नद का जल अपनी उत्ताल लहरों के थपेड़ों से तबले की थाप देता है। इस प्रकार सावनी वर्षा जब अपनी रस-धार धरा पर गिराती है तो सारा समाँ अतिउल्लास से भर जाता है। बच्चे नंग-धड़ंग शीतल फुहारों में भीग-भीग कर वर्षा का आनंद लेते हैं और गाते हैं-

पानी बाबा आ रे।
काकड़ी भुट्टा ला रे।

पावस में आते ही बागों में झूले पड़ जाते हैं। विरह के ज्वर से पीड़ित नववधुएँ झूलों की पेंगे चढ़ाती हुई गा उठती हैं उनके प्रियतम की याद में-

प्रिय मैं पुजारिन, खड़ी प्रतीक्षा,
खोल हृदय के द्वार
सावन हार गई मैं पंथ निहार।

अल्हड़ वर्षा के धरती पर उतरते ही निराला के धूम-धुँआरे काले कजरारे सुरपति के अनुचर मेघ चहुँओर आकाश में हिरणों-सी चौकड़ी भरने लगते हैं। यह ऋतु इतनी रंगभरी होती है कि कभी तो सैरे के रूप में पानी की झड़ी लग जाती है, जो कभी स्वर्ण किरण सी धूप निकल आती है।

महाकवि तुलसीदास ने घुमड़ते-गरजते बादलों से डरी सहमी नायिका का एक अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है।

घन घमंड गरजत नभ घन-घोरा
पिया बिन मन तड़पत मोरा।

मनभावन वर्षा ऋतु नायिका को पिया मिलन हेतु उकसाता है, पर प्रिय परदेस जाने को तत्पर है। ऐसे में नायिका उसे किस बहाने रोकने का प्रयास करती है, वह कहती है-

काली बादली बहना हमार, कोंधो बीरन लगे हमार,
आज बरस जा मेरी कनवज, कंता इक रैन रही जाए।

भावना के आवेश में बदली बहन और बिजुरी वीर बन जाती है। कैसा सुंदर मानवीकरण इस राजस्थानी गीत द्वारा कवि ने किया है। सूरदास ने भी गोपियों के विरह प्रसंग में नित्य नैनों की बरसात की है-

निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहियतु दिन पावस ऋतु

संस्कृत के अमर कवि, ऋतु संहार के रचयिता कालिदास ने तो वर्षा ऋतु के चित्र में बड़ी ही अनुपम और अनूठी कल्पना प्रस्तुत की है-

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये॥

अर्थात् हे प्रिये! जलकणों से पूर्ण मेघरूपी मतवाले हथियों वाला तथा बिजली रूपी झंडे वाला एवं वज्र के शब्दरूपी भेरी नाद करने वाला, कामीजनों का प्यारा यह वर्षाकाल राजा के समान आ पहुँचा है।

मालव भूमि पर तो नशीली बरखा सावन सैरे के साथ ढोल पीटकर आता है। 'ढोल बजातो हरियालो सावन आयो' उधर भोजपुरी में एक लोकगीत है, जिसमें पिया के आने की अवधि पर सावन की कैसी मनोरम झाँकी कवि ने दर्शाई है- 'घिरि आई बदरिया सावन की, रिमझिम रिमझिम पानी बरसे, आजु अवधि पिया आवन की।'

सावन के लोक गीत देश के सभी अंचलों में फैले है। ये जन भावना के अक्षय स्रोत एवं भंडार हैं।

ऐसे ही बुन्देलखण्ड के एक लोकगीत में सुंदरी वर्षा ऋतु में अपने नैहर में रहना नहीं चाहती है। उसकी भावना तो जरा देखिए 'बोले-'मोरवा, गहराय घटा-घटा, मोहे नीका नी लागे नैहर।' मालवा में शादी-ब्याह के अवसर पर दूल्हे व दुल्हन को जब स्नान करवाया जाता है, तब घर की स्त्रियाँ वर्षा होने से बचे कीचड़ की उदात्त कल्पना सँजोती है-

झर झर मेवलों बरसें आँगन
कीचड़ मच्यो हो राज।

निमाड़ भी वर्षा के सरस भावों के उद्रेक से बचा नहीं है। एक निमाड़ी गीत में वर्षा का बहुत ही मधुर दृश्य उपस्थित किया गया है-

गाड़ी वार मसक दे बैल।
अबे पुरवैया के बादर ठन आए।

विरहणी नायिका प्रीतम से मिलने को कितनी उतावली है, इस दृश्य से स्पष्ट है। सावन के झूलों का बड़ा महत्त्व है। नैहर में आई युवतियाँ सावन की फुहारों के बीच झूले पे हिंडोले लेती हैं और साजन के विरह में उनका हिया गा उठता है, मधुर भावनाएँ रोके नहीं रुकतीं। एक मधुर भावपूर्ण गीत-

हिंडोलो झूलन गई बलमा
जब ही हिंडोला भवन थिंगा है,
कलेजा थर-थर हो बलमा।
जब ही हिंडोला बगिया में उतरा
चूनर कर-कर को बलमा
जब ही हिंडोला सड़क में उतरा
बिछिया रून-झून हो बलमा।

अर्थात् हे प्रिय! झूले में झूलने गई थी। जब झूला मकान तक पहुँचा तो हृदय थर-थर काँपने लगा। जब झूला बाग में पहुँचा तो चुनड़ी कर-कर करने लगी। और जब झूला सड़क तक पहुँचा तो बिछिया की रुनझुन होने लगी।

रिमझिम बरखा होने लगी। केले के पत्तों से जल बूंदे टपकने लगीं। तभी कुमाऊँनी नायिका, नायक के नाम पाती लिखकर कहती है- हे पाती! जाओ और सीधे-सीधे संगी के हाथों पड़ना-

झुमझुग्या बरखा लागी
केलड़ी पातूनी
जाजा चिठी, सीधी जाना
मेरे संगी के हाथों में॥

रिमझिम पानी केले के पत्तों पर गिरने लगा। मेरे प्रिय आज तो आप मेरे साथ हो (घर जाने के बाद) कल न जाने किसके साथ होंगे। कैसा डर है यह प्रिय से वियोग का?

उधर पूर्वांचल में लोक गीत ने कंठ पाया और कहा- 'श्याम क्या परदेश गए, मुझे भूल ही गए।' दिन, मास, वर्ष बीत गए, पर यह समय नहीं बीतता। बादल घिरे, झींगुर, दादुर, मोर, पपीहा, सभी कजरी गाने लगे हैं, क्या करूँ राह तकते नयन थक गए, पर श्याम नहीं आए-

कान्हा मोर गई ले मधुबना,
सवनवा में न अई ले ननदी।
रहि-रहि पिंजरा में तड़पे सुगनवा
कान्हा मोर गइले मधुबनवा।
दिनवा पहाड़ भईले, रहिया सौतिनिया
झिर-झिर पवन बहे, पड़लवाटी बुनिया,
सवनवा मेना उइले ननदी।
सतरंग सेजिया, बसंत रंग चुरिया गितियात
गावत आवे करीरे बदरिया
देहिया से न किनले परनवा

एक और दृश्य दृष्टव्य है, जिसमें कहा गया है कि साजन परदेश गये हैं, काली घटायें उठ रही हैं, बादल गरज रहे हैं, बिजरी चमक रही है, विकट अंधेरा छाया है, मेरा कलेजा थर-थर काँप रहा है।

सैंया छोड़ रहे परदेस,
कारी बदलिया ना।
बादल गरजे, बिजुरी चमके,

छाई विकट अंधेरिया ना।
सुनि-सुनि मोर जिय तड़पे,
थर-थर काँपे करेजवा ना।

इधर मध्यप्रदेश में एक आंचलिक लोक गीत में एक नायिका तो बदली, नारंगी, चन्दन, काजल, लौंग, मोती तक बनकर प्रिय के आँगन में बदरी बनकर बरसना चाहती है। इस गीत की झाँकी देखिये-

जो मैं होती बदरिया घुमड़ाती,
पिया प्यारे के अंगनवा बरस जाती।
जो मैं होती निंबू नारंगी,
पिया प्यारे के बगिया लटक जाती,
जो मैं होती मलयगिरि चंदन,
पिया प्यारे माथे दमक राती
जो मैं होती डिबिया को कजरा,
पिया प्यारे के नैना लागत राती,
जो मैं होती बदरिया
जो मैं होती लौंग इलाइची,
पिया प्यारे के मुख में गमक राती,
जो मैं होती बदरिया
जो मैं होती मोती की माला,
पिया प्यारे की छातियों चिपक राती,
जो मैं होती बदरिया।

और एक नायिका तो आकाश में छाये बादलों को देखकर गाड़ीवान से अनुरोध करती है कि तुम गाड़ी जल्दी ले चलो, आकाश में बरसने वाले बदरा घिर आये हैं। तुम अच्छी तरह से परखो कि कहाँ से बादल घिरे हैं और कहाँ बरसे हैं? गाड़ीवान उत्तर देता है कि बादल आगे घिरे हैं और पीछे बरसे हैं। नायिका कहती है कि नहीं घूँघट में बदली घिरी है और गालों पर बरस रही है, गीत है-

गाड़ीवार मसक दे बैल,
अबे पुरवैया के बादल ऊन आये
कौने बदरिया ऊनई रसिया,
कौने बरस गये मेव?
अबे पुरवैया के बादल आये।
दारया उनई रसिया।
पच्छम बरस गये मेव।
अबे पुरवैया के बादल ऊन आये।
घुंघटा बदरिया उनई रसिया,
गलुअन बरस गये मेव॥

वस्तुत: नायक हो या नायिका, सावन में उनके हृदय की मोहक और मधुर भावनाएँ रोके नहीं रुकतीं। सरस, रसीले विरह को जगाने वाली और मन को मिलना आशा से गर्माते-ठंडक पहुँचाने वाली शीतल फुहारों के रंगों से सजी होती है बरखा बहार, रसिकजनों का प्रिय पावस मास।

बदरिया बरसो बिरन के देसा में

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

चैत के चरेरे घाम से तमतमाये आसमान में असाढ़ की कारी बदरिया की झलक मिलते ही आँख की कृषकवधू सरस हो उठती है और सपनों की फसलें अपने भीतर की चित्रपटी पर टाँकने लगती है। उन तस्वीरों के पीछे प्रियतम के हँसमुख अधरों की प्यास तौलती हुई बदरिया भी सलज्ज नववधू की तरह धीरे-धीरे पाँव रखती कल्पना की पालकी पर बैठ जाती है और झोंकों के कहार उसे पिया के घर ले चलने को आतुर हो जाते हैं। लेकिन तभी जंगल में बसे गाँव के एक कच्चे घर के आँगन में खड़ी गोरी उसे रोककर कहती है-

बदरिया, बरसो बिरन के देसा में।
कहँना सें उनई है कारी बदरिया, कहँना बरस गये मेव?
अग्गम सें उनई है कारी बदरिया, पच्छम बरस गये मेव।
किनकीं भर गइँ ताल तलैयाँ, किनकें भरौ सागर-ताल?
ससुरई कीं भर गइँ ताल तलैयाँ, बिरना के भरौ सागर-ताल।

बहन की विनती है- बदली रानी भाई के गाँव में बरसो। काली बदली कहाँ से उठी है और मेह कहाँ बरसा है? काली बदली आगे से उठी है और पीछे मेह बरसा है। ताल-तलैयाँ किनकी भरीं हैं और किनकी भरेंगी। ससुर की ताल-तलैया भर गयी हैं, अब भाई के सागर-ताल भरो। बदली रानी, भाई के गाँव में बरसो।

प्रश्नोत्तर शैली का यह लोकगीत चंदेलकाल यानी कि 12 वीं 13 वीं शती का है। उसमें भाई-बहन के रिश्ते की व्यंजना मेघदूत

की शैली में हुई है। लेकिन मेघ या पवन को दूत बनाने की कल्पना लोककवि के मानस की ही उपज है और उसी से परिनिष्ठित भाषा के साहित्य ने प्रेरणा ली है। 10वीं-11वीं शती में बुंदेली के सावन गीतों की रचना हुई थी, जिनका विषय तो खेती अथवा भूमि की हरियाली था या फिर प्रेमी-प्रेमिका और पति-पत्नी का संयोग-वियोग। झूला के गीतों में लोकप्रेम का हिंडोल ही अपनी पेंगें बढ़ाता रहा है। लेकिन सवाल यह है कि बदरिया को भाई-बहन के प्रेम की मनुहारों से कब जुड़ना पड़ा। सावन गीतों में भाई-बहन के प्रेम की अभिव्यक्ति कब से हुई थी और उसका इतिहास क्या है?

कजली का लोकपर्व : कृषिपर्व का प्रतीक

12वीं शती के पूर्व कजरियों का लोकोत्सव मूलत: कृषि के सम्मान का प्रतीक था। श्रावण शुक्ल नवमी के अपरान्ह स्त्रियों के झुण्ड मिट्टी लेने जाते हैं। पहले खदान की पूजा होती है, फिर कुछ गेहूँ-जौ के दाने मिट्टी से ढँककर मिट्टी खोदी जाती है। इस तरह मिट्टी का चुनाव हो जाता है।

लोकगीतों की मिठास बगराती हुई मिट्टी घर आती है और गोबर की खाद मिलाकर छेवले के दोनों में रखी जाती है। दोनों को पूजा कर गेहूँ या जौ बोये जाते हैं। उनकी संख्या पाँच, सात या नौ होती है, लेकिन जन्म या विवाह के बाद पहली बार त्यौहार पड़ने पर एक अलग दोने में राई बोयी जाती है। सभी दोने ढँककर साफ जगह पर रखे जाते हैं और दूध-पानी के मिश्रण से रोज सींचे जाते हैं। प्रति रात घी का दीपक रखा जाता है कुछ दिनों में पीले रंग के पौधे लहरा उठते हैं।

सावन की पूर्णिमा को कजरियाँ पास के पूर्व निश्चित सरोवर में खोंटी और सिराई जाती है, पर कहीं-कहीं भादों की कृष्ण प्रतिपदा को यह कार्य सम्पन्न होता है। पहले घर में चंदन, अक्षत, पुष्पादि से पूजा होती है, राखी चढ़ायी जाती है, भोग लगता है और झूला झुलाया जाता है, फिर स्त्रियों के सजे-धजे समूह लोकगीत गाते सरोवर जाते हैं। लौटने पर कजरियाँ इच्छुक व्यक्तियों को दी जाती हैं और वे उन्हें मस्तक से लगाकर सम्मान प्रकट करते हैं। परिवार में बहन भाई को, पत्नी पति को और माँ बच्चों को कजरियाँ देकर प्रेम की पवित्र भावना प्रकट करती हैं।

स्पष्ट है कि कजरियों का यह त्यौहार कृषि पर्व था, जिससे पूरा परिवार मिट्टी के चुनाव, खाद के मिश्रण, बीज की बुवाई, सिंचाई आदि की सीख पा लेता था। साथ ही फसल का अन्दाज लग जाता था। इससे भी महत्त्व का विषय है खेती का सम्मान, जिसकी वजह से उसे त्यौहार का रूप दिया गया था। गम्भीरता से सोचें, तो इससे अधिक प्रभावी हरित क्रांति और कोई नहीं हो सकती। यह बात अलग है कि आज त्यौहारों और उत्सवों ने अपने मूल अर्थ खो दिये हैं और वे सिर्फ रूढ़ि बनकर जीवित हैं। उनमें फिर से नये अर्थ भरने की जरूरत है।

मानवी संबंधों से जुड़ाव : भाई-बहन का प्रेम

कजरियों से भाई-बहन के प्रेम का जुड़ाव महोबा की एक ऐतिहासिक घटना का सुफल है। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान ने चंदेल-नरेश परमर्दिदेव की राजधानी पर आक्रमण किया था। किला चारों तरफ से घेर लिया गया था, इसलिये परमर्दिदेव की राजकुमारी चन्द्रावलि और अन्य नवयुवतियाँ कजरियाँ खोंटने के लिए जाने में विवश थीं। रानी माल्हनदे ने आल्हा या देवलदे को पत्र लिखा और बहन चन्द्रावलि के भाई ऊदल को। समय पर आल्हा-ऊदल आये और उन्होंने कजिरयों की रक्षा के लिए संघर्ष किया। उनकी वीरता और बलिदान ने बहन के प्रति भाई के प्रेम का लोकादर्श स्थापित किया था, जिससे कजरियों के कृषिपर्व में भाई-बहन के प्रेम का सूत्र जुड़ गया। 12वीं शती की इस ऐतिहासिक लड़ाई का असर त्यौहार में नया अर्थ भरने का प्रमुख कारण बना और उसने वीरगाथाओं की वस्तु में एक नया अध्याय जोड़ा, जिससे इस अंचल में राछरों की एक सेना खड़ी हो गयी।

राछरों का विकास : लोक के संघर्ष की नयी पहल

11वीं 12वीं शती में विदेशी संस्कृति के आक्रामक तेवर का सामना करने के लिए सबसे पहले लोकसाहित्य ने ही संघर्ष का मोर्चा शुरू किया था। 12वीं शती के अंत में लोकमहाकाव्य आल्हा की कई गाथाएँ रची गयी थीं, जिन्होंने राछरे लोकगीतों को नयी दिशा दी थी। राछरे राछ के समय राजा की प्रशस्ति में गाये

जाने वाले गीत थे और राजा की राछ तभी फिरती थी, जब वह रण में युद्ध करने जाता था। लेकिन 12वीं शती में चन्द्रावलि को केन्द्र में रखकर भाई-बहन के प्रेम के प्रतीक कजरियन के राछरे रचे गये, जिनमें बहन की रक्षा के लिए भाई युद्ध करता है और उसे कजरियाँ खोंटने के लिए मार्ग प्रशस्त करते हुए अपना सबकुछ लगा देता है।

वस्तुत: राछरे बहन और कुल की 'पत' बचाने के लिए संघर्ष के गीत बन गये थे और इस तरह तलवारों की जगह लोकगीतों ने ऐसी लड़ाई लड़ी जो लोकसंस्कृति के इतिहास में आज तक अमर है और जिसनें हर भाई को संघर्ष के लिए तैयार कर दिया था। हर गाँव-गली में राछरों के स्वर गूँजे और नारी की प्रतिष्ठा के लिए लोक का संघर्ष शुरू हुआ। आश्चर्य तो यह है कि लोक के ऐसे संघर्ष चुपचाप चलते रहे, अनदेखे और अनगिने। न तो इतिहास ने उन्हें समझा और न साहित्य ने। सवाल यह है कि लोक के इतिहास और साहित्य को समझे बिना लोकतंत्र कैसे चलेगा।

मध्ययुग का बदलाव : कथा का चमत्कार

मध्ययुग में लोक प्रेम के दो रूप प्रबल थे- एक तो लोकभक्ति से प्रेरित और दूसरा लोकशृँगार से समन्वित। लोक इतना प्रभावशाली होता है कि वह अच्छों-अच्छों को पचा लेता है। उसने भक्ति को पचाया और ब्रज की कुंजों में राछरा होने लगा। भक्ति और शृँगार परिवार के आँगन में खेलकूद कर बड़े हुए हैं। भाई-बहन के लोकप्रेम से क्यों न जुड़ते? बहन-पत्नी और बहू भी है। एक तरफ सावन का महीना उद्दीपन बनकर आया और लोक नायिका कारे बादर को देखकर कहने लगी-

गरज तरज घनघोर कें, उनईं जाय सुनाव।
जौ बिरहिन-सी बीजरी, उतईं जाव चमकाव॥

लेकिन दूसरी तरफ 'माई के देस' और 'बीरन' की स्मृति कौंध गयी और वह गा उठी-

सावन सेंदुरा माँग भरे बिरना, चुनरी रंगाई बड़े भोर,
बीरन मोये माई को देस दिखैयो.....

बहन की पुकार भाई के कानों तक जा पहुँची और वह सोचने लगा। अपनी माता से बोला- 'सबकी बैनें माई खौंट हैं कजरियाँ, मोरी बहिन परदेस.....।' माँ की आज्ञा से बहन को लुवाने गया, बहन की सास से विनती की, लेकिन सास ने शर्त रखी-

सासो बवा जू तुमरीं पइयाँ लागों,
बहिन बिदा कर देव।
जित्ते बंडन गौहूँ भरे हैं,
बहू उत्ते पीस मायके जाव।
जित्ते पीपर में पत्र लगे हैं, उत्ते पै घर जाव।
जित्तो कुँवल में नीर भरो है, उतनई भर घर जाव।

इस पर बहन को भाई से कहना पड़ा–'तुम तो जाव बिरना अपने देस खों, सासो पै पर जाबै गाज।'

यह कथा तो हर घर की थी। छोटे–छोटे मनमुटावों, तनावों और संघर्षों से बलखाती हुई चली। सास–बहू के झगड़े, ननद–भौजी के तनाव और साले बहनोई के दाँव–पेंच उस समय की स्थितियों के हूबहू चित्र खड़ा करने लगे। पारिवारिक संबंधों के यथार्थ अंकन के अलावा मध्ययुग के बुंदेलखण्ड में रजपूती अहं और ठकुरासी ठसक की प्रवृत्ति का आलेखन लोकगीतों की भूमि पर अक्सर हुआ है। उदाहरण के रूप में अमानसिंह या अमन जू के राछरों की कई वर्णनाएँ मौजूद हैं। अमान सिंह पन्ना रियासत के राजा थे (राज्यकाल : 1809–15 ई.), जो अपनी उदारताओं और सनकों के कारण लोकनायक बन गये थे। अपनी बहन की विदा कराने अकोड़ी गये थे, लेकिन बहनोई के विनोद को सहन नहीं कर सके। बात लग गयी और उन्होंने युद्ध में बहनोई को मार कर उनका सिर बहन के आँचल में डाल दिया। इस रूप में राछरे गीतों में कथा का चमत्कार प्रधान हो गया और भाई–बहन के प्रेम राजसी हठ और अहं के घर कैद होकर सो गया।

नैहर के बिरछा दूभर हो गये

1857 ई. के बाद गुलामी का युग शुरू हुआ। विदेशी संस्कृति धीरे–धीरे आँगन तक पहुँच गयी। पक्के मकानों में गाय के गोबर का क्या काम, खरिया–गेरू के आलेखन पक्के बहीखातों के लिखनों में खो गये। परिवार टूटने लगे और एक की चार बखरीं हो गयीं। माता की मड़इया गिर गयी और पिता की चौपार फूट गयी, फिर नैहर के बिरछा दुर्लभ हो गये। बिटिया तो चिड़िया की तरह है, जो नैहर के बिरछा में पलती–पुसती है, लेकिन भौतिकता की आँधी ने सबकुछ नष्ट कर दिया। बहन की आत्मा आज भी सावन आने पर कसक उठती है–

नैहर के बिरछा दूभर हो गये, बीत गयी उमर हमार।
छूट गयी माई की मड़इया, छूट गयी बबुल चौपार।
छूट गयीं सखियाँ सहेलरीं, जिन बिन पनियाँ न जावँ।
नैहर... ।
देख आउत्ती माई की मड़इया और बबुल चौपार।
देख आउत्ती सखियाँ सहेलरीं, जिन बिन पनियाँ न जाँव।
नैहर.... ।
गिर गयी माई की मड़इया, फूट गयी बबुल चौपार।
भग गयीं सखियाँ सहेलरीं, जिन बिन पनियाँ न जाँव।
नैहर... ।

बरखा गीतों में कजरी

डॉ. अर्जुनदास केसरी

गाँव का नाम आते ही भारतीय जीवन और लोक-संस्कृति का चित्र आँखों के सामने उमड़ आता है। सचमुच तब के गाँव कितने निराले थे, कितने सहज, सादे और समरस-समभाव थे। कोई किसी भी धर्म, जाति, सम्प्रदाय का हो, अमीर हो, गरीब हो, ऊँच हो, नीच हो, सभी भाई-चारे से रहते मुक्त जीवन व्यतीत करते, सभी एक-दूसरे के सुख-दुख में हाथ बँटाते। दादी-दादा, नानी-नाना, काकी-काका, मामी-मामा के सम्बोधन, भेदभाव को मिटाने वाले, आत्मीयता पैदा करने वाले होते हैं। गाँव के बड़े-बूढ़ों की बात सभी मानते हैं। दिन के अथक परिश्रम से थके माँदे गाँव के लोग मुखिया-मालिक के द्वार पर एकत्र होते, लोरिकी, बिरहा, कजरी, विजयमल, करमा-कहानी के दौर तो प्रायः नित्य ही चला करते। उन दिनों छोटी-छोटी-बातों, वाद-विवादों को लेकर कोई किसी के खून का प्यासा नहीं होता था। सारे रगड़े-झगड़े पंचायत-प्रथा से निपट जाते थे। गाँव के मुखिया की बात को सभी सिर माथे रखते। आखिर वे गाँव क्या हो गये?

गाँव पहले से आज अधिक सम्पन्न हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन न जाने क्यों मानवीय मूल्यों की कमी होती जा रही है। स्नेह, दया, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सद्भावना और सद्विचारों की कमी के कारण गाँवों का जीवन दूभर होता जा रहा है। गाँव के लोग शहर की ओर भाग रहे हैं। गाँव बिखरते जा रहे हैं, क्यों? जहाँ तक मैं समझता हूँ इसके दो ही मुख्य कारण हैं। पहला कारण है बढ़ता हुआ असंतोष और दूसरा कारण है लोकवार्ताओं का अभाव।

'संतोषं परमं सुखम्' पहले के लोगों में संतोष था। उनकी भोजन, वस्त्र और आश्रय की ही अनिवार्य आवश्यकताएँ थीं। 'रूखा-सूखा खाय के ठंडा पानी पीव, देखि पराई चूपड़ी मति ललचाओ जीव' के सिद्धांत को सभी मानते थे। फिर कथा-कहानियों और गीत-नृत्य से अपना भरपूर मनोरंजन करते थे। वे उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। गीत-गाथाएँ ही उनके पुराण और इतिहास थे। उनमें

जीवन के विविध पक्ष निरूपित थे। एक कजरी का ही उदाहरण ले लीजिए। बरखा-गीत कजली में जहाँ एक ओर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की बातें मिलती हैं, वहीं शिक्षा और सुधार की बातों का भी सर्वत्र वर्णन हुआ है। हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' खूब कजरी लिखते थे। उनकी 'कजरी कादम्बिनी' और 'कजली कुतूहल' नामक कजली की पुस्तकें प्रकाशित हैं। उनमें संकलित कजलियों में एक कजरी की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

बनी शकल गुण्डानी, बोलैं गजबै बीहड़ बानी रामा।
हऽ चालै मिरजापुरियों की मस्तानी रे हारी॥
टेढ़ी पगड़ी पर सतरंगा साफा भी बेढंगा रामा।
हऽ डटा डुपट्टा गुलेनार या धानी रे हारी॥
कुरता भी चौकाला, डाला झूलै तिस पर माला रामा।
हऽ गण्डा गले भले बाँधे सैलानी रे हारी॥
कसी किनारदार धोती, घुटने के ऊपर होती रामा।
हऽ चलैं झूमते ज्यों हथिनी बौरानी रे हारी॥
कांधे मोटी लाठी, पैंसा कौड़ी एक न गांठी रामा।
हऽ तौ भी छकरैं, पी पी करके पानी रे हारी॥
महाजनन डेरवावैं, बिसनिन से भी माल पुजावैं रामा।
हऽ जुआ खेलावैं खुले जान पर ठानी रे हारी॥

अन्त में-

बरसहु दया प्रेमधन इनकी मूरखता हरि इन सन रामा।
हऽ देहु सुमति जो फिरै गोल बिन्नानी रे हारी॥

मिरजापुरी गुण्डों पर लिखी इस कजली में उनके सुधार की बातें कितनी प्रभावशाली ढँग से कही गयी हैं।

गाँव की राम कहानी अमिट और अनन्त है। गाँव का जीवन बहुत कुछ राम-भरोसे यानी वर्षा पर निर्भर है। किसान का जीवन पानी है। यही कारण है कि वर्षा होते गाँवों में सुख-समृद्धि का वातावरण छा जाता है। कजरी-कल्हार के गीतों से सारा का सारा वातावरण मुखरित, आनंदित, आह्लादित हो उठता है। कवि शिवदास ने ठीक ही लिखा है-

पावस ऋतु में प्रकट अति, कजरी मंजु कल्हार।
घर-घर गावत नारि नर, करि श्रावण सिंगार॥

वर्षा की बहार में गीत कंठ से फूट पड़ते हैं। प्रकृति की शोभा निराली हो जाती है। बिजली की चमक, झिल्लियों की झनकार, हिंडोला झंझा पवन की झंकोर, पपीहा की पीर, कोयल की कूक और मयूर का नृत्य सभी तो आनंद और उमंग में भाव-विभोर हो उठते हैं। कवि शिवदास के पावस-वर्णन की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

बरसै नान्हीं नान्हीं बुंदिया, आयी सावन की बहार
घहरि घटा घन दामिनि दमकै,
झिल्लिन की झनकार।
बोलत मोर चकोर कोकिला-
शीतल बहार बयार। बरसै.... ॥
सब सखि झूलैं रंग हिंडोला-
गावत मंजु मल्हार। बसरै.... ॥
वृन्दावन शिवदास बिलोकहु-
बिहरत नन्द कुमार। बरसै.... ॥

बरखा, ब्रज, बृजवासी, वनवारी, ब्रजनारी का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हम ब्रज को आदर्श गाँव मान लें, गाँव की राम कहानी स्पष्ट हो जायेगी। कजली या कज्जली को ग्राम्यजन कजरी कहते हैं। संस्कृत के कज्जल शब्द का अर्थ है-कालिमा, कालौंछ, कालिख, काजल, अञ्जन आदि। वर्षा की कालीघटा, कजली देवी यानी विन्ध्याचल की काली देवी, कजली का त्यौहार तथा कजली-रागिनी या गीत आदि भी कजली का अर्थ होता है। यह पर्व भाद्रकृष्ण तृतीया को मनाया जाता है, जब ग्राम्यजन कृषि कार्य से मुक्त होकर उत्तम फसल होने के लिए माँ काली से प्रार्थना करते हैं। यह मूलतः लोकपर्व है जिसमें हर जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय के लोग मिलजुल कर मनाते हैं। कहते हैं एक मुस्लिम देवी भक्त ने देवी को प्रसन्न करने के लिए जिस राग-रागिनी का उपयोग किया था, उसी का नाम कजली हो गया था।

जो भी हो इतना तो स्पष्ट ही है कि कजली गीतों में ग्राम्यजीवन की राम कहानी कही-सुनी जाती है। वर्षा की काली घटा के घिरते नर-नारी सभी इस गीत का आनन्द लेते हैं। स्त्रियाँ

इसका आनन्द और अधिक लेती हैं। इसीलिए इसमें ग्राम्य भाषा और भाव की ही प्रधानता भी होती है। प्राय: गाँव की स्त्रियाँ ही इसे रचती भी हैं। निरक्षर या कम पढ़े-लिखे गाँव के लोग इसमें अधिक रुचि लेते हैं। इसीलिए गाँव के यथार्थ चित्र भी अधिक मिलते हैं जैसे-

कवने रंग मुंगवा कवन रंग मोतिया
कवन रंग ननदी तोर बिरना
लाल रंग मुंगवा, सफेद रंग मोतिया,
संवरे रंग ननदी तोर बिरना॥
फूटी जइहैं मुंगवा, चिटिकि जैहैं मोतिया,
रिसाय रे जइहै ननदी तोर बिरना।
बिनी लेबै मुंगवा, बटोरी लैबै मोतिया,
मनाई के लेबै-ननदी मोर बिरना।

तथा

बरसै अदरा कै बुंदवा ठाढ़ी भींजै गुजरी।

× × ×

गुहि के मोरे मथवा कै चोटिया रे बालम
चोटिया गुहत मोहिं गरवा लगावै
गरवा में काटयै चिंकोटिया से बालम।

× × ×

जोन्हरि बोयाय जिउ के काल
राति खेते में सियार बोलै ना। इत्यादि।

कजली मूल्यत: पावस गीत है जिसका जन्म गाँव की सोंधी धरती से हुआ है। इसका प्रकृति से सीधा संबंध है। पावस की उमड़ी ललित कजली, आकाश पर छायी काली मेघमाला ही तो है। मेघ की सब पर कृपा होती है। क्या राजा क्या रंक, क्या रानी और क्या दीन घसियारनी, सबके मन में वह समान उल्लास उत्पन्न करता है। फिर उस कजली से विशेष काली की गयी वास्तव में सावन भादौं की अँधेरी रजनी जो कि कामी जनों को स्वभावत: परम प्रिय होती है, इसका उल्लेख रससिद्ध महाकवि कालिदास ने भी किया है-

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभि: कचित्प्रभिन्नंजनराशिसन्निभै:।
क्वचित्सगर्भाप्रमदास्तप्रभै: समाचितव्योमघनैस्समन्तत:॥

अर्थात् ऐसे समदर्शी मेघमालाओं ने कितने ही गहरे नीले कमल के रंग के, कितने काजल की राशि से और कितने ही गर्भवती कामिनियों के कुच के सदृश काले बादलों ने चारों ओर से आकाश को घेर लिया।

जिस प्रकार होली पुरुषों का उनके अतिशय उमंग का गीत पर्व है, उसी प्रकार कजरी स्त्रियों के उमंग का पावस-गीत-पर्व है। स्त्रियाँ इस मौसम में सहज शृँगार करतीं और प्रिय समागम की उत्कण्ठा रखती हैं। देखिए शिवदास की इस कजरी में गाँव की गोरी का एक चित्र-

तोहे सोहे सारी गुलेनार सांवर गोरिया।
तार कसी कर चटक चुंदरिया-
चोलिया सलोनी सुइकार सांवर गोरिया।
सहज शृँगार साजु चली देखी-
नये-नये विमल बहार सांवर गोरिया।
कहैं शिवदास जानी मानी लो कहानी-
अबहीं जवानी रंगदार सांवर गोरिया।

यही समय मेहंदी रचाने का होता है, एड़ी और हथेली रंगाने का होता है। गोदना गोदाने का भी यही समय होता है। नयी-नयी साड़ी, नये-पुराने आभूषण, बेला-चमेली का गजरा सभी नायिका के शृँगार के साधन अथवा उपकरण हैं। नायिका अपना शृँगार करके अपने प्रियतम का समागम चाहती है, किन्हीं कारणों से जब विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है, यानी उसके प्रियतम परदेश छा जाते हैं तो उसके दिन काटे नहीं कटते। देखिये विरहिणी की मनोदशा का एक चित्र-

बलम मोर छाये विदेसवां रे
कि रहि-रहि जिया घबराय।
चढ़त अषाढ़ गाढ़ मोहें लागे,
घन घमण्ड घहराय लोय।
बिजुली चमक रही चहुंओरियां,
अचरज अब देखाय
बलम मोर छाये बिदेसवां रे।
सावन शोक नसावन सजनी,
हमें रहो तरसाय लोय।

सब सखि झूलें रंग हिंडोला,
मोहिं तजि गयो पराय रे।
बलम मोर छाये बिदेसवां रे।
भादों बिरह बाढ़ में बैठी,
जिया बुड़ै उतराय लोय।
मदन महीप दमकि दल साजैं
कर सर चांप चढ़ाय रे।
बलम मोर छाये बिदेसवां रे।
लगत कुवारसरद घसि छायो,
दरद दुसह अपनाय लोय।
आप पिया सौतिन संग सोये,
हमरी सुधि बिसराय रे।
बलम मोर छाये बिदेसवां रे।

राम निहोर पण्डित मिर्जापुर के एक सरनामी कजली गायक हो चुके हैं। उन्होंने अपनी कजलियों में ग्राम्य जीवन के सजीव चित्र अंकित किये हैं। मिर्जापुर में कजली के कई मेले लगते हैं जिनमें स्त्रियों, पुरुषों की ठेल-पेल देखते ही बनती है। लोग मेले का आनन्द कैसे लेते हैं, गीत की ही पंक्तियों में देखिये-

लागल गंगा जी क मेला, छोड़द घरवा के झमेला-
चलि-चलि के करेजवा जुड़ालऽ गोरिया।
अपना कंघी, सेन्हुर, टिकुली सबके लगल दुकनियां
कइसे टिकुली बिकाई कइसे कजरा ओराई
तूंत सबके निकलबू दिवाला गोरिया।
ओढ़-पहिर के जब तूं निकलबू
लोग हो जइहें भक्त चार पांच के।
इधर-उधर के जब तोहें लगिहें धक्का
सुध हो जाई तोहार जवनियां,
मिटिहैं देखियां के ऐंठनियां।
कठपुतली देखबू के देखबू नवटंकी का मेला
हमसे प्रीति मिला के गावह गीत मिलन के बेला।
अपने राजा के जगावह, नेहियां नेहियां से मिलावह
बोल तोहरा के कइसन बुझाला गोरिया

कजली न केवल प्रेम शृँगार का गीत है, अपितु राष्ट्रीय चेतना, शिक्षा और जागरण का गीत भी है। स्वतंत्रता आन्दोलन में कजली गायकों का बड़ा योगदान रहा है। गाँवों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का श्रेय उन्हीं को है। स्वतंत्रता मिलने के बाद बापू के रामराज की कल्पना भी इन गीतों में साकार हुई है-

हमको मिला राज पंचायत कितना जान के बदले
बापू के बलिदान के बदले
भूख के मारे घर को छोड़कर गोरे यहाँ पर आये थे
पाकर बड़ी-बड़ी तनख्वाह खूब शान से मौज उड़ाये थे
उल्टा हम्हीं को ठोकर मार 'डेयो' 'फूल' बनाये थे
करके कानून नया वे देश में लूट मचाये थे
किया भारत को कंगाल, खुदी हो गया मालोमाल
लन्दन हरा-भरा है भारत के बीरान के बदले।
बापू के बलिदान के बदले।

इसी प्रकार नारी शिक्षा की बातें भी लिखी गयी हैं। गाँव की स्त्रियाँ इन्हीं गीतों से प्रेरणा ग्रहण करती हैं। पति-सेवा के महत्त्व पर कतिपय पंक्तियाँ देखिये-

कर पती क सेवा अब से राह बना ले सांवर गोरिया
हां सती पती संग जग में सुजस कमाले सांवर गोरिया

प्रथम चरित सुन मोरध्वज की
नारी का सुनियै धर ध्यान
पुत्र को डाले चीर आपने
मान पती का हुकुम प्रधान
सत के कारण पुत्र जिलाया,
दरस दिये झट कृष्ण सुजान
नल की नार रही दमयंती पतीव्रता का सुनो बयान
ले जा वन में नल छोड़ा तब नार नहीं मुख मोड़ा
रही ढूंढ़ पती के पड़े पांव में छाले सांवर गोरिया।

इस तरह हम देखते हैं कि बरखा गीत कजली में गाँव की राम कहानी के अगणित चित्र अंकित हैं। ये इस बात के प्रतीक भी हैं कि हमारे गाँवों के कारण ही भारत को कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था।

हर सुख-समृद्धि गाँवों में थी। उस सुख-समृद्धि की कल्पना को साकार करने के लिए हमें इन गीतों की पंक्तियों को गुनगुनाना ही पड़ेगा।

हम कामना करते हैं कि गाँव वृन्दावन और हर नारी-नर राधा-कृष्ण बने और चन्दन के पटरे पर फूलों के गजरे पहनकर रेशम की डोर लगाकर झूले का आनन्द लें और कजरी-मल्हार गाता रहे-

हरी हरी झूला झूलें वन माली, कदम की डारी रे हारी।
चंदन का लगा था पटरा, फूलों का सजा था गजरा रामा
अरे रामा लगी रही रेशम की डोर रंगवाली रे हारी।

ब्रजमण्डल में पावस ऋतु

रागिनी चतुर्वेदी

आषाढ़ आते-आते काली-काली घटायें आकाश में घिरने लगती हैं। जहाँ-तहाँ हल्की गहरी बारिश भी होने लगती हैं। कदम्ब फूलने को आतुर हो उठता है। समूचा ब्रजमण्डल हरियाली ओढ़ने बिछाने लगता है। जहाँ वातावरण में धूल उड़ती दिखायी देती थी वहाँ अब बूँदों-बौछारों का सिलसिला शुरू हो जाता है। चारों तरफ प्रकृति में एक अलग तरह का आकर्षण दिखायी देने लगता है। बरसात हो जाने के कारण वृक्षों, पहाड़ों की धूल साफ हो जाती है, जिससे उनका सौंदर्य और निखर उठता है। चरवाहों और मवेशियों में भी जीवन लौट आता है। ऐसे में ऋतुओं की रानी के आकर्षण का तो कहना ही क्या? वर्षा ऋतु के आते ही समस्त प्रकृति से प्रसन्नता छलकती सी दिखायी देती है। प्रकृति में नवीनता आ जाती है। त्यौहार, उत्सव, पर्व आदिकाल से मानव के साथ जुड़े हुये हैं। जनजीवन अपने आत्मिक सुख की अनुभूति को इन पर्वों, उत्सवों के माध्यम से व्यक्त करता है। ये उत्सव, त्यौहार हमें आपस में जोड़ने का काम करते हैं। अपनी व्यस्त जिन्दगी के चलते भी हम इन पर्वों के माध्यम से आपस में मिल लेते हैं। इन्हीं लोकाचारों और संस्कारों के माध्यम से ब्रजमण्डल में पावस ऋतु के आगमन का हमें पता चलता है क्योंकि यह संस्कार केवल जनजीवन को ही नहीं बल्कि जीवन के साथ-साथ प्रकृति को भी अनेक रंगों और रूपों में रेखांकित और रूपायित करते हैं। जेठ, बैसाख की तपती लू और गर्मी से झुलसती पृथ्वी पर वर्षा की जब पहली फुहार पड़ती है तो समस्त प्रकृति और जनमानस आनन्दित हो उठता है और अनायास ही काले-काले बादलों को देख महिलाओं के समूह से स्वर लहरियाँ फूट निकलती हैं-

अरी मैना उठी है घटा घनघोर बिजुरी तो चमकै जोर सें जी।
अम्बर गरजै बादर लरजै, अरी मैना मोर मचावत सोर॥
कोयल तो बोली हरियल डार पै, अरी मैना हंसा तो करत किलोल॥

चम्पाकली की भीजैं चूनरी, अरी मैना नन्हें
वीरन की सूही पाग॥

कच्चे नीम की निबौरी सावन बेगि अइयो रे॥
बाबा दूर मति दीजो अम्मा नांय बुलावैगी॥
कारे-कारे बदरा उमड़-घुमड़ आये, बरसे सखी
जल धार रे॥

हम प्रत्येक ऋतु का स्वागत गा-बजाकर करते हैं। वैसे तो सभी क्षेत्रों में उत्सव, पर्व, त्यौहार सम्पन्न होते हैं, परन्तु क्षेत्रों के आधार पर इनके मनाये जाने वाले स्वरूप में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य दिखायी देता है। ब्रजमण्डल में भी उत्सव, पर्व मनाये जाने का अपना विशिष्ट स्वरूप हैं। मथुरा में वैसे तो वर्ष भर यात्रियों का आना-जाना लगा रहता है, परन्तु विशेष रूप से पावस ऋतु में यहाँ के उत्सवों में सम्मिलित होने दूर-दूर से यात्री आते हैं। सावन लगते ही हिंडोला उत्सव प्रारम्भ हो जाता है जो रक्षाबन्धन तक चलता है। मंदिरों में घटायें सजती हैं। हिंडोला उत्सव के समय मन्दिरों की सज्जा देखने योग्य होती है। सावन के लगते ही द्वारिकाधीश के मन्दिर में तीन बड़े हिंडोले डाले जाते हैं। हरियाली तीज वाले दिन फल, फूलों से बना हिंडोला भी डाला जाता है। इस समय जनमानस दर्शन के लिये उमड़ पड़ता है। इन दिनों मंदिर की सज्जा विशेष रूप से नित नये प्रकार से की जाती है। राधा और कृष्ण की बाँकी छवि को देख भक्त जन गा उठते हैं-

राधे झूलन पधारो, झुकि आये बदरा।
साजे सकल शृँगार नैन कारो कजरा।

बिना राधे के कृष्ण आधे हैं-

हिंडोला कुंज बन डारौ री, झूलन आई राधिका प्यारी रे
काहे के खंभ लगवाये रे, काहे की लागी डोरियां प्यारी रे
सोने के खंभ लगवाये रे रेशम की लागी डोरियां प्यारी रे॥

युगल जोड़ी को झूलते देख भक्त जन आनन्दित होकर अपने को धन्य मानते हैं। वृंदावन में स्थित श्री बाँकेबिहारी जी के मन्दिर में स्वर्ण रजत हिंडोला हरियाली तीज से डाला जाता है। इस हिंडोले के विषय में जनमानस की अवधारणा है कि इसका निर्माण बनारस के कुशल कारीगरों ने किया था और इसमें सुन्दरता लाने के लिये कुछ मुसलमान कारीगरों की सहायता भी ली गयी थी। ब्रजमण्डल भगवान् कृष्ण की जन्मस्थली है। यह एक ऐसी भक्ति भूमि है जहाँ रंग-रूप, कद-काठी, जाति-वर्ण और लिंग का भेद नहीं रह जाता। स्वयं को मन से, वाणी से, कर्म से समर्पित करने की भावना आदमी को यहाँ खींचकर ले आती है। ब्रज ऐसी भूमि है जो एक बार यहाँ आया फिर यहीं का होकर रह गया। ब्रज के आकर्षण ने ऐसा बाँधा कि मन वहीं रम गया। इस संदर्भ में मुझे नन्ददास जी और तुलसीदास जी के बीच हुये संवाद से जुड़ा एक दोहा याद आ रहा है-

कहा कमी रघुनाथ में छोड़ी अपनी बान (तुलसी दासजी)
मन वैरागी ह्वै गयौ सुन मुरली की तान (नन्ददास जी)

तभी तो लोगों के मन में यह साध रही कि-

ये हो विधना तो पै अंचरा पसार माँगों
जनम-जनम दीजो मोहि चाहि ब्रज बसिवो,

मथुरा के सभी मन्दिरों में हिंडोला उत्सव अलग-अलग प्रकार से सम्पन्न होता है। 'राधा वल्लभ' मंदिर में हिंडोला उत्सव प्रारम्भ होने के एक दिन पहले राधा रानी का सिंघारा होता है। सिंघारे में विभिन्न प्रकार के भोग, प्रसाद, शृँगार का सामान आदि रखे जाते हैं। राधे जी की मूर्ति को मेहंदी लगायी जाती है। भक्त जन गा उठ उठते हैं-

देखौ री मुकुट झौंका लै रह्यो,
लै रह्यो जमुना के तीर॥
कौन बरन रानी राधिका,
कौन बरन घनश्याम॥
गौर बरन रानी राधिका,
श्याम बरन घनश्याम॥

इस अवसर पर गाया जाने वाला एक पद और देखिये-

श्याम झूलैं हिंडोला कुंज बन में,
कृष्ण झूलै हिंडोला मधुबन में॥

जमुना के तीर कदम की डारी,
लीजौ मौज कुंज बन में॥

दामोदर मन्दिर में भी हिंडोला डाला जाता है। इस मन्दिर में जो हिंडोला डाला जाता हैं। वह दुर्लभ वृक्ष मौलजी की लकड़ी से निर्मित हैं। दामोदर मन्दिर में गिरिराज शिला है। जनमानस की अवधारणा है कि इस मंदिर की चार परिक्रमा करने से गिरिराज की एक परिक्रमा पूरी हो जाती है। दामोदर मन्दिर में भक्तजन हिंडोला उत्सव में शामिल होते हैं और परिक्रमा कर अपना जीवन धन्य मानते हैं। बरसाने स्थित राधे जी के मन्दिर में भी यह उत्सव मनाया जाता है। लाड़िली जी के मन्दिर में हरियाली तीज से रक्षाबंधन तक हिंडोले डाले जाते हैं। संध्या के समय राधा की सवारी भी निकाली जाती है। वृंदावन स्थित राधारमण, गोपीनाथ, पागलबाबा आदि मन्दिरों में भी हिंडोला उत्सव मनाया जाता है। फल, फूल और मिठाइयों तक के हिंडोले डाले जाते हैं।

जगप्रसिद्ध मन्दिर द्वारिकाधीश में घटायें सजायी जाती हैं। जिस रंग की घटा होती है, मन्दिर को उसी रंग से सजाते हैं लहरिया की घटा भी सजायी जाती है। पूरा मन्दिर, मूर्तियों की सज्जा सब एक ही रंग से किया जाता है। घटायें देखने योग्य होती हैं। यह ब्रज की विशिष्ट संस्कृति है। यह अद्‌भुत सजावट, अद्‌भुत दृश्य अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। तभी किसी ने सच ही कहा है- 'मथुरा तीन लोक से न्यारी' या 'मैं तो भई ना बिरज की मोर'। पावस ऋतु में मथुरा की रौनक देखने लायक होती है। भादौं के महीने में कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार होता है। वैसे तो यह त्यौहार पूरे भारत में धूमधाम से मनाया जाता है, परन्तु मथुरा में भगवान कृष्ण की जन्म स्थली होने के कारण और अधिक उत्साह दिखायी पड़ता है। मथुरा में स्थित कृष्ण जन्मभूमि में रात्रि बारह बजे शंखनाद के साथ भगवान का जन्म करते हैं। बारह बजे तक भजन कीर्तन चलता रहता है। जन्म के ठीक छठवें दिन घर-घर में छठी मनाते हैं। ऐसा लगता है जैसे भगवान फिर से पृथ्वी पर अवतरित हुये हैं। इस अवसर पर ब्रजमण्डल में सोहर, बधाई, पालना, कृष्ण जन्म से सम्बन्धित भजन आदि गाये जाते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले बधाई गीतों का अंश-

नंद घर बजत बधाई ऐरी माई मैं सुनके आई॥
रानी जसोदा बेटा जायो उन घर बजत बधाई॥

× × ×

गोकुल बजत बधइया नंद घर सोहर हो,
जैसे उपजें हैं दीनदयाल, दोऊ कुल तारन हो।
घूँघट वाली जरूली तो अति छवि लागे, बहुत नीकी लागे हो॥

पावस के दिनों में जहाँ मगही, भोजपुरी, अवधी, बुन्देली इलाकों में कजरी गायी जाती हैं, वहीं ब्रज में मल्हारें खूब गायी जाती हैं। भाव लगभग वही होते हैं। दरअसल मौसम को मन से जीना भी एक कला है, जो इस कला के धर्म और मर्म को जानता है, वह सचमुच मौसम का आनन्द लेता है। मल्हारें विविध धुनों और विविध शैलियों में गायी जाती हैं। एक स्थिति प्रधान मल्हारें उदाहरण स्वरूप यहाँ रख रही हूँ, जिनसे ब्रजमण्डल के लोकमन की पहचान आसानी से हो जाती है। खेती-बारी, नौकरी चाकरी जैसी अनिवार्यताओं के बीच रिश्तों के निर्वाह की अनिवार्यता भी होती है। रिश्तों के इस निर्वाह में स्त्रियों के लिये ससुराल और मायका ओर-छोर की तरह होता है। स्त्रियों का मायके जाने का मोह बुढ़ापे तक नहीं छूटता, विशेषकर तीज, कजरी, राखी के नाते स्त्रियाँ मायके अवश्य जाती हैं। ब्रजमण्डल में मायके जाने की परम्परा आज भी है। सावन के महीने में लगभग सभी लड़कियाँ मायके आ जाती हैं। इसी भाव से जुड़ी एक मल्हार-

केवट नइयां लै आओं डोला, म्हारौ भीजै बैरी बिरछ सौं॥
पचरंग भीजैं म्हारी चूनरी, सइयां की भीजै सूही पाग॥
संग की सहेली नइहर गयी, हम भीजै मग माहि॥
हाथ कौ देउंगी मै मूंदरा, और हिये कौ री हाट॥

इस मल्हार गीत में स्त्री अपने भाई को क्या विनय कर रही है-

आयो सनूनौं सुखद सुहावनौं जी,
ऐजी कोई रखिया बंधाय लै मेरे बीर॥
बात न पूछी तैने अब तलक जी,
ऐजी कोई अब तो बनाय लै रे बात॥

ब्रज में राखी को सनूनो कहते हैं। ब्रजमण्डल में पावस

ऋतु में कुछ ऐसी मल्हारें भी गायी जाती हैं, जिनमें छोटी-छोटी कथाएँ समाहित रहती हैं। ऐसी मल्हारों में चन्दना, मनरा, मोरा, मरबिन आदि हैं। 'चन्दना' में एक ऐसी लड़की की कथा हैं जिसका विवाह हो गया है, पर गौना नहीं हुआ है। इस आशय के एक गीत का अंश-

तीजन चरचा चन्दना की है रही जी,
ऐसी कोई परौ है गलिन में सोर,
सिर बदनामी चन्दना क्यों लयी जी॥

इस श्रेणी के गीतों में एक गीत है- 'मनरा'। यह गीत भी ब्रजमण्डल में खूब गाया जाता है।

अलिन-गलिन मनरा फिरै री, अरी मैना मनरे कौ लीजो रे बुला
चूड़ा तो हाथी दाँत, चूड़ा तो मेरे मन बसो रे॥
हरौ जंजाली रे मनरा ना पहनूँ, अरे मनरा हरे मेरे राजा जी लेबा
चूड़ा तो हाँथी दाँत, चूड़ा तो मेरे मन बसौ रे॥

दाम्पत्य से जुड़ी एक मल्हार में नायिका का पति जोगी हो गया है, अपने इस दर्द को वह इन शब्दों में व्यक्त कर रही है-

देखो सखि सइंया जोगी है गये,
हमहूँ जोगिन हवै जांय॥
जोगी रगावैं पीले कापड़े
जोगिन गावै मल्हार॥

एक बारहमासा गीत में गोपियाँ भगवान कृष्ण की प्रतीक्षा कर रही हैं, वर्षा ऋतु बीत रही है, पर वह अब तक नहीं आये है-

ऐरी सखी ब्रजराज न आये, वर्षा ऋतु बीत गयी॥
जेठ तपे दिन रैन अषढ़वा में उमड़-घुमड़ बरसे
सावन पड़े है हिंडोले, कृष्ण राधे के संग झूले॥

कुछ ऐसी मल्हारें भी ब्रज में गायी जाती हैं जिनमें निर्गुण भाव देखने को मिलता है। ऐसी मल्हारें कम भजन ज्यादा होती हैं। इन मल्हारों को वृद्धजन और एक खास वर्ग ही गाता है।

वर्षा के दिनों में जहाँ साधु-सन्तों की, व्यापारियों की यात्राएँ स्थगित हो जाती थीं, वहीं गृहस्थों की जिम्मेदारियाँ कुछ और बढ़ जाती। दरअसल चौमासा एक संकल्प की तरह जीने की परम्परा रही है। साधु-सन्त गुरु पूर्णिमा से पहले अपने-अपने स्थानों पर आ जाते थे, पर गृहस्थ जन रोजमर्रा की जिन्दगी के चलते बराबर आते-जाते रहते थे। ऐसे सुहावनें मौसम में नायिका अपने पति को परदेश जाने से रोक रही है-

अबके सावन सइंया घर से न निकरो,
ना जाओ मोरे महाराज रे॥
घन की चोट जैसे बदरा लागे
बिजुरी लगैं जैसे गाज रे,
नागिन फूल सेजरिया लागे,
तुम बिन मोरे महाराज रे॥

सावन, भादों में ब्रजमण्डल के मन्दिरों में सैंझी बनायी जाती है। सैंझी में विविध रंगों के संयोजन से मांगलिक चित्रों और कृष्ण की लीलाओं को दर्शाया जाता है। सैंझी बनाते समय लड़कियाँ सावन के गीत गाती हैं। पावस ऋतु में नागपंचमी, हरियाली तीज, ऋषि पंचमी, हरितालिका तीज, बल्देव छठ, राधा अष्टमी आदि त्यौहार सम्पन्न होते हैं। कुछ विशेष तिथियों पर मेले भी लगते हैं। इन्हीं दिनों लड़कियाँ साँझी खेलती भी हैं। भुजरियाँ भी बोयी जाती हैं। भुजरियाँ प्रवाहित करके लौटते समय सावन के गीतों के साथ आल्हा-ऊदल से सम्बन्धित गीत भी गाये जाते हैं।

पूरे पावस भर ब्रजमण्डल में भारतीय संस्कृति अपने आध्यात्मिक और मौलिक रूप में रची बसी दिखायी देती है। ब्रज की संस्कृति राधा-कृष्ण से जुड़ी हुयी है, इस कारण राधा कृष्ण मानवीय सम्बन्धों में प्रत्येक स्थल पर रचे-बसे हुये दिखायी देते हैं। राधा-कृष्ण के आलम्बन से गाये जाने वाले गीत आज भी जीवन्त हैं। ब्रज के लोकगीतों में चाहे मल्हार हो या रसिया, बारहमासा हो या फाग प्रत्येक गीत में कृष्ण के दर्शन अवश्य हो जाते हैं। हालाँकि तरह-तरह के दबावों के रहते आज हम उत्सवों, पर्वों को उस तरह नहीं मना पाते, जिस तरह पहले मनाते थे। इन दबावों का प्रभाव हमारी लोकसंस्कृति पर भी पड़ा है।

निसिदिन बहै दूध की धारा, मूरख जाने पानी।

मथुरा में भी यमुना का वह रूप नहीं दिखायी देता जो आज से कुछ वर्षों पहले दिखायी देता था। यहाँ का जनमानस भी राग-रंग, उत्सवों से दूर होता जा रहा है। भौतिकता आदमी को सुविधायें तो दे सकती हैं, परिणाम में आदमी को केवल मशीन या मशीन का पुर्जा बनाकर छोड़ देगी। आने वाले दिनों में आदमी की ऐसी ही तस्वीर दिखायी देगी, जो ज्यादातर कष्टकर होगी। इसीलिये आवश्यक है कि हम अपनी परम्परा को नया जीवन दें, अपने अतीत को फिर से स्थापित करें।

कुमाउनी ऋतु गाथाः रितुरैण

प्रो. देवसिंह पोखरिया

वसन्त ऋतु के आगमन पर चैत के महीने 'रितुरैण' गायन प्रारम्भ होता है। इसे 'चैती' भी कहा जाता है। इस करुणांत गाथा में गोरिधना की कथा वर्णित है। गोरिधना का विवाह नागराजा से होता है। विवाह के बाद वह कभी मायके के देश नहीं आ पाती। हर वर्ष नई ऋतु आती है, फूल खिलते हैं, भ्रमर डोलते हैं, विभिन्न पक्षी–न्यौली, घुघूती, कफू चहक कर चले जाते हैं, पर गोरिधना से भेंट करने कोई नहीं आता। अभागी गोरिधना की शय्या रोते–रोते गीली हो जाती है। गोरिधना का छोटा भाई बालक सजदेव धीरे–धीरे बारह वर्ष का हो जाता है। एक दिन साथियों द्वारा उपालंभ दिए जाने पर वह माँ से अपनी बहिन के बारे में पूछता है। माँ उसे गोरिधना के विषय में बताती है। चैत के महीने की भेंट–पूड़ियाँ, खाद्यान्न एवं वस्त्रादि लेकर वह अपनी बहिन से भेंट करने चल पड़ता है। अपनी ननद के मुँह से भाई के आने की सूचना पाकर गोरिधना भाई को भेंटने दौड़ पड़ती है। भाई स्नेह के अतिरेक में बहिन को प्रणाम करना तक भूल जाता है। कालीनाग के आने पर गोरिधना बड़–पीपल और गंगा–यमुना की शपथ देती हुई भाई के आने की बात बताती है। कालीनाग बिना पूछे–विचारे बालक सजदेव को दंश मारता है। बालक सजदेव भी तीर मारता है। दोनों मर जाते हैं। गोरिधना दोनों को मरा देख पत्थर से जीभ काटकर स्वयं भी प्राण त्याग देती है। भागा नंद के कारण तीनों घर रीते हो जाते हैं। अंत में गाथा गायक वैशाख को उलाहना देता हुआ कहता है कि तुमने भला किया ऋतुराज वैशाख, जो तीनों घर रीते कर दिए। बहिन–भाई का मिलन अब कहाँ होगा? या पिता के घर या गंगा–यमुना के संगम पर।

हना राजो पापीया ले मरि रे जान रितु।
यना राजो बचन अमर रे रलो रितु।
उना राजो जो रे भागी जिया रे रलो रितु।
महाराजो उई रे रितु रे सुणलो रितु।

अना राजो बार वे मैना मैं को रितु।
अना राजा कोइ रे मैना जैठो रितु।
यना राजो बार रे मैना मैं को रितु।
यना राजो जेठो रे जेठ होलो रितु।
हना राजो मैना मैं को रडिल्लो रितु।
हना राजो कोई रे मैं ना होलो रितु।
यना राजो मैना मैंको रडिल्लो रितु।
यना राजा रडिल्लो रे बैसाग रितु।
महाराजो अन्नऽ में को जेठो होलो रितु।
महाराजो जौं तील को अन्न जेठो रितु।
यना राजो फूलन में को जेठो रितु।
यना राजो फूलन में जेठो होलो रितु।
यना राजो तोड़ि को रे फूलऽ ऽ रितु।
अना राजो रुखन में को रे जेठो रितु।
अना राजो रुखन में जेठो होलो रितु।
अना राजो बड़ू पीपल को रे रुख रितु।
अना राजो तीरथन में को रे जेठो रितु।
अना राजो तिरथन में जेठो होलो रितु।
यना राजो बाग्यस्यर तीरथऽ ऽ रितु।
यना राजो देबतों में को रे जेठो रितु।
यना राजो देबतों में जेठो होलो रितु।
यना राजो बरमा रे द्यब्ताऽ रितु।
हना राजो भिणा रे प्यौली फुली जाली रितु।
हना राजो डालि पातऽ पलुरी जालाऽ रितु।
हना राजो भँवरी रिटालाऽ रितु।
हना राजो गैलमैला पातला रितु।
हना राजो नेवली बासली ला रितु।
हना राजो उचा धुरा सिकरा ला रितु।
हना राजो क्रेराली ला बासली रितु।
महाराजो बाड़ा भिड़ ला ऽ ऽ रितु।
महाराजो घुगूती घूरली ला ऽ रितु।
महाराजो बन डाली बोट ला ऽ रितु।
महाराजो कफूवा रे बासलोऽ रितु।
रितु बैणा रितु ला पलटी आली रितु।
रितु बैणा रितु ला पलटी आली रितु।
जो भागी जी रौलो सो भागी सुणलो रितु।

जो भागी जिई त रौलो सो भागी सुणलो रितु।
आब आ मुडा मणीसो काँ भटी सुणलो रितु।
गयो मुडा मणीसो काँ भटी सुणलो रितु।
बार ला मास को द छय रितु आली रितु।
छय रितु आली ला बरे चड़ी बासली रितु।
महाराजो रिटि रे फिटि योई रेमैना रितु।
महाराजो गोरिधना भितर रे ढलढल रोली रितु।
हनाराजो बास रे इ बास न्यौली चड़ा रितु।
हना राजो म्यारा रे मैत बास रे जाला रितु।
बाबू सुणाला भिटौली रे ल्याला रितु।
बास बास कफू चाड़ा म्यारा मैत बास रितु।
जिया, सुणली मेरी भिटौली दिजाली रितु।
द्योरानी जेठानी भै भेटन आला रितु।
महाराजो नैं रे मेरा पिठी रे भाइलो रितु।
महाराजो नैं रे मेरा गुती रे बालकऽ रितु।
महाराजो नैं रे मेरा घुणी रे पारो रितु।
महाराजो बिना भाई की बैना रे रितु।
गोरिधाना रौतेली र्‌वे धाना लगाली रितु।
तै बखत ले ब ला ब हियो भरी ऊँछ रितु।
हियो भरी ऊँछ ला कलिजो कोरींछ रितु।
भाना द्यो की चेली ला र्‌वे धाना लगूँछी रितु।
छाजा में बै भेरा लू र्‌वे धाना लगूँछी रितु।
को मैता बोलाला को दैजो ठेलाला रितु।
मोटिया लुकुड़ी ला निचन है जाँछी रितु।
मासिनी लुकुड़ी लाल गातन भिजुली रितु।
द्योरानी जेठानी का भिटौलिया आला रितु।
भाई जती हुनू ला भिटौली ल्हि ऊनू रितु।
इजू जती हुनी ला मैतुड़ा बुलूनी रितु।
को मैता बोलालो दऽ को दैजो ठेलालो रितु।
गोरिधना रौतेली दऽ र्‌वे धाना लगूँछी रितु।
ये, पापी बाबु ले ला चेलि बेची खायी रितु।
ये चौ गडा पार ला चेली बेची खायी रितु।
बुबा ज्यू ले दियूँ ला ये मुणी पयाल रितु।
मुणी रे पयाल दहाँ कालिनाग घरऽ रितु।
गोरिधना रौतेली रे आँसु जै ढोलँछी रितु।
भानाद्यो करन ह्वे ग्यो बड़ भारी दुख ला रितु।

गोरिधना कन ह्वे ग्यो बड़ भारी दुख ला रितु।
सबै खिन आई रिछ चैतुवा को मैना रितु।
गोरिधना खिन लाऽ को ऊँछऽ भेटुली रितु।
यो मुणी पयाल दऽ झुमझुम्या बरखा रितु।
झुमझुम्या बरखा दऽ लुपलुप्या छ हौलो रितु।
छाजा बटी गोरिधना आँसु ढाली रुँछी रितु।
मखिया आडड़ी दऽ नेतर भिजाली रितु।
बारै ला मैना की दऽ छयै रितु आली रितु।
छयै रितु आली दऽ बार् फूल फुलाला रितु।
मैना चैतो भुमी का भूम्याला जिया रितु।
मैना चैतो द रितु सुणला जिया रितु।
मैना चैतो रातै का चनर्मा जिया रितु।
मैना चैतो द रितु सुणला जिया रितु।
मैना चैतो दिनै का सूरीज जिया रितु।
मैना चैतो द रितु सुणला जिया रितु।
मैना चैतो अजुध्या नडर जिया रितु।
मैना चैतो भाना देउ ठाकुर छिया रितु।
मैना चैतो रानी छी जसोदा जिया रितु।
मैना चैतो बिरद का बुड़ा ह्वे ग्या रितु।
मैना चैतो नातर पुतर नी भ्याऽ रितु।
मैना चैतो क्या ढब करण मीले रितु।
मैना चैतो अजुदा नडर जिया रितु।
मैना चैतो बाँजो पै पड़ो जिया रितु।
मैना चैतो बाड़ा छन गैवाली मेरा रितु।
मैना चैतो लवादा छन भैंस्वाली मेरा रितु।
मैना चैतो दुनियाँ का च्याला ब्वारी हाँ रितु।
मैना चैतो राज वे पाट खेलाला हाँ रितु।
मैना चैतो हमू ले नि राया जिया रितु।
मैना चैतो गंगानू का नाम जिया रितु।
मैना चैतो गधेरा नै हाला जिया रितु।
मैना चैतो देबतों का नौं ले जिया रितु।
मैना चैतो ढुङ्ग पुजी हाला जिया रितु।

× × ×

प्यूँलाड़ि में हात ऽ ऽ मूख धोली ऽ
छ्योड़ि आब सूरिज मनाली रितु।
प्यूँलाड़ि में सिन्दूर पैरली ऽ ऽ
छोरि आब आरसी हेरलीऽ रितु।
प्यूँलाड़ि में आब देबता पुजली ऽ
छोरि आब मोलरी देबतोऽ रितु।
प्यूँलाड़ि में देबता पुजलीऽ
छोरि आब चननऽ चड़ाली रितु।

× × ×

भाना द्यो की रानी स औछन लागाला रितु।
रानी जसोदा को नारङी को मनऽ रितु।
नारङी मिलाला मुणी का पयालऽ रितु।
नारङी का सोद बाटोली न्हैगया रितु।
भानाद्यो ठाकुरा बटोली न्है गया रितु।
कालीनागा घरऽ नारङी का सोद रितु।
कलिया नाग ले सर्त राखी हाली रितु।
सरत मानलै दी द्यूँलो नारिङ रितु।
चेली हुन परऽ मेरा ब्यवै देलै रितु।
तब दिंछू नारिङ भाना रे ठाकुरा रितु।
बोली को बचन दियो भाना रे ठाकुरा रितु।
नारिङ ल्हीबेर ठाकुर घर आई जाला रितु।
की सोचँछ मनऽ कसो होई जाँछऽ रितु।
दैब छ सबल करमै की खानीऽ रितु।
भानाद्यो का घरऽ चेली होई रैछऽ रितु।
भानाद्यो का घरऽ चेली होई रैछऽ रितु।
कलिया नागा डर लै गाब की मज्याली रितु।
लुकै हाली चेली ओ भाना ठाकुरा रितु।
चेली नाम पड्यो बाली गोरिधना रितु।
कालिनाग कन चलि गयो पतो रितु।
स्यापन को दल भाना घर आयो रितु।
कनौलीन स्यापै पटाङ्णी स्यापै रितु।
भितर भ्यारै लाऽ छूड़ी स्यापै स्याप रितु।
गोठ खुटकूणी स्यापै स्याप रितु।
मुस्या स्याप आयो गाबै की मज्याली रितु।
काखी में लुकार्यी गोरिधना धेकि हाली रितु।
मुस्या स्याप गयो कालिनागा धाँतीऽ रितु।
दल बादल ल्यायो कालीनाग आयो रितु।

रूनी छ झुलानी यो जसोदा रानी रितु।
मारँछ फुंकार मारँछ डुंकार कलिया रितु।
एक नैं माननु कलिया नागऽ रितु।
गोरिधना बाली काखी है थमूँछऽ रितु।
गोरिधना बेवाई ल्हैग्यो मुणी का पयाल रितु।
रूनी छ झुलानी यो जसोदा रानी रितु।
जो भागी जी रौलो द सो रितु सुणलो रितु।
ओ रितु पलटि ऐछऽ बरसी को दीन रितु।
भानाद्यो की चेली दऽ मुणी का पयाल रितु।
भिणा फूली प्यौली ला गाड़ा फुली भिटरी रितु।
जसुदा का क्काला आयो सजद्यो बालो रितु।
रिटि फिटि आयो दऽ रडिल्लो बैसाग रितु।
गुरजी की बेलि जसो बालो बड़ँछ रितु।
काकड़ि की बेलि जसो बालो बड़ँछ रितु।
दिन छोड़ी मैना मैना छोड़ी बर्स दऽ रितु।
सावनी की गाड़ जसो बालो बड़ँछ रितु।
कैरूवा की काती जसो बालो बड़ँछ रितु।
बर्स छोड़ी बर्स दऽ बड़ँछ बालो रितु।
बार बरसी को रे सजद्यो बालो रितु।
ग्वालान दगाड़ दऽ गोरुन को ग्वालो रितु।
चैतोली को मैना दऽ गोरून को ग्वालो रितु।
संगी नड़क्याला दऽ बिन बैनी को भाई रितु।
तू पर झा तू पर झा बिन बैनी को भाई रितु।
हमारा दगाड़ा दऽ तू जन खेलिये रितु।
ग्वालान दगाड़ा दऽ जुज्या होई रैछ रितु।
रुना रुना बालो लाऽ घर पुजी गयो रितु।
जसोदा मुखूनी लाऽ डाड़ रे डड़्यौंछ रितु।
हिकुरी हिकुरी लाऽ बालो डाड़ रे मारँछ रितु।
बतौ बतौ मेरी इजू मेरी बैनी छ कि नैंछ रितु।
इजा मेरी बतै देली बैनी छ कि नैंछ रितु।
हरदंगा पै गिछ द बालो रे सजद्यो रितु।
पड़ि गैछ बाल हठ बालो रे सजद्यो रितु।
इजा तैंले नि बतायो मेरी बैणी पतो रितु।
जिबठुणी लगै भेर मैं इती मरूँलो रितु।
नैं रो नैं रो मेरा प्वथा ओ बाला सजद्यो रितु।
भौत पैली तेरी बैनी कलिया बेवायी रितु।
बार बर्स बिति ग्यान न खोज खबरऽ रितु।
तेरी दिदी ब्यवै ल्हैग्यो नागवंसी राजा रितु।
तै मुणी पयाल प्वथा चौगंगा का पार रितु।
बिखैला मुलुक प्वथा गोरिधना बेवाई रितु।
ढुलढुल रुन लागी मायड़ी जसुदा रितु।
तबै बटी मैंल प्वथा गोरिधना नैं धेकी रितु।
मैं दीदी स भेटी ऊँलो जूँलो नागलोक रितु।
मेरी इजू पकै देली तू खाजा खजुरा रितु।
मैंले जानू मेरी इजू यो मुणी पयाल रितु।
धर धर मेरि इजू आडड़ी पिछोड़ी रितु।
धर धर मेरि इजू गातै की घागरी रितु।
बट्यौ बट्यौ मेरि इजू पूरी दऽ सिडल्ल रितु।
धर धर मेरि इजू टका रुपैं भेंट रितु।
चैतोली को मैनु आयो दिदी बाणू धर रितु।
न जा न जा मेरा प्वाथा तै मुणी पयाल रितु।
न जा न जा मेरा प्वाथा हड़ोली मुलुक रितु।
सरप की जात बाला बड़ी बिखमार रितु।
तू मनख्या जात बाला न जा नागलोक रितु।
वाँ सबै सरप छन बिखै बिखैमार रितु।
एकै नैं माननू बालो हरोहट्ट पड़ी रितु।
बट्यूँन लगैछ तब भिटौली छापरी रितु।
जसुदा ले द ऽ ऽ बट्यूँन लगाया रितु।
खाजा रे खजुरा पूरी रे सिडल्ल रितु।
आडडी घागरी द पिछौड़ा पागड़ा रितु।
बारै बरस का दऽ लाता रे लुकुड़ा रितु।
खाजा रे खजुरा बाला दऽ फुटि ग्यान रितु।
गात की लुकुड़ी दऽ गुड़मैली ह्वे गैछ रितु।
कपाल पिठाँयाँ बाला बाडे लागी गिछ रितु।
जाना का बखत बाला असकुना ह्वे ग्यान रितु।
पिठि लै छापरि बादी बाला लाग्यो बाटा रितु।
अटोली छोड़ँछै बाला बटोली लागँछे रितु।
बाटा अदूबाट छोड़ी मुणी का पयाल रितु।
मुणी का पयाल बाला पिपली चौरड़ी रितु।
पिपली चौरड़ी बजै मोहनी मुरली रितु।
मुरली को सुर गयो गैली नागलोक रितु।
टोर न्है गै नागलोक गोरिधना काना रितु।

जा ननद भागा जा धैं पिपली चौरड़ी रितु।
हमरी जै नागलोक आज को लोग्या आयो रितु।
दौड़ि दौड़ि भागा पुजी पिपली चौरड़ी रितु।
पिपली चौरड़ी भटी भागा घर दौड़ी रितु।
ओ बौजी औ बौजी सुण अनार तुमरी रितु।
हँसै बोलै उठै बैठै चाल ढाल तुमरी रितु।
मेरा त क्के भाई नि थ्यो को लोग्या हुनलो रितु।
दौड़ि दौड़ी गोरिधना भै भेटन पुजी रितु।
जब कयो भाना ले बौजी तुमरो भाई छ रितु।
द्वियै भाई बैनी आब आमनी सामनी रितु।
ढलढल रुना द्वियै हिकुरी हिकुरी रितु।
दिदि भाया द्वियों का रोया रो लागि रै रितु।
द्वियनै दऽ गाला मिली र्‌वे धोई नैं हुनी रितु।
एक्कै खून एक्कै गोदी भेद नैं करनी रितु।
ढोग दिन भुलि गिछ द सजद्यो बोलो रितु।
कसिकै हिटलै म्यारा भाया नागलोग रितु।
कालिनाग त्वेस भाया मार मारी देलो रितु।
तू लुकी जा उप्याँ बनी मेरी धपेली में रितु।
धपेली में लुकै बालो गारिधना पुजी घर रितु।
हुंकार फुंकार कनै आइ पुज्यो काली नाग रितु।
यो मनसुद्‌या बास कौलो काँ भटी ऐ रैछ रितु।
मैं भयूँ मनख स्वामी मैं भटी ऐ रै हौ रितु।
त्वे भटी तऽ मनखैनी कभै नी ऊँछी रानी रितु।
तुमि दिय पैंलि स्वामी बोलि को बचन रितु।
तब ह्यूँलो स्वामी तमरी बात को जबाब रितु।
तब दियो कलिया ले गंगा जमुना की बच्या रितु।
तब दियो राजाले बड़ी पीपल की बच्या रितु।
धपेली है भयार आयो द सजद्यो बालो रितु।
पैलाग कै ढोक दिंछ द सजद्यो बालो रितु।
नागराजा तुमि म्यारा भिना ज्यू पैलाग रितु।
चैतोली का मैना भिना चैतोलो ल्यै रयूँ रितु।
दीदी का दगाड़ भेट भै पूरा बार बर्स में रितु।
खोलन लगाया तैले बार बर्सा आडड़ा रितु।
खोलन लगाया तैले बार बर्सा पिछौड़ा रितु।
खोलन लगाया तैले बार बर्सा घाघरा रितु।
सुण भिना बैनि आली मैतोड़ी का देश रितु।
मेरा बाबा मेरी ईजा चेली की नराई लागी रितु।
दिदि की करि दियौ भिना तुम डोली तयार रितु।
भाई बैना द्वियै बाटा लागि ग्या मैतोड़ा रितु।
भागा नंदा ले तब पाप रची हाल्यो रितु।
द्वियै भै बैनान दादा ढोक भेट नैं भै रितु।
तानागाँठो भागानंद ले नागराजा धैं खोल्यो रितु।
सुण दादा तेरो सालो नि छ्यो तो मनख रितु।
तेरी रानी कन दादा जानी को लोग्या ल्हैग्यो रितु।
भाई बैनी तन हुना ढोक भेट हुनी रितु।
नागराजा ले तब छाड़ी बीस की फुंकार रितु।
पाछी पाछी नागराजा पिछा पड़ी ग्यो रितु।
कै बेला मनखी रूपऽ कै बेला सरप रितु।
एक एक फन उठै फुंकार मारँछ रितु।
रुक रुक लोग्या दऽ तैं सालो न्हाते मेरो रितु।
तसो न कौ भिना मैं सालो तुमरो रितु।
तसो न कौ स्वामी यो भाया छ मेरो रितु।
नागराजा आब दऽ एक नैं माननू रितु।
सजद्यो द बालो न सोद्‌यो न पुछ्यो रितु।
नागराजा ले हाणि दिया दऽ तीन ठपुक रितु।
सजद्यो बालक द टस ले मस रितु।
मैं झुटो हुँलो त भिना इती मरी जूँलो रितु।
आब मेरी बारि भिना तू समलि जाये रितु।
कानि तानि तीर मार्‌यो सजद्यो बाला ले रितु।
कालि नाग उल्टि बेर उती लै मरी ग्यो रितु।
गोरिधना हिटना बाटै बिधौवा बनी गै रितु।
स्वामी स्वामी भाया भाया गोरिधना डड्यूँछी रितु।
बिधौवा बनी की मैंले क्या मैतोड़ा जानूँ रितु।
स्वामी का सामनी मैंले यतीलै मरनूँ रितु।
जिबठुणी लगै भेरी छाड़ँछी परान रितु।
दिदि भिना मरि ग्यान मैंले क्या बचन रितु।
सजद्यो ले छोड़ि दिया आफना परान रितु।
इचली कनली का तीता भलि करे भागानंद रितु।
तीनै घर कर्‌या रीता भलि करे भागानंद रितु।
तेरी रीस तेरी डा ले भलि करे भागानंद रितु।
तीनै घर भया रीता भलि करे भागानंद रितु।
भलि करै बैसागऽ तीनै घर कर्‌या रीता रितु।

दीदी भुली दऽ कथ भेट होली रितु।
कित भेट होली इजा बाबू घर रितु।
कित भेट होली गंगा रे जमुना रितु।

हे लोगों! पापी (शरीर) को मर जाना है, ऋतु। हे लोगों! (दुनिया में) वचन अमर रह जाता है। यहाँ आकर जो भाग्यवान जीवित रहता है वही ऋतु (ऋतु गीतों के बोल) सुनता है। लोगों! बारह महीनों में कौन माह जेठा होगा। लोगों! बारह महीनों में का जेठा माह 'जेठ' होगा। हे लोगों! महीनों में का रंगीला कौन माह होगा। महीनों में का रंगीला वैशाख माह होगा। महाराज! अन्नों में कौन जेठा होगा। महाराज! जौ तिल का अन्न जेठा। हे लोगों! फूलों में कौन जेठा होगा। हे लोगों! सरसों का फूल। हे लोगों! वृक्षों में कौन जेठा होगा। हे लोगों! वट और पीपल का वृक्ष। हे लोगों! तीर्थों में कौन जेठा होगा। हे लोगों! बागेश्वर तीर्थं। हे लोगों! देवताओं में कौन जेठा होगा। हे लोगों! देवताओं में जेठा ब्रह्मा देवता होगा। हे लोगों! खेतों की दीवारों पर पीली प्यौली फूल गई। हे लोगों! डाल-पात पलुहा गए। हे लोगों! भौंरे भ्रमण करने लगे। हे लोगों! गहरे-घने वन प्रांत में न्यौली पक्षिणी कूकने लगी। हे लोगों! ऊँचे 'शिखर' पर्वत पर क्वेटाली पक्षिणी चहकने लगी। महाराज! आँगन के खेतों और मेढ़ों पर घुगूती पक्षिणी घूरने लगी। महाराज! वन में डालों-वृक्षों पर कफुवा पक्षी बोलने लगा। ऋतु बहिना, पलट-पलट आती है। जो भाग्यवान जीवित रहता है, वह सुनता है। अब भुआ मनुष्य कहाँ से सुनेगा। गया हुआ मृत मनुष्य कहाँ से सुनेगा? बारह महीनों में छः ऋतुएँ आती हैं। छहों ऋतुएँ आती हैं भाँति-भाँति के पक्षी बोलते हैं। घूम-फिरकर यही माह फिर आता है। महाराज! गोरिधना अपने कक्ष में ढलढल रोती है। तुम कूको-कूको न्यौली पक्षी। मेरे मायके के देश जाकर कूको। पिता जी सुनेंगे (चैत की) भिटौली लाएँगे। बोलो-बोलो कफुवा पक्षी, मेरे मायके जाकर बोलो। मेरी माँ सुनेंगी, भिटौली दे जाएँगी। देवरानी, जिठानी के भाई भेंटने आते हैं। महाराज! न मेरे पीठ का भाई है। न मेरी गोद में बालक है। न मेरे घुटनों में दूध दुहने का बर्तन है।

महाराज! बिना भाईयों की बहिन। गोरिधना रौतेली धाड़ मारकर रोती है। उस समय हृदय भर आता है। हृदय भर आता है, कलेजा छलनी हो जाता है। भानादेव की बेटी धाड़ मार कर रोती है। छज्जे में बैठकर धाड़ मार कर रोती है। कौन मायके बुलाएगा, कौन दहेज भिजवाएगा, मोटे कपड़े भीग कर गीले हो जाते हैं। महीन कपड़े शरीर पर चिपक जाते हैं। देवरानी-जिठानी के भेंट पहुँचाने वाले आते हैं। मेरा भी भाई होता तो भेंट ले आता। माँ होती तो मायके बुलाती। मुझे कौन मायके बुलाएगा, कौन दहेज भिजवाएगा? गोरिधना रौतेली धाड़ मारकर रोती है। मेरे पापी पिता ने बेटी बेच खाई। पिता ने मुझे ब्याहा इस गहरे पाताल लोक में। गहरे पाताल लोक, कालीनाग के घर। गोरिधना रौतेली आँसू ढुलकाती है। भानादेव को बड़ा भारी दुख हो गया। गोरिधना को बड़ा भारी दुख हो गया। सबके लिए चैत माह आ गया। इस गहरे पाताल में रिमझिम वर्षा लगी है। रिमझिम वर्षा हाँ, लपलपाता कोहरा छाया है। छज्जे पर गोरिधना आँसू ढुलकाती रोती है। मखमल की अँगिया आँसुओं से भींग जाती है। बारह महीनों की छहों ऋतुएँ आती हैं। छहों ऋतुएँ आती हैं, बारहों तरह के फूल खिलते हैं।

माह चैत की भूमि के भूम्याल देवता, रात के चंद्रमा, दिन के सूर्य अयोध्या नगर सभी सुनेंगे। माह चैत का (में) भानादेव ठाकुर थे। माह चैत की रानी थी जसोदा माँ। माह चैत की (दोनों) अवस्था से वृद्ध हो गए थे। माह चैत का पुत्र, नाती नहीं पैदा हुए। माह चैत का क्या उपाय करना चाहिए? माह चैत का बंजर हो जाने वाला है, माँ बाड़ों में दुधारू गाये हैं मेरी। सद्यःप्रसवा दुधारू भैंसैं हैं मेरी। दुनिया वालों के बेटे-बहुएँ राज-पाट चलाएँगे। हम निपूते रह गए माँ। माह चैत का गंगाओ के नाम माँ। माह चैत का (हमने छोटे नदी-नालों में नहा लिया) माँ। माह चैत का देवताओं के नाम से (हमने) चैत का (सारे) पत्थर पूज दिए माँ। शृँगार कक्ष में हाथ-मुँह धोने लगी (वह रानी) युवती बन अब सूरज को मानने लगी। शृँगार पेटिका से सिंदूर निकालकर शीश का शृँगार करेगी, युवती बन अब (स्वयं को) शीशे में निहारने लगी। शृँगार कक्ष में अब (वह) देवता की पूजा करने लगी। युवती ने अब मूल्य चुकाया देवता का। शृँगार कक्ष में अब (देवता को) चंदन चढ़ाएगी।

× × ×

भानादेव की रानी को दोहद की इच्छा जगी। रानी जसोदा

का नारंगी खाने का मन हुआ। नारंगिया मिलेंगी गहरे पाताल लोक में। नारंगी की खोज में चल पड़े। भानादेव ठाकुर चल पड़े। कालीनाग के घर नारंगी की खोज में। कालीनाग ने (भानादेव के सामने) शर्त रखी। शर्त मानोगे, तो दे दूँगा नारंगी। बेटी होने पर (तुम उसे) मेरे ब्याह दोगे। तब देता हूँ नारंगी भाना ठाकुर। नारंगी लेकर ठाकुर घर आ गया। (मनुष्य का) मन क्या सोचता है और हो क्या जाता है। दैव सबल है, भाग्य का ही (यहाँ) खाना होता है। भानादेव के घर बेटी पैदा हुई है। कालीनाग के डर से गर्भगृह के मध्यकाल में छिपा दी बेटी भाना ठाकुर ने। बेटी का नाम पड़ा बाला गोरिधना। कालीनाग को (इस बात का) पता चल गया। साँपों का दल भानादेव के घर आ पहुँचा। घर के पिछवाड़े साँप, प्रांगण में साँप। भीतर-बाहर (जहाँ देखो) साँप ही साँप। गोष्ठ में सीढ़ियों में साँप ही साँप। मूसिया साँप आ धमका गर्भगृह के मध्य कक्ष में। गोद में छिपाई गोरिधना को उसने देख लिया। मूसिया साँप चला गया कालीनाग के पास। साँपों के दल-बल के साथ कालीनाग आया। रोती है, बिलखती है जसोदा रानी। फुँकार-डुंकार मारता है कालिया नाग। एक नहीं मानता कालिया नाग। बालिका गोरिधना को (माँ की) कोख से उठाता है। गोरिधना को ब्याहकर ले जाता है गहरे पाताल लोक। रोती-झूरती रह जाती है जसोदा रानी। जो भाग्यवान जीवित रहेगा, वह ऋतु सुनेगा। वर्ष के दिन और ऋतु पलट कर आते हैं। भानादेव की बेटी गहरे पाताललोक पहुँच गई। खेतों की दीवारों पर पीली प्यौली और खेतों में भिटारू के सफेद लाल छौंह फूल खिल उठे। जसोदा की कोख में सजदेव बालक आया। घूम-फिर कर फिर वही रंगीला वैशाख आ गया। गुरजी की बेल की भाँति बालक बड़ा होता जाता है। काकड़ी की बेल की भाँति बालक बड़ा होता जाता है। दिन छोड़ माह और माह छोड़ वर्ष बीतने लगा। सावन की उफनती छोटी नदी जैसा बालक बड़ा होता जाता है। कैरूवा की गाय के कोपल जैसा बालक बड़ा होता जाता है। वर्ष-दर-वर्ष बड़ा होता जाता है, बालक। सजदेव बालक अब बारह वर्ष का हो गया। ग्वालों के साथ गायों का ग्वाला जाता है (वह)। चैत का महीना है, वह गायों का ग्वाला है। संगी-साथी उसे ताना देते हैं-बिना बहिन का भाई। तुम दूर जाओ, दूर हटो, बिना बहिन वाले भाई। तुम हमारे साथ मत खेलो। उसमें परस्पर झगड़ा होता है। रोते-रोते बालक अपने घर पहुँच गया। जसोदा के सम्मुख पहुँच धाड़ मारकर रोने लगा। सिसक-सिसक कर रोने लगता है वह। बताओ-बताओ मेरी माँ! मेरी कोई बहिन है कि नहीं!। माँ मेरी, मुझे बताओ, मेरी बहिन है कि नहीं है? हठ कर बैठा बालक सजदेव। बाल-हठ पकड़ लिया बालक सजदेव ने। माँ! यदि तुमने मेरी बहिन का पता नहीं बताया। तो मैं पत्थर से जीभ काटकर यहीं प्राण त्याग दूँगा। न रोओ, न रोओ! मेरे बच्चे! बालक सजदेव! (मैं बताती हूँ) बहुत पहले तेरी बहिन कालीनाग को ब्याह दी थी। बारह वर्ष बीत चुके हैं, उसकी कोई कुशल-क्षेम नहीं मिली। तुम्हारी दीदी को ब्याह कर ले गया नागवंशी राजा। उस गहरे पाताल चौगंगा पार बेटे। विषैले मुल्क बेटे गोरिधना विवाही। ढुलढुल रोने लगी माँ जसोदा। तभी से मैंने बच्चे, गोरिधना नहीं देखी। मेरी माँ! तुम पका दो खाजे-खजूरे। मैंने जाना है अब मेरी माँ, गहरे पाताल। रखो-रखो, मेरी माँ अँगिया-ओढ़नी। रखो-रखो, मेरी माँ शरीर का लहंगा। तैयार करो, तैयार करो, मेरी माँ, पूड़ी और सिंगल। रखो-रखो, मेरी माँ, रुपया-टका भेंट। चैत माह आ गया, दीदी का भाग रखो। न जाओ, न जाओ मेरे बच्चे, उस गहरे पाताल को। न जाओ, न जाओ मेरे छौने, सर्पीले मुल्क को। साँप की जात बेटा, बड़ी विषमार चलती है। तू मानव जात है बेटा, न जा नागलोग। वहाँ सब सर्प रहते हैं, विषैले सर्प विषमार चलते हैं। बालक एक नहीं मानता, हठ पकड़ लेता है। तब माँ तैयार करने लगी (बेटी के लिए) भिटौली की डलिया। खाजे-खजूरे के लड्डू फूट गए। शरीर के कपड़े मटमैले हो गए। कपाल पर टीका टेढ़ा लग गया। जाते समय बच्चे अपशकुन हो गए। पीठ पर डलिया बाँधकर बालक रास्ते पर चल पड़ा। वह जगह छोड़ता है बालक बटिया पर आता है। मार्ग आधा पारकर वह गहरे पाताल लोक पहुँचता है। (पाताल की) उस शीर्ष चोटी की तलहटी में बालक पीपल के पेड़ वाले चौराहे पर बैठा। पीपल-चौराहे पर उसने बजाई मोहिनी मुरली। मुरली का स्वर गया गहरे नागलोक को। वह तान चली गई नागलोक गोरिधना के कानों में। ओ भागा ननद! जाओ, देखो तो पीपल-चौराहे पर। हमारे नागलोक में आज कौन मनुष्य आया?। दौड़ी-दौड़ी भागा ननद पहुँची पीपल-चौराहे। वहाँ पहुँचकर भागा घर की ओर दौड़ी।

ओ भाभी, ओ भाभी! तुम्हारी ही जैसी सूरत है। हँसना-बोलना, उठना-बैठना और चाल-ढाल भी तुम्हारे जैसा है। मेरा तो कोई भाई नहीं था, कौन व्यक्ति होगा। दौड़ी-दौड़ी गोरिधना भाई

को भेंटने पहुँची। जब कहा भागा ने 'भाभी, तुम्हारा ही भाई है'। दोनों भाई-बहिन अब आमने-सामने थे। (दोनों) ढलमल रोने सिसक-सिसक कर। दीदी और छोटे भाई दोनों रोते रहे। दोनों गले मिलकर रोने से नहीं अघा रहे थे। एक खून और एक कोख भेद नहीं करता। अपनी दीदी को प्रणाम करना तक भूल गया बालक सजदेव। कैसे चलोगे भैया, तुम मेरे नागलोक? कालीनाग तुम्हें भैया, दंश मारकर मार देगा। तुम पिस्सू बनकर छिप जाओ मेरे जूड़े में। अपने जूड़े में उसे छिपाकर गोरिधना घर पहुँची। हुंकारता-फुंकारता आ पहुँचा कालीनाग। यह मनुष्य की गंध कहाँ से आ रही है रानी? तुमसे तो मानव-गंध कभी नहीं आती। 'स्वामी, पहले आप मुझे वचन दो। स्वामी, तब दूँगी मैं तुम्हारे सवाल का जवाब। तब दिया कालीनाग ने गंगा-जमुना का वचन, ऋतु। तब दिया राजा ने वट-पीपल का वचन। तब जूड़े से बाहर निकल आया सजदेव बालक। 'पाँवलागूँ' कहकर प्रणाम करता है सजदेव बालक। 'हे नागराजा! तुम्हें मेरे जीजाजी, पाँवलागूँ। चैत के माह जीजा जी चैतोला (भेंट) लाया हूँ। दीदी से मेरी भेंट पूरे बारह वर्षों बाद हो रही है'। खोलने लगा वह बारह वर्षों की अँगियाओं की भेंट। खोलने लगा वह बारह वर्षों की ओढ़नियों की भेंट। खोलने लगा वह बारह वर्षों की लहंगों की भेंट। 'सुनिए जीजा जी, मेरी बहिन जाएगी मेरे साथ मायके के देश। मेरे माता-पिता को अपनी बेटी का उदास लगा है। जीजा जी, आप दीदी की डोली तैयार कर दें। बहिन भाई के साथ अपने मायके की ओर चल पड़ी। भागा ननद ने तब पाप रच डाला। 'बड़े भैया! दोनों भाई-बहिनों में आपस में प्रणाम-आशीष कुछ नहीं हुआ'। मन में बँधी गाँठ नंद ने नागराजा के सम्मुख खोली। 'सुनो बड़े भैया! तुम्हारा साला नहीं था वह मनुष्य। तुम्हारी रानी को भैया जाने कौन व्यक्ति ले गया? ये अगर भाई-बहिन होते, तो इनमें परस्पर कुशल-क्षेम अवश्य होती। नागराजा ने तब विष की फुंकार छोड़ी। उनके पीछे दौड़ता नागराजा उनका पीछा करने लगा। किसी समय मानव रूप धरे किसी समय सर्प का। एक-एक फन उठा कर फुंकार मारता है। रुको, रुको मनुष्य, तुम मेरे साले नहीं हो। ऐसा न करो स्वामी! यह मेरा छोटा भाई है। नागराजा अब एक नहीं मानता। सजदेव बालक से उसने न कुछ कहा न पूछा। नागराजा ने उसे तीन दंश मार दिए। सजदेव बालक टस से मस न हुआ। मैं झूठा होऊँगा जीजा जी, तो यहीं मर जाऊँगा। अब मेरी बारी है जीजा। तुम थोड़ा सँभलना। कान तक तान कर तीर मारा सजदेव बालक ने। कालीनाग उलट कर वहीं पर मर गया। गोरिधना रास्ते चलते विधवा हो गई। स्वामी-स्वामी! भैया, भैया! गोरिधना धाड़ मारकर रोती है। विधवा बनकर मैं अब क्या मायके जाऊँ? स्वामी के सम्मुख अब यहीं पर मृत्यु का वरण करती हूँ। अपनी जीभ काटकर वह प्राण त्याग देती है। दीदी-जीजा मर गए हैं, अब मुझे क्या जीवित रहना? (यह कहते) सजदेव ने भी (वहीं पर) प्राण त्याग दिए। मेंढ़ और खेत के उपरले भागों पर उगी 'तीता' घास, भला किया भागा ननद तुमने। तुम्हारे डाह, तुम्हारे क्रोध ने भला किया भागा ननद तुमने। तीनों घर हुए रीते, भला किया भागा ननद तुमने। भला किया वैशाख तुमने, तीनों घर किए रीते। बहिन और भैया की भेंट कहाँ होगी? या भेंट होगी माता-पिता के घर। या भेंट होगी गंगा-जमुना के तट पर।

गाथा गायिका- श्रीमती अनुली देवी, ग्राम-पो. डाँगटी, पट्टी गर्खा, जिला-पिथौरागढ़

निमाड़ी बारामासा की लोक कविता

वसन्त निरगुणे

बारामासा या बारहमासा का शाब्दिक अर्थ बारह महीने होता है। वही बारह महीने जो हर व्यक्ति के शरीर, मन और मस्तिष्क से गुजरते हैं। पशु-पक्षियों के ज़हन से गुजरते हैं। धरती-आकाश के भीतर से गुजरते हैं। अनुभूतियों के अनन्त आस्वाद होते हैं। ये प्रत्येक महीने के दिन, सप्ताह, पक्ष और पखवाड़े के हर नक्षत्र के क्षण। बारामासा मे इन्हीं अनुभवों को सहेजने का प्रयास किया है लोक ने। बारामासा ऋतु चक्र की गहरी अनुभूतियाँ होती है। संवत्सर का प्रथम चैत्र माह कैसा लगता है? पूस माघ की ठण्डी रातों में क्या होता है? ग्रीष्म में जेठ माह की तपती दोपहरी कितना पसीना बहा देती है। आषाढ़ की प्रथम बौछार कितना सुख देती है आदि-आदि। शीत, ग्रीष्म और वर्षा इन ऋतुओं का सूक्ष्म निरीक्षण बारामासा गीतों में देखा जा सकता है। लोक की पैनी नजर इन गीतों में परिलक्षित होती है। लोक की इन सामूहिक रचनाओं में बारहमासों की विभिन्न स्थितियों और जनमन पर उनके प्रभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति का इज़हार होता है। ऐसे गीतों में सहज अलंकारिता देखते बनती है। स्थान-स्थान पर दी जाने वाली उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, रूपकों और व्यंजनाओं ने बारहमासा गीतों को लोक काव्य की सबसे ऊँची कोटि में समाहित करा दिया है। बारहमासा गीत लोक काव्य की अद्‌भुत, उत्कृष्टतम रचनाएँ होती हैं जिन्हें सुन-पढ़कर कोई भी अभिभूत हो सकता है। बारहमासा लोक कविता की बाराखड़ी होती है। जिसमें बारहों महीनों की जलवायु का मानवीयकरण काव्य भाषा में मिलता है।

बारहमासा गीतों में प्रायः विरहिणी नायिका को मुख्य पात्र बनाया जाता है, जिसके प्रियतम देश परदेश गये हैं या बस गये हैं। राधा-कृष्ण के माध्यम से बारामासा गीतों में विरह-मिलन की स्थितियों का वर्णन भी इन गीतों का मुख्य आधार होता है।

बारामासा के साथ चौमासा के गीत भी गाये जाते हैं, जो वर्षा से ही सम्बन्धित होते हैं। आषाढ़, सावन, भादों और कुँवार में जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें चौमासा गीत कहते हैं। चौमासा का सीधा अर्थ वर्षा के चार महीनों से है। लोक में चौमासा की उपस्थिति अपने

आप में कई क्रिया कलापों के लिये ख्यात है। चौमासा में कृषक के खेती के काम कम हो जाते हैं, तब किसान घर पर रहते हैं। साधु सन्त चौमासा में किसी एक स्थान पर रहते हैं। महिलाएँ बाहर के कामकाजों से निकलती नहीं है। उनका प्रायः व्रत-उपवास का समय होता है। पशु-पक्षियों के लिये भी चौमासा असमंजस का अवसर होता है। काले बादलों को देखकर मयूर नाचते हैं। धरती हरियाली से भरपूर हो जाती है। आकाश बादलों से ढंका रहता है। सूर्य की लुका-छिपी का समय होता है। खेतों में फसलें लहलहाती हैं। नदी-नाले, तालाब पानी से भरपूर होते हैं। चारों ओर खुशियाली होती हैं। प्राणीमात्र चौमासा से अनुप्राणित हो उठते हैं। चौपालों पर रामायण गाई जाती है। महिलाएँ फुरसत के समय में समूह में चौमासा के गीत गाकर अपने मन के आनंद को बिखेरती हैं। यानी पृथ्वी पर वर्षा ऋतु का महाकाव्य इन चार महीनों में सर्वत्र झरने लगता है। भारत में शीत, ग्रीष्म और वर्षा इन तीनों ऋतुओं के कारण न जाने कितने तरह के प्रभाव जनमन को मिलते हैं, यह प्रकृति की भारत की धरती को सबसे बड़ी देन है। इन सारे अनुभवों को बारामासा, चौमासा और स्फुट वर्षा गीतों में देखा जा सकता है। भारत की समस्त बोलियों में बारामासा गीत मिलते हैं। प्रदेश की चारों प्रमुख बोलियों, निमाड़ी, मालवी, बुन्देली और बघेली में बारामासा गीतों की कमी नहीं है। ये बारामासी गीत बोलियों की वाचिक परम्परा की अमूल्य धरोहर हैं। इनका गायन प्रायः वर्ष भर होता है। बारामासा की कोई एक निश्चित धुन नहीं होती, इन्हें विभिन्न लोकगीतों की धुनों में ही गाया जाता है। विभिन्न लोकगीतों में भी अवसर के अनुकूल बारामासा गाये जाने की लोक में परम्परा मिलती है। इसे बारामासा, बारामासी, बारहमासा आदि कहा जाता है, इनमें भी चौमासा यानी वर्षा के चार महीनों का वर्णन सर्वाधिक मिलता है।

यहाँ केवल निमाड़ अंचल में प्रचलित बारामासा गीत दृष्टव्य हैं। निमाड़ में स्त्री और पुरुषपरक दोनों तरीके से बारहमासा गीत गाये जाते हैं। महिलाएँ प्रायः बिना वाद्य के और पुरुष वाद्यों के साथ ये गीत गाते हैं। गरबी, गवलन पुरुषपरक ऐसे ही गीत है। भजन और गरबा स्त्रीपरक हैं। निमाड़ी का एक बारामासा गीत आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व डॉ. कृष्ण लाल हंस ने संकलित किया था। उसे यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यह एक गवलन गीत है।

प्रभुजी अब घर आओ श्याम, सरस राधे बनी।
अदला-बदला गाजिया।
कारी काठ कमाण राग मलहार सुनावणे। प्रभु जी....
प्रभु मेरो लगियो मास असाढ़।
ये जी लग्यो मास असाढ़।
धुरऊँ दिशा गाजिया।
ये जी शीतल चल्या पवन, दवासा दाजिया।
ये जी मिठड़ा बोलऽ भाहर दमकी दामिनी। प्रभु जी....

दोहा- *सपनो देख्यो ये सखी, राधा बठी रोज,*
प्रीतम आवसे पाहुणा, पहिली सरावण तीज।

दौड़- *पहली सरावण तीज, प्रेम रस गावणा,*
मंहगो अतर मंगाय, फुलेल सी नहावणा।
ये जी कर सोळा-सिंगार, खड़ी राधे कामनी। प्रभुजी.....

दोहा- *गरजऽ घटा घिर आवता, नऽ बीज करऽ मुख बात।*
सेज पलंग सुणो पड्यो, प्रभु भर भादव की रात॥

दौड़- *ये जी भर भादव की रात, बिजळई हळबळे ये।*
जी नद्दी हो नाळा भरपुर, गंगा देह थरहरे।
प्रभुजी किणसे करूं पुकार सुणो सखि आपुणी। प्रभु जी.....

दोहा- *पच्छम दिशा नी पवन से पंछी करता मोज।*
समन्दर मोती नीपजे, स्वात बूंद या सोच॥

दौड़- *प्रभुजी स्वात बूंद या सोच, सीप सग नीपजे।*
ये जी सब फली फूल बहार, भँवर सुस उपजे।
प्रभु जी भँवरो बिलम्यो बाग, चमेली अरू मोगरा। प्रभुजी....

दोहा- *सुकस्थाली नीपजे, इन्दर पुरवे आस।*
हरि मंदिर पूजा कहां प्रभुजी लग्यो कातिक मास॥

दौड़- *ये जी लग्यो कातिक मास, दिवाळी रा खेलणा।*
ये जी मुंगी खड़ी मंगाय, मंदिर बीच डोळणा॥
ये जी घर-घर दिवाळी पुजाय, कि मयंदी रा रचणा॥
प्रभुजी....

दोहा– *ठण्ड रीत आई ठाफरा, ऊँचा घणा रहेगास।*
सिरका लागऽ सुहावणा, लग्यो अगहन मास॥

दौड़– *ये जी लग्यो अगहन मास, शिवाळो हाकियो।*
म्हारा प्रभु गया रे परदेस, देसाउर चालियो।
प्रभु जी रम्भा राजकुमार कामनी। प्रभुजी.....

दोहा– *ठण्ड रीत आई सू करां, दीजे कणार दोस।*
जिनका प्रीतम घर नहीं, उनकऽ मारऽ पोस॥

दौड़– *उनखऽ मारऽ पोस, अकेली हऊं डरूं।*
म्हारो नानो सो बाळक जीव, ठण्ड मऽ थरहरू॥
प्रभु जी सदा सुरंगी नार, राधे कामनी। प्रभुजी....

दोहा– *चढ़ी अटारी चांदणी, राधा जोवऽ वाट।*
गिरधारी कब आवसे, लग्यो महीनो माघ।

दौड़– *ये जी लगियो महिनो माघ, वसन्त बधावणा।*
ये जी अम्ब का मउर मंगाय, मुगुट पर मेलणा॥
ये जी बसन्त पंचमी आज, श्री कृष्ण बधावणा। प्रभुजी.....

दोहा– *हरी रीत घर की करो, ब्रज मऽ करो रहेवास।*
पान छेड़ नीचा पड़े, लग्यो फागुन मास।

दौड़– *ये जी लग्यो फागुण मास, फाग रा खेलणा।*
अब ब्रज मऽ भयो हो आनंद, श्रीकृष्ण लियो बधावणा।
ये जी कर केसर मोगरा, खडूप ओढ़नी। प्रभुजी.....

दोहा– *दातुण हलोद समोन, तिरिया मुख तमोळ।*
गोरी व्रत गणगोर को, चइत मास की चौत॥

दौड़– *ये जी चइतमास की चौत, रमे सब गोरिया।*
ये जी पेरो जरी जरतार, हेम की डोरिया॥
प्रभु जी गळा बिच नवसरो हार,
करेली मोगरिनऽ। प्रभु जी...

दोहा– *कोयल बोली यों कहे, सुन प्रीतम म्हारी वात।*
बेगा करो बिछावणा, आई रितु वैशाख॥

दौड़– *ये जी आई रितु वैशाख, गलीचा रा पोढ़ना।*
ये जी चोवा चन्दन मंगाय, जिमिणऽ
छिटकावणा।
प्रभु जी कर केसर मोगरा, कुसुमळ ओढ़ना।
प्रभुजी....

दोहा– *गजं मोतिन का थाळ, सोवरन झारी भर लाई।*
उधव कहो कुसलात, प्रभु घर आविया॥
आरती करऽ जसोदा माय, कि मंगल गाविया।
ये जी सूरदास बलिहार, की जोड़ी हद बनी।
प्रभुजी अब घर आओ श्याम, सरस राधे बनी।

हे स्वामी! अब घर आ जाओ, राधा सज-धजकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। इधर आसमान में छोटे-बड़े बादलों की आवाजाही हो गई है, कुछ बादल तो गरजने लगे हैं। काले-काले बादलों को उठते देख, आम्रकुंजों में काली कोयल पानी आने का मल्हार राग सुनाने लगी है। आषाढ़ का महीना लग गया है। ध्रुव यानी उत्तरी दिशा में बादल छाने और गरजने लगे हैं। पहली ठण्ड की ठण्डी हवा चलने लगी है। दिन पहली बरसात के छींटे पड़ने से मिट्टी की सोंधी सुगन्ध से भर गया है। मेंढक टर्र-टर्र बोलने लगे हैं, इधर बिजली चमकने लगी है। हे सखि! जब से राधा ने परदेश गये कृष्ण को सपने में देखा है, तब से वह रूठी हुई बैठी है। पहला श्रावण तीज का त्यौहार है। जब तक प्रियतम घर मेहमान बन न आते, तब तक स्त्री के लिये इस श्रावण तीज के व्रत उपवास आदि का महत्त्व नहीं है। पहली श्रावण तीज तो प्रेम से पगे गीतों को गाकर उनका रस यानी आनंद लेने का है। राधा ने अपने प्रियतम की अगवानी में मंहगे इत्र, सुगन्धित तेल-फुलेल से स्नान किया है और वह उनकी प्रतीक्षा में सोलह शृँगार किये खड़ी है।

काली-काली घटाएँ घिर आई हैं, वे गरज रही हैं, उनमें बिजली चमक रही है। ऐसा लगता है जैसे बादल और बिजली आपस में एक दूसरे के मुख देखकर बातचीत कर रहे हैं। ऐसी भादव माह की घनघोर घटाओं में घिरी रात में गोरी के पलंग पर बिछाई गई प्रियतम की सेज खाली पड़ी है। भादव की काली रातों में बिजली चारों दिशाओं में लहरा रही है। नदी नालों में पानी लबालब हो गया हैं, गंगा जैसी बड़ी नदियों के दोनों किनारे बाढ़

से परिपूर्ण हो गये हैं। पानी इतना कि गंगा का शरीर थरथरा रहा है। हे सखि! इतनी भयावह स्थिति है कि घर से बाहर निकलना मुश्किल है। अपना दु:ख किसे कहूँ, किसे पुकारूँ? यह दु:ख तो प्रियतम ही मिटा सकते हैं।

पश्चिम दिशा से तेज ठण्डी हवाएँ चल रही हैं, पक्षियों की उड़ान से पता चलता है कि पश्चिम की इन हवाओं ने पक्षियों को कितना खुश कर दिया है। समुद्र की सीप में मोती पैदा होता है। ऐसे मेरे स्वामी सीप के मोती की तरह पैदा हुए हैं। उन्हीं के कारण फल-फूल, बाग-बगीचों की बहार है, फल-फूलों का रस लेने से भँवरे को आनंद मिलता है। पता नहीं मेरे भँवरे रूपी स्वामी किस बगीचे के चम्पा-चमेली-मोगरा आदि फूल-कलियों में रम गये हैं।

चारों ओर सुखदायक हरियाली मेघों के राजा इन्द्र की कृपा से फैल गई है। उन्होंने सबकी आशाएँ पूरी कर दी हैं। कार्तिक मास आ गया है। यह माह व्रत-उपवास, अनुष्ठान, पाठ-पूजा का है। मंदिरों में पूजा शुरू हो गई है। इसी कार्तिक मास में दीपों का पर्व दीपावली आता है। दीपावली के आगमन पर आंगन में रांगोली-मांडणे शोभायमान होते हैं। हर कोई दीवाली पर्व के उत्साह में घर में घूमता-फिरता है। घर-घर में दीपावली के दियों की कतारों के साथ लक्ष्मी पूजन का आयोजन हो रहा है। स्त्रियों ने हाथों में सुंदर-सुंदर कलात्मक मेंहदी के मांडणे रचे हैं।

ठण्ड का शुष्क मौसम आ गया है। हमारा निवास भी ऊँचे स्थान पर बना हुआ है। जहाँ खूब ठण्ड लगती है। ऐसे में सिरका (एक प्रकार की निमाड़ की रजाई) ओढ़ना बहुत अच्छा लगता है। सिरका छोड़ने का मन नहीं करता। जब ऐसा होने लगे तो समझ लो अगहन महीना लग गया है। अगहन माह शिव की पूजा-अर्चना का है। अत: शिवालय यानी शिव के मंदिरों में जाना अच्छा लगता है। ऐसे में प्रियतम धन कमाने के लिये परदेश निकल गये हैं। इधर घर में उनकी प्रियतमा जो इन्द्र के दरबार की सबसे सुन्दर अप्सरा के समान है। घर में वह गोरी अपने राजकुमार की प्रतीक्षा कर रही है।

ठण्ड के मौसम में नायिका अकेली है, इस बात के लिये वह किसे दोष दे? जिनके प्रियतम घर में नहीं है, वे नायिकाएँ पौष माह की ठण्ड से मर ही जाती हैं। जिस समय प्रियतम को घर में होना चाहिए, तब वे परदेस में हैं। ऐसे में नायिका घर में अकेली डर रही है। उसका छोटा सा शिशु मन है। ऊपर से कँपा देने वाली ठण्ड पड़ रही है। फिर भी नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा में लगी है, उसे सदैव प्रसन्न रहने वाली नायिका को पूरा विश्वास है कि उसके स्वामी अवश्य आयेंगे।

चाँदनी रातों में राधा अटारी पर चढ़कर प्रियतम की राह देख रही है। माघ का महीना लग गया है। अभी तक स्वामी नहीं आये हैं। सुषमायुक्त वसन्त ऋतु आ गई है। वसन्त में आम पर बौर आ गये हैं। कोयल की कुहू-कुहू की मीठी तान छिड़ गई है। आम पर पीले-पीले बौर दूल्हे के सिर पर बंधे मौढ़ के समान सुन्दर लग रहे हैं। प्रकृति ने आम के सिर पर मुकुट बाँध दिया है। वसन्त पंचमी का आज त्यौहार है। ऐसे में राधा को परदेशी श्रीकृष्ण की याद आना स्वाभाविक है, क्योंकि वसन्त पंचमी के दिन ही राधा और कृष्ण प्रथम बार मिले थे और एक दूसरे के प्रेम बंधन में बँध गये थे।

फागुन का महीना लग गया है, फागुन पतझड़ का महीना है, पेड़ों से पत्ते-गिरने लगे हैं। फागुन के महीने में तो ब्रज में रहना चाहिए, जहाँ कृष्ण और राधा मिलकर फाग खेलते हैं। होली का त्यौहार मनाते हैं, रंग गुलाल उड़ाते हैं और रास रचाते हैं। ब्रज की होली बहुत प्रसिद्ध है। ऐसा कहते हैं, आज भी कृष्ण और राधा ब्रज में होली खेलने आते हैं। टेसू के केसरिया रंग में मोंगरे की सुगंधी घोली गई है। उससे गोरी की चूनरी रंग दी गई है। उसकी ओढ़नी पर फाग का बसन्ती रंग खूब फब रहा है।

चैत का महीना आ गया है। चैत्र वर्ष का पहला माह है। चैत्र माह की अगवानी में सभी स्त्री-पुरुष लग जाते हैं। गोरियाँ सुबह-सुबह नीम की दतौन से दाँत चमकाती है। उनके तन का हल्दिया रंग सुबह की पीली धूप में और निखर गया है। इस पर मुँह धोने के बाद गोरियों ने पान खा लिया है। उनके अधर लाल हो गये हैं जिससे उनकी सुन्दरता द्विगुणित हो गई है। ऐसे में निमाड़ की परिणिता स्त्रियों का सर्वप्रिय त्यौहार गणगौर आ गया है। निमाड़ की सारी स्त्रियाँ गणगौर पर्व मनाने निकल पड़ी हैं।

सबने जरीदार खूबसूरत महंगी साड़ियाँ पहन ली हैं, जिस पर रेशम की डोरिया यानी ऊपर की ओढ़नी भी पहनी गई है। गले में नवसरिया हीरे-मोती का हार पहन लिया है। जिसमें स्वर्ण की मोंगरे की कलियाँ टकी हुई हैं।

कोयल की मीठी बोली सबको सुनाई दे रही है। उसकी बोली प्रियतम से कह रही है- शीघ्र बिस्तर लगाओ, वैशाख में गलीचे पर पैर रखना अच्छा लगता है। वैशाख में गरमी से जमीन तपने लगती है, नायिका ने गरमी से बचने के लिये चन्दन और अन्य सुगन्धित तेल मंगवा लिये हैं। फूलों से अंकित हल्की पतली चादर ओढ़ना अच्छा लगता है।

ज्येष्ठ का महीना शुभ मिलन का है। राधाकृष्ण मिलने से हर्षित है। मन में मिलन की उमंग है। दोनों के मन मिल गये हैं। गज मोतियों की थाल साजन की अगवानी में सजाई है। पीने के लिए सोने की झारी में जल भरकर रखा है। गोपियाँ उद्धव से कृष्ण की कुशलता पूछ रही हैं- हमारे श्याम कब आयेंगे। माता जशोदा उनके लिये आरती सजाकर बैठी हैं। उनके आने की खुशी मे मंगलगीत गाने को वह उत्सुक है। सूरदास कहते हैं- राधा कृष्ण की जुगल जोड़ी सदैव बनी रहे, मैं राधा कृष्ण की जोड़ी पर निछावर हूँ। यह बारहमासा गीत सूरदास की छाप लगाकर गाया गया है।

म्हारा कृष्ण गया परदेश आज नहीं आया रे,
मथुरा ना मारग माय कि वाट हमी जोवां रे।

सखी आषाढ़ महीनों आयो कि शिव हमी पूजा रे,
सखी शिव नऽ चढ़ावां बेल की शिव नऽ रिझावां रे॥ 1॥

सखी श्रावण महीनों आओ कि झूला हमी बांधा रे,
म्हारा कृष्णजी नहीं आया कि झूला केम झूलां रे॥ 2॥

सखी भादव महीनों आयो कि रंग म रूमा रे,
म्हारा कृष्ण जी नी परसां थाळ कि बिड़ला बनागं रे॥ 3॥

सखी कुँवार महीनों आयो कि बनफल फूल्या रे,
म्हारा आई गया भगवान कि मंगळ गावां रे॥ 4॥

म्हारा कृष्ण गया परदेश, आज नहीं आया रे,
मथुरा ना मारग माय कि वाट हमी जोवां रे॥ 5॥

हमारे कृष्ण परदेस चले गये हैं। आज तक नहीं आये। उनके आने की प्रतीक्षा है। मथुरा का मार्ग हम देख रहे हैं।

हे सखि! श्रावण महीना लग गया है। हमने झूलने के लिये झूला बंधाये हैं, पर कृष्ण के बिना सावन में झूला झूलना अच्छा नहीं लगता है। हे सखि! भादव आ गया है, आओ भादव के रंग में सराबोर हो जायें। मतलब भादव में घनघोर बरसने वाले पानी में भींज जाये। कृष्ण के लिये अच्छे पकवान बनाकर थाली सजाकर रखें। एक-एक करके सभी पकवान परोसे और पान के बीड़े बनाकर उनकी प्रतीक्षा करें।

हे सखि! कुँवार महीना भी लग गया है, बाग-बगीचों और वन में सभी प्रकार के फल पक गये हैं। अब तो उनकी प्रतीक्षा समाप्त हो गई है। श्रीकृष्ण घर आ गये हैं। अब हम सब मंगल गीत गायें। आनंद मनाये। उनके मिलन की आस पूरी हो गई है।

एक चौमासा गीत में यौवन की उपेक्षा कर रहे नायक को श्रीकृष्ण के बहाने उलाहना दी गई है।

म्हारो आयो जोवन वई जाय,
सावळिया न कैजो रे जाई समझाई
आषाढ़ मास भला आविया रे वाला,
मोर पपैया बोलऽ
कीड़ी-मकोड़ी सब घर करऽ रे वाळा,
सागर करऽ रे किलोल।
श्रावण मास भला आविया रे वाला,
झिर-मिर वरस्या मेघ,
भींजऽ ते राधिका नी चूंदड़ी रे वाला,
भींजऽ रुदैया नो हार।
भादव मास भला आविया रे वाला,
धमकी नऽ वरस्या मेघ,
दळ-बादल सब छाई रया रे वाला,
कोण सन्देशों लई जाय।

कुंवार मास भला आविया रे वाला,
इन्दर पूरिया आस,
नरसिंह ना स्वामी न जाई कयजो रे वाला,
राधिका जोवऽ थारी वाट।

मेरा मदमस्त यौवन यूँ ही चला जा रहा है। कोई मेरे परदेस बसे हुए प्रियतम (साँवलिया) को जाकर यह बात बता दे।

इधर आषाढ़ का मनोहारी महीना लग गया है। मोर और पपीहे बोलने लगे हैं। कीड़े-मकोड़े अपने-अपने घर बनाने लगे हैं। सागर में बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं। लहरें किल्लोल कर रही हैं। बादल गगन में विचरने लगे हैं।

सावन का सलोना महीना आ गया है। रिमझिम पानी बरस रहा है। राधा की चूंदड़ी भीग रही है और उसके हृदय पर पड़ा हार भी भींज रहा है।

भादव का मदमस्त महीना आ गया है। घनघोर वर्षा हो रही है। चहुँओर बादल छा रहे हैं। काले-काले बादलों का घटाटोप हो रहा है। ऐसे मौसम में प्रियतम के पास मेरा संदेश कौन लेकर जाय, यही कठिनाई है।

क्वाँर का निर्मल महीना आ गया है। इन्द्र देवता ने सभी की मनोकामना पूरी कर दी है। भगवान श्रीकृष्ण से नरसिंह स्वामी प्रार्थना करते हैं- राधिका तुम्हारी राह देख रही है। जल्दी से घर जाओ। यौवन निकला जा रहा है।

गोपियाँ कृष्ण को रास रचाने के लिये आमंत्रित कर रही हैं। इस बहाने बारह महीनों का वर्णन देखिए- गीत में गुजराती का प्रभाव स्पष्ट है।

आओ न हरि रास रमो वाला,
जसोदा का नंद तणा लाला,
हो गोपियो मां रास रमे वाला....

हो कार्तिक कृष्ण गया काली,
हो घर न आया विट्ठल बन माली,
कुबजा सिद्ध ना लागे प्यारी.....

मांगसिर मन घणा रमता,
हो भेला बैठी भोजनियो जीमता,
बालाजी ने साथ लई रमता....

पोस मा सोस पड्यो हमनऽ
हो जीवन जी सामऽ मल्या हमन,
दिलासा सिद्ध नऽ दीदा हमन....

महा मां मन कलपे म्हारू,
हो पिया बिन काजल केम सारू,
आ जोवनियो जातो केम बालूं.....

फागुन फर हरती होळी,
हमी नऽ पेरां चरणां नी चोली,
चून्दड़ म्हारी केसर मां बोळी.....

चैत्र मां चतुरा जल भरतीं,
हो बालाजी ना गुण गावती फिरती,
वालो तो म्हारो एवी कीदी नरती....

वैशाख वन माळी आव्या,
आवुं नऽ जाम्बू फळ लाव्या,
वालो तो म्हारो डाल-डाल फरिया.....

जेठ मां जग जीवन आया,
सभी सारू वदामणी लाया,
दिलासा सब नऽ देता आव्या...

आसाढ़ आवळा अती झाड़ी,
हमीनऽ करां सेव न सुवाली,
वालो म्हारो जमवा नथी भाव्या....

श्रावण सरवरी यो बरसे,
नदियां मां नीर घणा वयसे,
वालो तो म्हारो केम करी उतरे....

भादव झलकता गाजे
सागरियो मां आलुणा वाजे,
वालो तो म्हारो हिरदा मां गाजे...

कुंवार नवरात्री आई,
घर न घर गोपी फूल लाई
खेलत गोपी ना हारी.....

परतम पूरणानंद नो स्यामी
वालो तो म्हारो ग्यान नती जाणे,
भलो मल्यो नरसिंह नो स्वामी....

भगवान हरि यानी श्रीकृष्ण जी रास रचाने के लिये आओ। तुम ही रास रचाने वाले हो। यशोदा और नन्द के लाला, गोपियाँ रास रचाने की तैयारी कर चुकी हैं।

कार्तिक मास में कृष्ण चले गये हैं, वन-वन घूमने वाला विट्ठल भी नहीं आया। शायद वह कुब्जा सौत के प्रेम में मगन हो गये हैं।

मार्गशीर्ष में मेरा मन प्रफुल्लित होता है। श्रीकृष्ण यहाँ होते तो उनके साथ मीठा-मीठा सुस्वादु भोजन करते, बालाजी (श्रीकृष्ण स्वामी) के साथ रास रचाते।

पौष माह में- मेरी चिन्ता बढ़ गई है। क्योंकि मेरे जीवनाधार (स्वामी) सामने मिल गये थे तो उन्होंने रास रचाने आने के लिये जरूर कहा था, ऐसा दिलासा दिया था। पर वे नहीं आये।

माघ माह में मेरा मन दुखी हो रहा है। पिया के बिना नैनों में काजल तक नहीं लगाया। काजल लगाना अर्थात् शृँगार करना भी जरा अच्छा नहीं लगता है। मेरा यौवन व्यर्थ जा रहा है, उसे मैं किस प्रकार बाँध के रखूँ। इसे कहाँ लेकर जाऊँ?

फागुन में होली मेरा मन आकर्षित करती है। मैं उसमें खूब रंग गुलाल खेलती, पर स्वामी घर पर नहीं है। शृँगार कैसे करूँ? चमकदार चोली कैसे पहनूँ। स्वामी यहाँ होते तो सब करती। केशरिया रंग में चोली रंगवाकर पहनती।

चैत्र माह में पनघट से स्वच्छ जल भर-भर कर लाती, प्रभु के गुणगान करती। मेरे स्वामी ने मुझे ऐसा कार्य भी नहीं करने दिया।

वैशाख में वन-वन में घूमने वाला माली आया, आम और जामुन फल लाया, मेरा कृष्ण डाल-डाल घूमने वाला है, उसे आने की फुरसत नहीं है।

जेठ महीने में संदेश आया कि कृष्ण (स्वामी) घर आ रहे हैं। सबके लिये कोई न कोई सौगात ला रहे हैं। सब गोपियों को भरोसा हुआ कि कृष्ण जरूर आयेंगे।

आषाढ़ माह में अतिशय जल बरस रहा है। सुस्वादु भोजन बनाया गया, पर कृष्णजी फिर भी नहीं आये।

श्रावण में पानी खूब बरस गया है। नदी नाले भरपूर बह रहे हैं। चारों ओर रास्ते बन्द हो गये हैं, अब कृष्ण जी कैसे आ पायेंगे? नदियों को पार करना मुश्किल है। भादव में बादल गरज-गरज कर बरस रहे हैं। बिजलियाँ चमक रही हैं। सारा पानी बह-बहकर समुद्र के खारे पानी में मिल रहा है।

कुँवार मास में नवरात्रि आ गई है। घर-घर गोपियाँ बगीचों में गई है और कृष्ण के लिये तरह-तरह के फूल चुनकर लाई। आपस में फूल-पाती खेल-खेलकर थक गई हैं।

क्या करें? मेरे स्वामी भोले हैं, वे प्रेम-प्यार के बारे में कुछ नहीं जानते हैं, उनको कुछ भान ही नहीं है। नरसिंह स्वामी कहते हैं- गोपियों को ऐसा ही भोला भाला श्रीकृष्ण स्वामी मिला है। जो जगत को नचाता है।

केमऽ रहिये कृष्णजी तुम बिन रे, म्हारो प्राण आधार
सु रे जीवां संवसार मां रे, पापी प्राण आधार। केमऽ...
मागसिर मास मु की गया रे, मु की गया दीनानाथ,
नगर दुवारिका मां जाई वस्या रे, गोपियों ना रे नाथ। केमऽ...
पोस मास पोस्या घणा रे, मुख से तजियो रे अन्न,
पियूजी-पियूजी हमी करां रे, आवसे जादव राय। केमऽ...
महाजो मास म्हारा मायरो रे, पिता बिन केवा लाड़,
भाई बिना केवी वयणुली रे, झुरे पराया रे द्वार। केमऽ...
फागुण मास भला आविया रे, फूल्यो कमला नो चांद,
हैया मां होळी बळऽ रे, केमऽ रमऽ रे वसन्त। केमऽ,...
चैत मास चिन्ता घणी रे, चिन्ता व्याकुल थाय,
सपना मां जोवे हरि नी सेजलड़ी, आवसे जादव राय।
केमऽ...

वैशाख मास वन हो लियो रे, हो लियो परदेश,
आंसू मां भींजऽ म्हारी काचळी रे, जौवन वाली रे वेश। केमऽ...
जेष्ठ मास भला आविया रे, मोटो तपियो रे घाम,
चन्नन कटाडू वरस्या मेवलो रे, म्हारो हरि से रे हेत। केमऽ
आषाढ़ मास आसा घणी रे, आसा अमर थाय,
मोर पपैया टकवा करे रे, सागर करऽ रे किलोल। केमऽ
भादव मास भला आविया रे, झिर-मिर बरस्या रे मेघ,
भींजते राधिका नी चूंदड़ी रे, भींजऽ हैयानो हार। केमऽ
भादव मास भला आविया रे, धमकी नऽ वरस्या मेघ,
धुर्वनी वादळी धुन्धली रे, नदियों मा कड़क्या रे मेघ। केमऽ...
कुंवार मानसी कामणी रे, कामण सजी सिणगार,
घर-घर से गोपी निकली रे, चली नंदना द्वार। केमऽ...
कार्तिक मास को लामणा रे, सेळो पूनम नो चांद,
राधिका न हार पेराविया रे, मोटा देव मुरार। केमऽ...
बारा जो महीना पूरा भया रे, गावऽ नरसैयो दास,
गावऽ गवाड़ऽ सुण सामळऽरे, पुरवे मन नी आस। केमऽ

गोपियाँ कहती हैं- हम किस प्रकार कृष्ण के बिना रहें, कृष्ण हमारे जीवन के प्राण आधार हैं।

मार्गशीर्ष माह में कृष्ण हमें छोड़कर चले गये। वे हमारे दीनदयाल हैं। वे द्वारिका में जाकर बस गये हैं, वे गोपियों के नाथ हैं।

पौष माह में हमने पोष्या इतवार के व्रत-उपवास किये। कृष्ण जी की याद में हमने अन्न जल का त्याग कर दिया है। 'पिया-पिया' की हम रट लगा रही हैं। हमे आशा है एक दिन यदुकुल राजकुँवर श्रीकृष्ण नंदकिशोर हमारी सुध लेने अवश्य आयेंगे।

माघ मास में मायके की याद आती है। यहाँ ससुराल में पिता के बिना कौन लाड़ लड़ा सकता है। मामेरा तो पिता ही ला सकते हैं। भाई के बिना बहन अधूरी है। भाई की याद में मन हरकता है। बहन तो पराये घर में यानी ससुराल में इन्हें देखने के लिये तरस रही है।

फागुन का मस्त महीना आ गया है। चन्द्रमा कमल के फूल के समान खिल गया है। होली के समान मेरा हृदय जल रहा है। किस प्रकार वसन्त उत्सव मनायें।

चैत मास में भारी चिन्ता हो रही है। मन व्याकुल हो रहा है। चिन्ता तक व्याकुल हो गई है। सेज सूनी है, सपने में कृष्ण के आने की प्रतीक्षा है। कब यदुयति श्रीकृष्ण आयेंगे।

वैशाख मास में मन नहीं माना तो वन-वन में ढूँढ़ा, पर कृष्ण परदेश बसे हैं। बस उनकी याद कर सकते हैं। नैनों से आँसुओं की धार लग रही है। आँसुओं से चोली (काचली) भींज रही है। मेरा जीवन पल-पल बिना कृष्ण के बीत रहा है। अमूल्य जीवन वियोग में जल रहा है।

जेठ का महीना आ गया है। धूप तेज पड़ रही है। जेठ महीने की तपन सहन नहीं हो पा रही है। शीतलता के लिये चन्दन कटवा लूँ अथवा पानी बरस जाय तो कुछ ठण्डक हो जाय। देह की अग्नि थोड़ी बुझ जाय। समझ में नहीं आ रहा, हमने श्रीकृष्ण से ऐसी प्रीत ही क्यों लगाई है?

आषाढ़ मास में प्रियतम के आने की आशा है। आशा पर ही यह संसार टिका है। आषाढ़ में बादलों को देखकर मयूर पुकार लगाकर नाचने लगे हैं। पपीहा 'पी-पी' की रट लगा रहे हैं। समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं। बादल समुद्र से पानी लेकर चल पड़े हैं।

अच्छा भला श्रावण मास लग गया है। रिमझिम-रिमझिम बरसात हो रही है। सावन की ठण्डी फुहारें पड़ रही हैं। बादलों के बरसने से राधिका की चूंदड़ी भींज रही है। साथ-साथ हृदय पर पड़ा मोतियों का हार भी भींज रहा है।

भादव का महीना आ गया है। उमड़-घुमड़कर गरज-तरज बादल बरस रहे हैं। ध्रुव दिशा से उठी बदलियाँ अन्धाधुंध वर्षा कर रही है। नदियों में इतनी बाढ़ आ गई है कि ऐसा लगता है जैसे सारे बादल नदियों में ही टूट पड़े हैं।

कुँवार मास में सभी गोपियों सज-धज कर तैयार हो गई। घर-घर से निकल पड़ी हैं और नंदबाबा के घर गई हैं।

कार्तिक मास बड़ा ही सुहावना महीना है। पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र से शीतल स्वच्छ चाँदनी धरती पर छिटकी है। आज राधिका की प्रतीक्षा समाप्त हो गई, प्रियतम लौट आये हैं, उन्होंने राधिका को गले में हार पहना दिया है।

बारहमासी पूर्ण हो गई। नरसिंह दास ने गाया। जो कोई इसे गायेगा या गवायेगा उसके सभी मनोरथ पूरे हो जायेंगे।

तुलसी विवाह के बहाने एक मौलिक बारामासी निमाड़ में गाई जाती है।

बारहमासी-तुलसी

कुम्हार्‌या की छोरी माटी लाई,
जेको बिंद्रावन बनायो हो राज,
बामण की छोरी बीजा लाई जेको रोपो लगायो हो राज।
आज म्हारी तुलसा एक पत्ती हुई दो पत्ती,
तीन पत्ती लहेरा ले हो राज,
आज म्हारी तुलसा चार पत्ती पांच पत्ती हुई,
छः पत्ती लहेरा ले हो राज।
आज म्हारी तुलसा सात पत्ती आठ पत्ती हुई,
नौ पत्ती लहेरा हो राज।
आज म्हारी तुलसा दस पत्ती ग्यारह पत्ती हुई,
बारवां म लहेरा ले हो राज।
मेघनाथ की बेटी तुलसी, कहो तो तमे परणावा हो राज,
कहो तो बेटी ब्रह्मा वर लाऊं,
कहो ते शंकर से परणावा हो राज।
ब्रह्माजी तो पिताजी बूढ़ा घणा,
शंकरजी की दो दो नारी हो राज,
कहो तो बेटी सूर्य वर लावां,
कहो चन्दरमा परणावां हो राज।
सूर्य पिताजी तपऽ घणो तपियो,
चन्दरमा नी शीतल ठंडी छाया हो राज,
लाओ लाओ त पिताजी कृष्ण वर लाओ,
उनका सी हमक, परणावो हो राज।
असा कस्त तप तपिया बेटी मुंहमांग्या वर पाविया हो राज।

बारह माह

1. श्रावण मास पिताजी नीळो नी खायो
2. भादव मास बाळो दई नी मोड़ियो हो राज।
3. कुंवार ना महीना म खीर नी खाई,
4. कार्तिक ठंडा पाणी न्हाया हो राज।
5. मागशिर महीना हेम घड़ो न्हाया,
6. पोष महीना पंथ नी चलिया हो राज।
7. महा महीना म चूंदड़ नी ओड़्या,
8. फागुन म होळी नी खेल्या हो राज।
9. चैत्र मास पिताजी पीयर नी गया,
10. वैशाख ताता पाणी न्हाया हो राज।
11. जेठ का मास पिताजी पंच धुणी तपिया
12. आषाढ़ दिवळो नी जायो हो राज।

असा कसा तप बाई तुलसा जी तपिया
कृष्ण सरिखा वर पाया हो राज।

-संकलन-श्रीमती शांताबाई-मंडवाड़ा

कुम्हार की लड़की मिट्टी लाई और उसने आँगन में तुलसी क्यारा (वेदी) बनाई। ब्राह्मण की लड़की तुलसी के बीज लाईं। उन बीजों को क्यारे में बोया गया। पानी से सींचा गया। तुलसी अंकुरित हुई और उसके पत्ते निकलने लगे।

आज मेरी तुलसी में पहला पत्ता आया, दूसरा आया, फिर तीसरा भी पत्ता फूटा। इसके बाद चौथा, पाँचवा, छठा पत्ता भी लहराने लगा। फिर तो सात, आठ, नौ पत्ती वाली मेरी तुलसी का पौधा हो गया। दिनोंदिन वह बढ़ रही है। दस, ग्यारह, बारह फिर अनेक पतियाँ तुलसी में लहराने लगीं। हरी हो गईं। बड़ी हो गईं। उनमें मंजरियाँ तक निकलने लगी।

तुलसी मेघनाथ की बेटी है। वह अब विवाह योग्य हो गई है, उसके लिये कौन सा वर ढूँढ़ा जाय। उसका विवाह कहाँ

किया जाय?

पिता पुत्री से पूछते हैं- यदि तुम कहो तो तुम्हारे लिये ब्रह्माजी जैसा वर ढूँढ़ा जाय या शंकर के साथ विवाह कर दें। इस पर बेटी कहती है- ब्रह्माजी तो बूढ़े हैं और शिवशंकर की दो पत्नियाँ पहले से ही मौजूद हैं। पिता फिर कहते हैं- कहो तो बेटी तेजस्वी सूर्य से तुम्हारा विवाह रचा दें या शीतल चन्द्रमा से ब्याह करा दें। इस पर बेटी कहती है-

नहीं! नहीं पिताजी सूर्य में ताप बहुत है और चन्द्रमा का ठंडापन मुझे सहन नहीं होगा। यदि आपको मेरे विवाह की चिन्ता हो तो मेरा विवाह श्रीकृष्ण से कर दें।

इस पर पिता कहते हैं- अरे बेटी! तूने हमारे मुँह की बात छीन ली। जिसने कोई बड़ा तप किया होता है उसे ही भगवान कृष्ण जैसे वर मिलते हैं। तुम्हें तो मुँहमांगा वर मिल जायेगा। तुमने ऐसा कौन सा तप किया है?

बेटी कहती है-पिताजी! मैंने बारहमासी व्रत किया था। श्रावण मास में मैंने हरी सब्जियाँ नहीं खाई। भादव में ताजा जमाया हुआ दही नहीं खाया। कुँवार मास में खीरी का भोजन नहीं किया। मार्गशिर में बिल्कुल ठण्डे पानी से नहाया। पोष महीने में मैं घर से नहीं निकली। माघ माह में नई चूंदड़ी नहीं पहनी। फागुन में होली नहीं खेली। चैत्र महीने में मायके नहीं गई। वैशाख मास में गरम जल से स्नान किया। जेठ माह में पंच धुनी (अग्निजप) किया। आषाढ़ मास में दीपक नहीं जलाया। इस प्रकार मैंने तपस्या की है, उसी से मुझे मुँहमांगा वर मिला है। कहते हैं- तुलसी से कृष्ण ने सालिगराम के रूप में विवाह किया है और वे तुलसी क्यारे में सालिगराम के रूप में तुलसी के साथ सदैव विराजते हैं।

चार महीने ऐसी बरसात हो कि चारों ओर मूसलाधार वर्षा हो। एक ऐसा ही प्रसंग नानीबाई के मायरा गाथा में नरसिंह दास के साथ घटित होता है, तब वे अपने प्रभु से प्रार्थना करते हैं। यह उल्लेख तब का है, जब नानीबाई का मायरा (मामेरा) भरने नरसिंह भगत नानीबाई के ससुराल पहुँचते हैं। नरसिंह भगत का बड़ा अपमान किया जाता है, उन्हें गाय-भैंस बाँधने की जगह पर ठहराया जाता है। रूखा-सूखा भोजन दिया जाता है। नरसिंह जी स्नान करने बैठते हैं तो अधिक गर्म पानी दिया जाता है। जब ठंडा पानी माँगते हैं तो नानीबाई की सासु कहती है- ठण्डा पानी नहीं है। ठंडा पानी ही चाहिए तो अपने प्रभु गोपाल साँवरिया से मांगों।

तब नरसिंह स्वामी यह गीत गाकर प्रार्थना करते हैं।

हां रे मोकलजो रे बरसाद, सांवळिया मोकळ जो बरसाद।
हां रे सारी परजा जोवऽ रे थारी वाट,
सांवळिया मोकळजो बरसाद॥
झांझ करताळ ऐना हाथ विराजे, गावत राग मल्हार रे।
राग मल्हार केदारो रे गावे, इन्दर प्रसन्न थाय॥ सांवळिया...
धूर्व दिशा नी उठी वादळी रे वाळा, बिज झबुके झार रे।
गगन ही गोळा गड़ गड़्या रे वाळा,
बादळनो थयो झणकार॥ सांवळिया....
मूसलाधार मेवा घणां बरसे वाळा, नीर झड़े निराधार रे।
आंगण घर मा कीच मचा रे वाळा,
नीर थये निराधार। सांवळिया.....
नानीबाई नी सासु अरज करऽ रे वाळा,
अरज करऽ बारम्बार रे।
नरसिंह स्वमी नऽ सांवरा रे वाला,
शरण म राखो रे म्हाराज। सांवळिया...

हे सांवरिया प्रभु! ऐसी बरसात भेजो, जिससे कि धरती पर पानी ही पानी हो जाय। जल्दी पानी भेजो, लोगों के यहाँ नहाने तक का पानी नहीं मिल रहा। सारी प्रजा पानी की प्रतीक्षा में है। सांवलिया! जल्दी से पानी भेजो।

झांझ करताल लेकर नरसिंह भगत राग मल्हार और केदार में भजन गा रहे हैं। इन रागों से वे वर्षा के देवता इन्द्र को प्रसन्न कर रहे हैं।

तब ध्रुव दिशा से बादल उमड़ने-घुमड़ने लगे, बिजलियाँ चमकने लगीं। आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट से ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो गोले छूट रहे हैं। बादलों के शोर के साथ ही आकाश में झन-झन की झनकार करती बरसात हो रही है।

बरसात मूसलाधार हो रही है, कहीं कोई दिखाई नहीं दे रहा है, चारों ओर धुँआधार हो गया है। घर की छतों के कवेलुओं में पानी नहीं समा रहा है। घर-आँगन में कीचड़ ही कीचड़ हो गया है। मूसलाधार पानी बरस रहा है। पानी रूकने का नाम ही नहीं ले रहा है। सारे लोग घबरा गये हैं। अतिवर्षा ने त्राहि-त्राहि मचा दी है। तब नानीबाई की सासू घबराकर नरसिंह भगत के समीप गई और हाथ जोड़कर बार-बार विनती करने लगी- हे नरसिंह स्वामी जी! इस मूसलाधार वर्षा को रोक दो, अत्यधिक पानी बरस गया है। इस तरह नरसिंह जी की लॉज भगवान श्रीकृष्ण सांवलिया ने पानी बरसा कर रख ली थी।

नरसिंह भगत गुजरात के एक भक्त कवि हैं, जिन्होंने मूल रूप से गुजराती में रचनाएँ की है। निमाड़ और गुजरात का अत्यन्त गहरा सांस्कृतिक संबंध रहा है। निमाड़ी बोली और यहाँ के लोगों पर गुजराती बोली और संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। गुजरात से कई उद्यमशील जातियाँ निमाड़ में आकर बस गई हैं। उनकी बोली में निमाड़ी के साथ गुजराती के शब्दों का अधिक चलन है। निमाड़ में नरसिंह दास या स्वामी वे नरसिंह भगत नहीं मालूम पड़ते, उनके नाम से कोई अन्य भक्त कवि हुए हैं, जिन्होंने निमाड़ में रहकर ये लोक रचनाएँ की हैं, जिन्हें निमाड़ के गुजराती जन आज भी गाते-बजाते मिल जाते हैं। नरसिंह भगत की छाप लगाकर समूहगत ये लोकप्रिय रचनाएँ की गई हैं। खासकर पाटीदार समाज के लोग जो गुजरात से ही निमाड़ में आये हैं, जिनकी बाहुलता भी है, इनके पूरे गाँव के गाँव बसे हैं। जो लगभग एक हजार बरसों से निमाड़ में रह रहे हैं। अब वे निमाड़ को ही अपना देश और निमाड़ी को ही अपनी बोली कहते हैं। इनकी गुजराती मिश्रित निमाड़ी बोली का एक अलग 'कल्ट' ही बन गया है। नरसिंह दास ऐसे ही कल्ट के कोई कुलमी (पाटीदार) समाज के प्रखर सन्त कवि रहे होंगे, जिन्होंने बारामासा में कृष्ण और राधा को लेकर अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ की हैं, जो निमाड़ी की धरोहर बन गई हैं। गुजराती मिश्रित 'सलिता का ब्याह' निमाड़ी की सबसे पुरानी और महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि रचना मानी जाती है। नरसिंह दास की चौमासा की एक और लोक रचना देखिये- इस पद में भी अपने साँवलिया से बरसात भेजने की विनती कर रहे हैं-

मोकळ जो बरसात सांवळिया मोकळजो बरसात।
म्हारो आयो जीवन नहीं जाय, सांवळिया मोकलजो बरसात।

तो गोपी घराणा दई रया, वाला,
सामळो जशोदा माय।
दूध पिलई तीनऽ मोटो हो किन्हो
ते गुण बिसरी जाय॥ सांवळिया....

अषाढ़ मास भला आविया रे वाला,
बोलऽ पपैया मोर।
कीड़ी-मकोड़ी घर करे रे
आज सागर करऽ किलोळ॥ मोकलजो...

श्रावण मास म नी सुन्दरी वाला,
उबी ते सरवर पाल।
आसु वन भींजऽ म्हारो काचळो रे
पसीना मऽ भीजऽ म्हारो चीर॥ सांवलिया

भादव मास भल आवियो रे वाला
झिर-झिर बरसे मेउ।
नदी जमना भर चरे
कोण संदेशो लई जाय॥ मोकलजो....

तो कुंवार मास भल आविया
इन्दर पुरवे आस।
भक्त नरसिंह अरज करे
आन राखो ते शरण लगाय॥ सांवलिया....

संकलन-रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी', दवाना

हे साँवलिया! (श्रीकृष्ण को संबोधित) ऐसी बरसात भेजो, जिससे मेरा जीवन सार्थक हो जाय, बिना पानी के सारे प्राणियों का जीवन बेकार जा रहा है। ब्रज अंचल की सारी गोपियाँ माता जशोदा को उलाहना दे रही हैं कि हमने तुम्हारे कृष्ण को दूध पिला-पिलाकर इतना बड़ा किया है, ये सब हमारे उपकार आप भूल गई हैं, अब हमारे यहाँ पानी की जरूरत पड़ रही है, तब कृष्ण यहाँ नहीं है। गोपियों की शिकायत रूपी प्रार्थना भगवान कृष्ण तक पहुँचती है और वर्षा आने के आसार दिखाई देने लगते हैं।

आषाढ़ माह लग गया है, मोर-पपीहा शोर करने लगे हैं। कीड़े-मकोड़े जमीन में अपने दर (घर) बनाने लगे हैं। उधर सागर में लहरें उठने लगी हैं, सागर से बादल पानी लाने लगे हैं। आषाढ़ में पानी बरसने लगा है।

सावन में नदी-तालाब, पोखर आदि सब लबालब हो गये हैं। निमाड़ की सुन्दरियाँ तालाब के किनारे खड़ी होकर उसके जल का आनंद ले रही हैं। लेकिन प्रियतम परदेस गये हैं, इसलिए उनके नैनों से आँसू झरने लगे हैं, उन आँसुओं से उनकी कंचुकी (कांचली) भींग गई है। ऊपर से बादलों के पसीने अर्थात् वर्षा से उनके वस्त्र भी भींग गये हैं। ऐसी स्थिति में प्रियतम की अधिक याद आ रही है।

भादव महीने में कभी झिर-झिर और कभी घनघोर वर्षा हो रही है। नदी नर्मदा (जमुना-नर्मदा का दूसरा नाम) भरपूर बह रही है। ऐसे में प्रियतम के पास संदेशा किसके हाथ भेजा जाय? कुँवार मास में भगवान इन्द्र ने सबकी प्यास और आस दोनों पूरी कर दी है। प्रियतम परदेस से आ गये हैं। अच्छी वर्षा भी हो गई है। भक्त नरसिंहदास विनती करते हैं- भगवान ने मेरी लाज रख ली है। मुझे अपनी शरण में ले लिया है।

बारामासी वर्णन में कई गीतों में क्रमवार महीनों का उल्लेख नहीं मिलता, कहीं-कहीं अलग-अलग स्फुट महीनों के तारतम्य वाले छोटे गीत भी मिलते हैं। जिनके भीतर के सारे पदों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। उनका पूर्वापर कोई संबंध नहीं होता। उसमें ऋतुओं की छटा और उस महीने में पड़ने वाले तीज-त्यौहारों का वर्णन कुछ इस तरह से होता है- महीना कौन सा है, अपने आप मालूम पड़ जाता है। पर यह भी राधा और कृष्ण के बहाने होता है। इसलिये बारामासी गीतों में कृष्ण और राधा की छवि को स्थानीय नायक और नायिका की अभिव्यक्ति के रूप में की जाती है। निमाड़ी के बारामासी गीतों पर भक्तिकाल का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। इनके रचनाकार अपने आपको कृष्ण और राधा का दास मानते हैं और कृष्ण को स्वामी संबोधन देते हैं। सारे बारामासी गीत अपने 'प्रभु' या 'वाला' को सम्बोधित होते हैं। 'वाला' स्वामी के अर्थ में प्रयुक्त होता है, और यह 'वाला' नटनागर गोवर्धनधारी गिरधर गोपाल श्रीकृष्ण के रूप में अर्चित है। गोपियों का बाँसुरी बजाने वाला कन्हैया, गाय चराने वाला, रास रचाने वाला, जमुना में कूदने वाला नाग नथैया, होली खेलने वाला होरियारा सबका रखवाला भगवान है। कृष्ण मथुरा चले गये हैं, राधा और गोप-ग्वाल सब विरह में है। प्रतिपल कृष्ण के आने की प्रतीक्षा है। निमाड़ी बारामासी गीतों में गोपियों और राधा की इस प्रतीक्षा का अन्त भी होता है। अन्त में उनके प्रियतम मिल जाते हैं। उपालंभ भी है और दु:ख का पहाड़ भी है, जो वर्षा के चार महीनों यानी चौमासा के वर्णन में अत्यधिक दिखाई देता है। कई गीतों में दुहराव भी होता है, लेकिन अखरता नहीं।

एक बारहमासा पद में एक पंक्ति में एक-एक माह की छटा समेटी गई है। संक्षिप्ति इसकी विशेषता बन गई है, लेकिन वर्णन पूर्णता लिये है, इसलिये यह एक छोटा किंतु सम्पूर्ण बारामासा गीत कहा जा सकता है। यह एक उलाहना गीत है। कृष्ण परदेस में उलझ गये हैं। गोपियाँ हर माह की उलझन में उलझ गई हैं। एक-एक करके सारे महीने निकल गये हैं, इस तरह पूरे बारह महीने निरर्थक प्रतीक्षा में बीत गये, एक-एक पंक्ति गोपियों अर्थात् नायिकाओं की मनोव्यथा का दर्पण बन जाती है।

गुवालन-बारामासी

श्याम सुन्दर ब्रज रास म आयो
परदेसी म बिलम रह्यो
जेठ तपऽ नित शंख, अषाढ़ म घटा घुमट आई
श्रावण बंधत हिंडोल, श्याम सुंदर ब्रजरास,
कुब्जा मऽ बिलम रह्यो। श्याम....
भादव रैन सो रैन, कुवारिया मऽ मोरा बोल रहे।
लग्यो कार्तिक मास, चन्द्रमा तारे छटक रहे॥ श्याम....
मागसिर अग्री संदेश, पोषवा राधेजी हरख रहे।
लाग्यो महामास श्याम, चकवा संग बिलम रहे॥ श्याम....
फागुन रैन सो रैन, चेतवा म केशवा फूल रहे।
लग्यो वैशाख मास श्याम मेरी बैया क्यों न धरे॥ श्याम....

हमारा श्याम सुन्दर (कृष्ण) परदेस में उलझ गया है। उनके आने की अभी कोई उम्मीद नहीं है।

इधर जेठ महीना खूब तप रहा है। हर तरफ बेचैनी है।

आषाढ़ में घन-घटाएँ घुमड़ आई हैं, परेशान कर रही हैं। सावन में बाग-बगीचों में झूले बंध गये है, किशोरियाँ झूल रही हैं। श्याम सुंदर यहाँ नहीं है। वे दूसरी स्त्री में बिलम गये हैं। भादव की काली रात डरावनी है। कुँवार में मोर बोल रहे हैं, जो टीस पैदा करते हैं। कार्तिक में रात्रि में चन्द्रमा और तारे छिटक गये हैं। धुली चाँदनी बिखरी है। चाँदनी बदन को जला रही है। मार्गशिर माह अग्नि तापने का उबाऊ समय है। पौष में कृष्ण के आने का संदेश पाकर गोपियाँ प्रसन्न हो गई हैं। माघ मास आ गया फिर भी श्याम नहीं आये, किसी चकवा के संग बिलम गये हैं। उनकी दशा चकवे के समान हो गई है।

फागुन में दिन और रात एक से हैं। चैत्र में टेसू फूल गये हैं। वैशाख मास में श्याम के आने की उम्मीद है, वे जरूर आकर मुझे बाँहों में भर लेंगे।

कृष्ण जन्म से संबंधित एक बारामासा गीत में उन नौ महीनों का वर्णन है, जिनमें कृष्ण माता देवकी के गर्भ में रहे। एक गर्भवती के ये नौ दस महीने अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। शरीर में बदलाव के साथ मन की स्थितियाँ भी प्रत्येक माह में अलग-अलग होती हैं। अनेक कष्टों में भी खुशी और संतान प्राप्ति का सुख स्त्री के व्यवहार में साफ तौर से दिखाई देता है, जो अव्यक्त होता है।

गावो म्हारो हरि अवतार कि कृपा करो नी घणी,
असुर भया हो कंसराय, कंसा से अरज करे॥

पोष महीनो महाराज देवकी माता न गर्भ रहे,
सोच करे दिन रात, बालक मोहे धीरव नहीं॥ 1॥

माघ महीनों महाराज, सवरा देवी सारजा,
पुत्र दीजे वो सारजा माय, ककु मऽ थारो नाम रहे॥ 2॥

फागुण महीनो महाराज, झांझर झंकारा करे
मुट्ठी-मुट्ठी उड़ऽ रे गुलाल, गोपी नऽ बहुरंग करे॥3॥

चैत्र महीनों महाराज, रुकमणी रूप धरे,
घर-घर होय मंगळाचार, गोपी नऽ आनंद करे॥ 4॥

वैशाख महीनो महाराज, पीयर मऽ नऽ मोकलजो
मोकलजो वे दिन चार, पीयर मऽ नऽ मोकलजो॥ 5॥

जेठ महीनो महाराज, बाला नऽ सपनो दियो,
धीर व धरो हो देवकी माय, कंस कऽ निवंस करूं॥6॥

आषाढ़ महीनो रे महाराज, दादुर बिजली चमके,
बन-बन बोले मोर, कोयल हुंकारा करे॥ 7॥

सरावण महीनो महाराज, छोटा-मोटा बूंद झरे,
बन बन बहता नीर, पपैया पीहू-पीहू करे॥ 8॥

भादो महीनो महाराज, बाळा जनम लियो
तिथि अट्ठव बुधवार, चरण मऽ सीस धरे॥ 9॥

श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं, वे हम पर कृपा करें। हम उनके गुण गाते हैं। उन्होंने कंस जैसे दुष्ट असुर को नष्ट किया। माता देवकी और वासुदेव कंस से प्रार्थना करते रहे, लेकिन वह दुष्ट देवकी के एक-एक कर सात शिशुओं को मार चुका है। अब देवकी के आठवें गर्भ में विष्णु के अंश बनकर श्रीकृष्ण पल बढ़ रहे हैं। देवकी के ये नौ महीने अत्यधिक चिन्ता भरे हैं।

पौष माह में देवकी ने गर्भ धारण कर लिया है। उनके मन में दिन-रात एक ही चिन्ता है, यह बालक भी कंस के हाथ चढ़ गया तो नहीं बच पायेगा। यह सोच-सोचकर उसके मन का धैर्य छूटता जा रहा है। माघ महीना लगते ही देवकी माता शारदा यानी विद्या की देवी सरस्वती का स्मरण (सुमिरन) कर रही हैं। हे शारदा माता! इस बार तुम मुझे विद्या बुद्धि वाला पुत्र देना, जिससे कि तुम्हारा नाम रहे। मैं तुम्हें सदैव याद करती रहूँ।

फागुन महीने में चारों ओर झांझ-करताल बजने लगे हैं, डफ-ढोल और झांझ-करताल की समवेत ध्वनि (झंकार) सुनाई दे रही है। मुट्ठी भर-भर कर रंग-गुलाल उड़ने लगा है। गोपियाँ आपस में एक दूसरे को रंग-गुलाल से सराबोर कर रही है। देवकी को इसका एहसास हो रहा है। चैत्र महीने में श्रीकृष्ण ने राधा-रुक्मिणी का रूप (स्वांग) धर लिया था। जिससे घर-घर मंगलाचार होने लगा था, गोपियों ने कृष्ण के इन रूपों का खूब आनंद उठाया था।

वैशाख महीना सुहावना है। हे स्वामी! मायके जाने की अनुमति जरूर देना। मायके में दो चार दिन रहना अच्छा लगता है। पुरानी सखियों से भेंट होती है और मायके में भाई, बहन, भाभी, भतीजे, माता-पिता सबके साथ रहने का मौका मिलता है।

देवकी-वासुदेव से ऐसा महसूस कर निवेदन कर रही है। जेठ माह में देवकी ने सपने में श्रीकृष्ण को देखा। उसने माता को धैर्य बंधाया कि वह कंस को निरवंश कर देगा।

आषाढ़ माह में बादल छाने लगे, बिजलियाँ चमकने लगी। वन में मोर बोलने लगे। आम्रकुंजो में कोयल कुहुक रही है। देवकी को बादलों की गरज-तरज, मोर की पुकार, कोयल की कुहू-कुहू सुनाई दे रही है। श्रावण महीने में कभी झड़ी और कभी सेरों के रूप में पानी बरस रहा है। चारों ओर पानी बह निकला है। पपीहा 'पी-पी' की रट लगाने लगा है।

भादव का महीना आते ही देवकी के गर्भ में नौ माह पूरे हो गये हैं। उनकी कोख भादव कृष्ण पक्ष की अष्टमी दिन बुधवार अन्धेरी रात में घनघोर वर्षा के बीच कंस की काल कोठरी में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने मथुरा में अवतार ले लिया। वासुदेव सुपड़े में रखकर जमुना पार गोकुल में जशोदा के यहाँ श्रीकृष्ण को रख आये और जशोदा की लड़की को ले आये। इस प्रकार कृष्ण कंस के हाथों से बच गये। कारागृह के दरवाजे अपने आप खुल गये थे। पहरेदार सब सो गये थे। उस समय दैवगत सभी तरह की अनुकूलताएँ हो गई थी। यह कृष्ण का ही प्रभाव था। बाद में श्रीकृष्ण कंस का वध करते हैं और दुष्टता से प्रजा को छुटकारा दिलाते हैं।

गवलन बारामासी

चलो नऽ उद्धव माधोपुरी जावां,
कृष्ण कन्हैया कऽ लई आवां॥
शीतल चंदन अंग लगावां
कामनी करत किल्लोल हो।
ये दीनानाथ की प्रीत रे उद्धव,
शुकर मास आषाढ़ हो॥ चलो....
एक तो रे उद्धव थाना बिना हो,
दूजो पीहू परदेस हो।
तीसरो मेऊ झर-झर बरसे
श्रावण अधिक समाय हो॥ चलो....
भादव रैन बिहावणी उद्धव
रैन इंधारी रात हो।
बिजली चमके नऽ हिवड़ो लरजे,
सखियाँ रह्यो नहीं जाय हो॥ चलो....
कुँवार मास नी आस रे उद्धव
पिहू नहीं आयो म्हारो हो,
अबके बेर पिहू म्हारो आवऽ
जीवता छोड़ू पपैया हो॥ चलो...
कार्तिक की तो पूरणमासी
सखियाँ गावण हारी हो।
हऊं अति अबला प्रेम सुंदरी,
केकऽ भवन लगी जावां हो॥ चलो....
मागसिर पड़त सुसा रे उद्धव
भींजे अंग ना चीर हो,
चकवा-चकवी किलौल करऽ
वो सरवर मझधार हो॥ चलो....
पोष हो कागदी होवे रे उद्धव
अखियाँ मऽ रूम भरावै हो।
चुन-चुन कलियां सेज बिछाऊं
पिहू नहीं आयो म्हारो हो॥ चलो...
माघ मऽ आंगणा ठाड़ी रे उद्धव
बहुविधि से उपदेशा हो।
कुकजा सौतन म्हारी रे उद्धव
जीत हरि बिलमाया हो॥ चलो....
फागुण फाग उड़ावो रे उद्धव
पिहू नहीं आयो म्हारो हो।
भर पिचकारी रंग उड़ाऊं
दूना रंग बहाऊ हो॥ चलो....
चैत्र मास मऽ सब बन फूल्या
भंवरो करऽ गुंजारा हो।
उड़ उड़ भंवरो आम पर बठऽ
ये दु:ख सयो नहीं जाय हो॥ चलो...
वैशाख मऽ बांस कटावां
चूना से बंगलो चुनावां हो।
चुन-चुन कणी का महल बणाया
किन की संग हम रवां हो॥ चलो....
जेठ मास की महिमा रे उद्धव
बारहमासी हम गावां हो।

सूरदास प्रभु तुम हो मिलन को
हरि गत की गत न्यारी हो॥
चले नऽ उद्धव माधोपुरी जावां।

–ठाकुर भूरेसिंह मौर्य जसवाड़ी से प्राप्त
संकलन–रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी'

बारामासी गीतों के कृष्ण नायक हैं और राधा नायिका है। राधा–कृष्ण और गोपियों के सभी प्रसंग इन गीतों में मिलते हैं। उद्धव प्रसंग इन गीतों का एक खास प्रसंग होता है। यह गीत उसी का उदाहरण है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं– उद्धवजी आपका ज्ञान–ध्यान रहने दीजिए, चलो हम सब मथुरा चलें और कृष्ण को मनाकर गोकुल गाँव में ले आयें। सारी गोपियाँ विरह में जल रही हैं, शीतलता के लिए पूरे शरीर में चंदन लगा रही हैं। कामिनियाँ किल्लोल कर रही हैं। हम जैसे दीन दुखियों के नाथ हैं यानी स्वामी हैं। शुक्र है कि आषाढ़ मास लग गया है। वर्षा होने लगी है, थोड़ी ठण्डक हो गई है। पर उद्धव जी फिर भी मन में शांति नहीं है, उद्विग्नता है। एक तो आप यहाँ आये हो, हमें समझाने–बुझाने। तुम्हारा समझाना–बुझाना बेकार है। दूसरे हमारे प्रियतम परदेश में है। तीसरे सावन की झड़ियाँ और सावन–सेरों के रूप में पानी दिनरात झर–झर बरस रहा है। उद्धवजी भादव की काली रातें डरावनी लग रही हैं। बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है, हृदय काँपता है। कृष्ण के बिना रहा नहीं जा रहा है। सखियाँ उदास हैं। कुँवार महीने में कृष्ण के आने की उम्मीद जगी थी, पर प्रियतम कृष्ण नहीं आये। यदि इस बार प्रियतम कृष्ण आ गये तो पपीहों को उनकी कैद से आजाद कर दिये जायेंगे।

कार्तिक महीने की शरदपूर्णिमा अत्यन्त सुहावनी होती है। स्वच्छ चाँदनी सर्वत्र बिछ जाती है। शीतल चाँदनी को देखकर सखियाँ गीत गाने लगी हैं। मैं अबला नारी हूँ, केवल प्रेम करना जानती हूँ। प्रेम ही सुन्दरता है और ताकत है। पर क्या करूँ? कहाँ जाऊँ। किसके घर जाऊँ? जहाँ कृष्ण मिल सकें। मार्गशीर्ष महीने में रूक–रूककर बारिश हो रही है, अचानक बरसने वाले पानी से शरीर के वस्त्र भींग रहे हैं। तालाब किनारे चकवा–चकवी खेल रहे हैं।

पौष महीना कागज के समान पतला है। कब सुबह हुई और कम शाम आ गई, पता ही नहीं लगता है। पौष में दिन छोटे होते हैं और रातें बड़ी होती हैं। दिन आँखों में समा नहीं रहा है। प्रियतम की प्रतीक्षा में प्रतिदिन रात्रि में बगिया से चुन–चुनकर सेज पर कलियाँ सजाती हूँ, पर प्रियतम पौष माह में भी नहीं आये।

माघ महीने में आँगन में खड़ी होकर प्रियतम की प्रतीक्षा करती रही। किसी प्रकार से प्रियतम का संदेश मिल जाय। पर मुझे लगता है, किसी दूसरी औरत ने उन्हें जीत लिया है और अपने में बहला लिया है।

फागुन खूब रंग गुलाल उड़ाने का समय है, पर प्रियतम घर में नहीं है। किसके साथ होली खेलूँ। फागुन में भी स्वामी नहीं आये। यदि प्रियतम आ जायेंगे तो पिचकारी भर–भर कर खूब रंग खेलूँगी। दुगुना रंग घोलूँगी। चैत्र महीने में जंगल के पेड़–पौधों के फूल खिल गये हैं। भँवरे फूलों पर गुन–गुन कर मंडरा रहे हैं। भँवरों की गुंजार सुनाई दे रही है। भँवरे उड़–उड़कर आम के मौरों (फूलों) पर बैठ रहे हैं, उनका रस ले रहे हैं। यह देखकर मन में टीस उठ रही है। इसका दुख सहा नहीं जा रहा है। वैशाख में बाँस कटवा लेंगे, उसकी बाँसुरी बनवा लेंगे। चूने से एकदम धवल बंगला पुतवा लेंगे। एक–एक ईंट से सुन्दर महल बनाया गया है, पर समस्या यही है कि इस महल में किसके साथ रहें? जेठ महीने की महिमा ही अलग है। धूप पड़ती है। पसीना बहता है। जेठ में बारामासी गीत गाकर हम अपना मन बहलाते हैं। सूरदास कहते हैं– यह प्रभु यानी श्रीकृष्ण के मिलने का समय है। प्रभु ही हमारी मन की गति (दशा) को समझ सकते हैं। वहीं हमारी मन की पीड़ा हरण कर सकते हैं।

बरसाती भजन गाने की परम्परा समूचे निमाड़ में है। इन भजनों का विषय भी राधा–कृष्ण से संबंधित होता है। इन गीतों की राग प्रायः मल्हार होती है और इनकी दो–दो पंक्तियों को 'साखी' कहा जाता है। नरसिंह भगत की छाप वाले अनेक प्रकार के गीत निमाड़ में मिलते हैं। जिनमें लोक काव्य की कोमल वल्लरियाँ सजी होती हैं। प्रेम, शृँगार और करुणा के भाव इन गीतों में प्राण की तरह संचरित होते हैं। एक भजन दृष्टव्य है–

श्रावण आयो सायबो हो... श्रावण आयो सायबो नऽ
माथऽ आयो मेघ।
भीजण लागी पंखुड़ी नऽ, धूजण लाग्यो शरीर।

बिंदराबन ना मोरीड़ा हो, बिंदराबन ना मोरीड़ा नऽ
म्हारा घर रमवा आव।
सोना मड़ाऊं थारी पंखुड़ी हो, सोना मड़ाऊ
थारी पंखुड़ी
नऽ रूपा मड़ाऊं थारी चोच।
धरती नी आरती करूं हो, धरती नी आरती करूं,
पवन करूं परवार।
बीज लड़ी नऽ करूं दीवलो हो, बिजलड़ी नऽ करूं दीवळो,
नऽ गाऊं राग मल्हार।

–सावन में सायबा (प्रियतम को संबोधन) आ गये हैं, इधर आकाश में बादल छाने लगे हैं। बादलों को देखकर मोर नाचने लगे हैं। पानी बरसने लगा है। मोर के सुन्दर पंख भीजने लगे हैं। उनका शरीर गीला होने से काँपने लगा है। हे वृन्दावन के सुन्दर नृत्य करने वाले! तुम मेरे घर नाचने आना। तेरा पंख मैं सोने से मढ़वा दूँगी, चाँदी से तेरी चोंच मढ़वा दूँगी। फिर मैं धरती की आरती करूँगी। पवन की वन्दना करूँगी। उस आरती में बिजली का दीपक बनाऊँगी, फिर वन्दना में राग मल्हार गाऊँगी।

परदेश में बसे स्वामी परवश में है। वे अपने बस में नहीं है, किसी और स्त्री के वश में हो गये हैं। नायिका के मन में ऐसी कोरी कल्पनाएँ उठ रही हैं। यह सौतिया भाव प्रायः बारामासा गीतों में व्यक्त हुए हैं। परकीया नायिका की मनोव्यथा निमाड़ी बारामासा में बहुत कम देखने को मिलती है। केवल नायिका का विप्रलम्भ शृँगार मुखर होता है। वियोग-संयोग की अभिलाषाएँ बारामासी गीतों का शृँगार होती हैं। विरह-मिलन की छटाएँ इन गीतों की आत्मा होती है। एक तरह से इन बारामासा गीतों में लोक कविता की उदात्तता के दर्शन होते हैं।

दोयलो छे रे महाराज, परवस दोयलो छे रे महाराज।
चौमासा रे सरीखो नीर झड़े रे वाला, पंछी पोयासा जाय,
मूसलाधार मेवा घणां बरसें, तो नीर बहे निराधार॥ परवस...
स्याला मां ठण्ड घणी पड़ऽ रे वाला, रुख कागज लिखऽ
पत्र लिखुं रे म्हारा नायनऽ रे वाला, जल्दी पधारो
ऊंदाला सरखी धूप पड़ऽ रे वाला, धूप पड़े नऽ सुहाय,
नरसिंह ना स्वामी न जाई कयजोरे वाला,
जोवनियों कुमलाय॥ परवस।

प्रियतम! परवश हो गये हैं। परदेश में किसी पराई स्त्री के प्रेम में पड़ गये हैं, इसलिए इधर आने का नाम ही नहीं ले रहे हैं। उस स्त्री में बिलम गये हैं। हे स्वामी! यहाँ चौमासा में एक सरीखा झड़वाला (घनघोर) पानी गिर रहा है। पक्षियों को पीने के लिये स्वच्छ पानी तक नहीं मिल रहा है, इसलिए वे प्यासे मर रहे हैं। मूसलाधार पानी बरस रहा है, हद छोड़कर बेहद पानी बरस रहा है। हे स्वामी! ठण्ड की ऋतु में इतनी अधिक ठण्ड पड़ रही है कि पूछो मत। जाड़े में तुम्हारी याद आ रही है, इसलिए रूक्मिणी तुम्हें पत्र लिख रही है। पत्र में वह स्वामी को जल्दी घर आने के लिये लिख रही है।

हे स्वामी! गरमी में एक सरीखी धूप पड़ रही है, धूप जरा भी अच्छी नहीं लगती। नरसिंह स्वामी कहते हैं- मेरे स्वामी (कृष्ण) से कहिए कि मेरा यौवन व्यर्थ ही जा रहा है, यौवन कुम्हला रहा है, इसलिए जल्दी से घर आ जाओ। मैं राह देख रही हूँ।

कृष्ण के वियोग में राधा भी इन्तजार में होती है। नया वर्ष लग गया है। चैत्र का महीना लगते ही कृष्ण की याद तीव्र हो जाती है और राधा कह उठती है- गोविन्द जल्दी घर आ जाओ।

हां रे चत्र मास नी रुतु लागे प्यारी, गोविन्दा घर आओ रे।
चत्र मास नी विलमण कईजो, म्हारा वाला घर आओ रे॥
धरती लिला गोमुख हरकी नऽ, हरकी सारी प्रजा रे
नव रे नदी नव नी कुलंता, तो पुरुष बिना कयसी नारी॥
गोविन्दा....
राधिका ना आंगण पीपळी रे, न पेला पिंड खजूर रे
छिन-छिन जोऊं थारी वाटड़ी रे, तो सखिया नो नेड़ो॥
गोविन्दा...
ध्रुव दिशा ना धुंधला रे, बिज चमुके भारी रे,
केशव कुबजा नऽ लई ग्या रे, हमन ते मेल्या बिमारी॥
गोविन्दा...
नहीं न्हाया गंगा गोमती, नहीं बठ्या साधु की संग रे,
ब्रजलाल नी विनती रे, हूं तो भुली रे गोकलिया नी वाट॥
गोविन्दा....

हे स्वामी! चैत्र का महीना बहुत प्रिय लगता है। हे गोविन्द!

चैत्र माह में घर आ जाओ। इस माह में मेरा मन तुममें लग रहा है, यानी तुम्हारी बहुत याद आ रही है। तुम घर आ जाओ।

हे स्वामी। आषाढ़ माह में वर्षा के कारण धरती रूपी गाय का गोमुख हरा हो गया है। वर्षा आने और हरियाली सर्वत्र छाने से जन-जन प्रसन्न हो गये हैं। नदियों में नया जल आ गया है। वे नये जल वाली हो गई हैं। ऐसे मौसम में बिना पुरुष के कोई भी स्त्री कैसे रह सकती है।

हे स्वामी! राधा के आँगन में पीपल का वृक्ष है, वहीं पास में खजूर का पेड़ भी है। पल-पल वह तुम्हारी राह तक रही है। सखियाँ उसका मजाक बना रही हैं।

हे स्वामी! ध्रुव दिशा में बदली छा गई है, पानी बरस रहा है। भारी बिजली चमक रही है। शायद कृष्ण किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ गये हैं, उसने उन्हें अपने वश में कर लिया है। मुझे उन्होंने बीमारी के बहाने का संदेशा भिजवा दिया है।

हे स्वामी! न मैंने पवित्र गंगा और गोमती जैसी नदियों में स्नान किया और न मैंने कभी साधु-सन्तों की सत्संग की। ब्रजलाल कवि विनती करते हैं- मैं तो कृष्ण के गोकुल गाँव की राह में रम गया हूँ, अर्थात् मैंने कृष्ण की भक्ति की राह पकड़ ली है। जब तक वे नहीं आयेंगे, तब तक मैं बारह महीनों के सभी कष्ट सहन करूँगा। जैसे राधा-कृष्ण की प्रतीक्षा में सारे दिन बिताती है।

बारहमासा प्राय: अनेक बोलियों की प्रिय लोक विधा रही है। निमाड़ी ही नहीं मध्यप्रदेश की अन्य मालवी, बुन्देली और बघेली तथा छत्तीसगढ़ी में बारामासी साहित्य वाचिक परम्परा में भरा पड़ा है। बारामासा गीतों पर स्वतंत्र रूप से शोध, अध्ययन और संकलन वृहद रूप से किया जा सकता है।

एक-एक बोली में हजार-हजार बारामासा गीत मिल सकते हैं। जिनमें कई नई उद्‌भावनाएँ, उपमाएँ और कल्पनाएँ मिल सकती हैं, साहित्य की अमूल्य धरोहर हो सकती है। आवश्यकता केवल एकाग्रता से संकलन और उसके अनुवाद की है। वैसे भी हजारों वर्षों से बारामासी गीत लोककण्ठों से गाये जा रहे हैं, जो एक प्रवाह की तरह आज तक चले आ रहे हैं। यह प्रवाह आगे भी चलता रहेगा। मुझे लोक पर भरोसा जो है।

संदर्भ-

1. निमाड़ी भाषा और उसका साहित्य : डॉ. कृष्णलाल हंस
2. निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास: रामनारायण उपाध्याय
3. निमाड़ी संस्कृति और साहित्य : वसन्त निरगुणे
4. गोपी-गवलन : रमेशचंद्र तोमर निमाड़ी का निजी अप्रकाशित संग्रह
5. भक्ति गीत संग्रह भाग-1

   भक्ति गीत संग्रह भाग-2

   अर्जुन भाई तेल्या एवं रामाभाई काकड़वाला, पाटीदार-कुक्षी (जिला-धार) म.प्र. 1989

निमाड़ी कहावतों में वर्षा

डॉ. मंजुला जोशी

भारत कृषि प्रधान देश है, और कृषि वर्षा पर निर्भर है। इसलिये यहाँ का जनमानस प्रकृति के अधिक निकट है। यहाँ का ग्रामीण समुदाय तो प्रकृति के साथ ही अपना जीवन व्यतीत करता है। इसलिये वह ग्रह, नक्षत्र, तारे एवं पशु-पक्षियों की बोलियों के संकेतों को समझता है, जानता है एवं प्रकृति के साथ झूमता गुनगुनाता है। धरती, वर्षा, प्रकृति, पवन की रग-रग से परिचित है। कृषि वर्षा से जुड़े इनके अनुभव अद्‌भुत हैं। ये खगोलशास्त्री नहीं है, किन्तु ग्रह नक्षत्रों की सम्पूर्ण जानकारी इन्हें है, जिसे सूत्रवाक्य में कहावतों में व्यक्त करना जानते हैं।

निमाड़ की वाचिक परम्परा बड़ी सशक्त रही है। चाहे वह लोकगीत, लोकावार्त्ता, पहेलियाँ या कहावतें हो। इन कहावतों में कम से कम शब्दों में अचूक निर्णय देने की क्षमता होती है। निमाड़ के प्रसिद्ध अध्येता रामनारायण उपाध्याय जी ने इन कहावतों को अनुभव की पुड़िया कहा है।

वैदिक सूत्रों की तरह ये कहावतें भी हमारे लौकिक जीवन के सूत्र मंत्र हैं। निमाड़ में वर्षा, खेती-किसानी, ग्रह-नक्षत्रों से जुड़ी ऐसी कई कहावतें प्रचलित हैं, जिसे विज्ञान भी चुनौती नहीं दे सकता। जो आज भी सत्य की कसौटी पर खरी उतरती हैं।

मघा धरती अघा

यह ग्रह नक्षत्रों से जुड़ी कहावत है। मघा नक्षत्र में पानी बरसता है तो धरती तृप्त हो जाती है और राष्ट्र को समृद्ध और सम्पन्न बनाती है।

मघा को बरसणू माय को परसणू

मघा नक्षत्र में पानी बरसने पर धरती ऐसे ही तृप्त होती है जैसे माँ के हाथों का भोजन पाकर बच्चा तृप्त होता है।

बरस उत्तरा ते अन्न नी खाय कुतरा

यदि उत्तरा नक्षत्र में पानी बरसता है तो कुत्ते भी अन्न नहीं खाते। अति की गति नहीं।

क्वाँर आणी न भाग पाणी

क्वाँर महीने के आते ही पानी का बरसना बंद हो जाता है और हमारे पूर्वजों का यह गणित बिल्कुल सिद्ध है।

दिन मऽ बादला न रात में तारा काल पड़णऽ का चाला

यदि दिन में बादल हो और रात में तारे, तो समझो आपदा आयेगी ही।

अश्लेषा बालऽ न मघा वालऽ

अश्लेषा नक्षत्र में धूप ज्यादा गिरती है जिससे फसल नष्ट हो जाती है, तथा मघा नक्षत्र में पानी बरसने पर फसल पल्लवित होती है।

आर्द्रा भर खाल्या रीता खोदरा

आर्द्रा नक्षत्र में पानी बरसता है तो खाली नाले जल्दी भर जाते हैं।

खेत मऽ नालोऽ नऽ घर मऽ सालो नी होणू चायजे

यह उपदेशपरक कहावत है। खेत में नाला और घर में साला (पत्नी का भाई) नहीं होना चाहिए। असमय नाला भर गया तो फसल का नुकसान होगा। साला असमय बोलेगा तो दिक्कत आयेगी। इसलिये खेत में नाला और घर में साला नहीं होना चाहिए।

बूंद-बूंद सी तलाव भरायज

यह नीतिपरक कहावत है। बूँद-बूँद से तालाब भरता है। छोटी-छोटी बचत भविष्य सुरक्षित करती है।

पाणी न पावणो बखत देखी न आव ते काम को

लोक व्यवहार से जुड़ी कहावत है। पानी और मेहमान समय देखकर आना चाहिए।

सब खेती सूखी गया तवं पाणी बरस्यों तो काई काम को

समय निकल जाने पर पानी बरसा तो क्या काम का?

पानी पड़तो तो आवता भुट्टा अवं खाओ कट्टया

अच्छी वर्षा होती तो भुट्टे आते और खूब सेककर खाते, किन्तु पानी नहीं आयेगा तो भुट्टे के कट्टये खाओ।

खोदा मऽ पाणी नी नऽ खेत में वराप नी

नाले में पानी नहीं और खेत में जमीन गीली नहीं तो फसल कैसे बोयें। (वराप-गीली मिट्टी)

बरस स्वाति ते पोव मोती

स्वाति नक्षत्र में पानी बरसता है तो किसान सम्पन्न हो जाता है।

पड़तऽ पाणी काल पड़यो

पानी अधिक गिरने के कारण अकाल पड़ा अर्थात् सुविधा के बावजूद परेशानी।

पुनर्वसु सूखो जाय, तो किरसाण को पोरया पारी काई खाय

पुनर्वसु नक्षत्र में पानी नहीं गिरे (वर्षा न हो) तो किसान के बच्चे क्या खायेंगे।

पाणी मऽ रईन नऽ मच्छी काई तीसी रयज

यह लोक व्यवहार से जुड़ी कहावत है। पानी में रहकर मछली प्यासी रह सकती है क्या? सुविधा मिलने पर हर व्यक्ति लाभ उठाता ही है।

घाट-घाट को पाणी नऽ मुण्डा मुण्डा की वाणी

यह लोक व्यवहार से जुड़ी कहावत है। मनुष्य जहाँ रहता है, जहाँ का अन्न जल ग्रहण करता है, वैसी ही वाणी भी सीख जाता है। ऐसी मान्यता है कि हर थोड़ी दूर पर पानी और वाणी बदल जाती है।

पाणी मऽ रईन न मगर सी बैर

यह लोक व्यवहार से जुड़ी कहावत है। जहाँ रहो वहाँ मिलकर परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार रखना चाहिये। जिनके मन मिले हों उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। जैसे लकड़ी मारने से पानी अलग नहीं किया जा सकता।

सरी सांझ को पाणी नऽ सरी सांझ का पावणों जातो नी हई

यदि संध्या को पानी बरसता है और संध्या के समय मेहमान आते हैं तो वे रातभर ठहरते ही हैं, जाते नहीं।

वलेण को पाणी मगरी पऽ नी चढ़तो।

मकान से नीचे गिरने वाला पानी पुनः ऊँचाई पर नहीं चढ़ता। यह प्रतीकात्मक कहावत है। ओछे व्यक्ति से बड़प्पन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

आग नऽ पाणी चौकी वाट नी मोपाय काई

आग और पानी को चौकी (अनाज नापने का एक बर्तन) से नापा नहीं जा सकता।

लट्ठ मार्‌यो पाणी दुई नी हुई सकतो

नदी को मूल न ऋषि को कुल नी देखणू चायजे

यह लोक व्यवहार से जुड़ी कहावत है। नदी का मूल और ऋषि का कुल नहीं देखना चाहिए। उनकी गुणवत्ता से लाभ अवश्य लेना चाहिए।

तिस्यों कुआँ का पास जायज,
कुओं थोड़ी तिस्या का पास जायज।

प्यासा कुँए के पास जाता है, कुआँ प्यासे के पास नहीं। जिसे जिसकी आवश्यकता होगी, वही उसके पास जायेगा।

ऐसी न जाने कितनी कहावतें निमाड़ी लोक व्यवहार में प्रचलित हैं, जो एक ही दलील में सामने वाले को चुप कराने का सामर्थ्य रखती है। इन कहावतों को गढ़ने वाला शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग नहीं अपितु ग्रामीण मन है, जो अपने अनुभव का अकूत खजाना हमें दे गये हैं। उनका शत्-शत् वन्दन।

संदर्भ

1. श्रीमती उर्मिला जोशी, सेंधवा।
2. श्रीमती शकुन्तला जोशी, ग्राम-साली, जिला बड़वानी।
3. श्रीमती अनिता चतुर्वेदी, ग्राम-घेघांव, जिला बड़वानी।
4. श्रीमती अर्चना त्रिवेदी, गोगावां, जिला खरगोन।
5. श्रीमती सीमा चतुर्वेदी, इन्दौर।
6. श्रीमती सुमन जोशी, राजपुर।
7. श्री धनिया दाजी, राजपुर।

जनजातीय वर्षा गीत

प्रो. गुलाब डाबर/डॉ. मंजुला जोशी

भिलाला जनजाति के लोग मुख्यत: कृषि करते हैं। वर्षा के स्रोत और प्रतीक भिलालों के लिए पूजनीय है। वर्षा देर से होने के कारण किसानों की चिंता बढ़ने लगती है। तब वे अपने पारम्परिक रीति-रिवाजों एवं टोटकों का उपयोग करते हैं। विज्ञान इन टोटकों को भले ही मान्यता नहीं देता, किंतु मन है कि अपनी आस्था और विश्वास को टूटने नहीं देता। इन टोटकों में कभी गाँव से बाहर जाकर उजवनी करते हैं, तो कभी किसी जीवित व्यक्ति की अर्थी निकाली जाती है, तो कभी शिवजी की उपासना की जाती है, तो कभी शिवजी को पानी में डूबोया जाता है। टोटका कोई भी हो किन्तु भावना सदैव लोकमंगल की ही रहती है। सम्पूर्ण जनमानस एकजुट होकर प्रार्थना करता है। तंत्र, मंत्र, पूजा, उपासना, मनुहार का टोटका करके इंद्रदेव को मनाता है। भिलाला जनजाति में ऐसे कई टोटके प्रचलित हैं। वर्षा से जुड़े गीतों को 'डेडरा गीत' कहते हैं। वर्षा की देरी की अवस्था में एक टोटका किया जाता है जिसे डोडुयो कहते हैं। वर्षा हेतु आधी रात्रि के समय भिलालों के बच्चे व बच्चियाँ 8-10 की टोली में दूसरे गाँव की ओर एक साथ निकलते हैं। इसमें किसी बच्चे के हाथ में जलता हुआ कंडा, तो किसी के हाथ में खाली डिब्बा रहता है, जिसे बजाते हुए चलते हैं। डिब्बा बजाने का मतलब होता है, यहाँ बादल गरज रहे हैं, और जो कंडा जला हुआ लेकर चल रहे हैं उसे बिजली की चमक होने का प्रतीक माना जाता है। इनके साथ छोटी बालिकाएँ 'दाल दे भाई मिर्ची दे डोडियो भाई डोडियो' 'गाया भयस्या भूखा मरे' आदि गाकर तो कुछ बालक मेंढक की आवाज टर्र....टर्र....टर्र... निकालते हुए चलते हैं। इसलिये इसे डेडरा गीत भी कहा जाता है। बच्चों की टोलियाँ रात्रि को समूचे गाँव में घूमती है। टापरी-टापरी कहते हुए 'मेंढक माता पाणी दे' सोते हुए गाँव वाले इनकी आवाज सुन उठकर इन्हें आटा, नमक, हल्दी, धनिया, बेसन, प्याज और अन्य भोजन का सामान देकर अपने घर से विदा करते हैं। इनके शोर से कोई घर वाला नहीं जागा तो उस घर के सोते हुए लोगों पर पानी उड़ेल दिया जाता है। इस हरकत से घर वाले इनको गालियाँ देते हैं। इसे ये शुभ मानते हैं।

पानी और पावस के प्रति कितनी आतुरता? कितनी-कितनी मान मनुहार व गुहार? श्रद्धा भी कैसी कितनी-कितनी? ये ग्रामीण जनमानस इन मेंढकों के टर्राने से पानी आने पर इन्हें देवी की संज्ञा दे देता है। वहीं हमारे साहित्यकार मेंढक के टर्राने को वर्षा के आगमन का संकेत मानते हैं। ये किसान खगोल विज्ञान के जानकार तो नहीं है किन्तु अनुभव से जुड़ा ज्ञान किताबी ज्ञान को भी पछाड़ देता है।

आर्द्रा नक्षत्र के आगमन की घोषणा बादलों की गड़गड़ाहट के साथ ही भिलाला जनसमूह प्रसन्न हो जाता है। बालक-बालिकाओं का मन-मयूर 'पाणी बाबा' (जल देवता) को देखते ही नाच उठता है-

पाणी बाबा आवे, काकड़ी दूडा लावे।
ढाकणी न डोकरो, न बाबो मोकलो।[1]

किन्तु कभी-कभी इन्द्र देवता रूठ जाते हैं, तब इनकी मनौतियाँ शुरू हो जाती है। जलवृष्टि के देव इन्द्र से कामना की पूर्ति हेतु शरण में जाकर बालक-बालिकाएँ अपने निश्चल भावोद्‌गार व्यक्त करते हैं-

डेडरी माता पाणी ला
ढोबो ढोबो धान गला
नाला खोदरा पूरं चलया गुड धाणी ला
नदिया भरपूर चलया, डेडरी माता पाणी ला।[2]

डेडरी गीत गाकर वर्षा का आह्वान करते हैं। मेंढकों का टर्राना वर्षा के आगमन का सूचक है। जब वर्षा नहीं होती है तो बच्चे, फला व्यक्ति की पत्नि, थलचर, नभचर के प्राणियों के नाम गीतों में जोड़ते हैं-

खयड़े न बयड़े रेल छेल पाणी भाई भंगड़ा न घर पर,
पाणी नी मिले, वरीस रे मेघ बाबा डुडियो डुडियो।
लावरा न तोतरा तीसा मरे,
वरीस रे मेघ बाबा डुडियो डुडियो।
कुकड़ा न बुकड़ा तीसा मरे,
वरीस रे मेघ बाबा डुडियो डुडियो।
गाजण्यो ने विजल्यो भरी गुयो,
वरीस रे मेघ बाबा डुडियो डुडियो। [3]

कन्याएँ कहती हैं कि सारे संसार तथा उबड़-खाबड़ टेकरी तथा पहाड़ों पर बहुत वर्षा हो रही है किन्तु 'भंगड़ा' नाम व्यक्ति के घर पर वर्षा नहीं होने से पीने तक को पानी नहीं है। हे मेघ! वर्षा करें। वर्षा नहीं होने की स्थिति में पशु-पक्षी (तीतर, गोरैया, मुर्गे, बकरी) प्यास से व्याकुल हो रहे हैं। अंत में चिढ़कर कहती है कि बादल और बिजली मर गये हैं। इसलिए वर्षा नहीं हो रही है। हे मेघ! आपसे विनती है कि वर्षा करें।

उपर्युक्त गीत में बताया गया है कि कहीं वर्षा अधिक हुई तो कहीं कम, तो कहीं बिल्कुल नहीं होती है। बंजर भूमि पर जलवृष्टि हो गई है किन्तु 'भंगड़ा' नामक व्यक्ति के घर तथा खेत में वर्षा नहीं हुई है। दूसरी ओर गीत में यह गाया जाता है कि विपरीत दशा में गीत गाने से भी जलवृष्टि होती है, ऐसी मान्यता है।

साल सूके, कुतरा चरे न गदहा भूखे,
सुरेश भाई साड़ी पेरे, न भाभी पेरे धोतीये
भेरूभाई डोडियो डोडियो, वरसुंग बरसाढूंगा
दुनिया क धवाढूंगा, डोडियो डोडियो।[4]

गीत में कहा गया है कि यह साल सूखा रहा है, अर्थात् जल वृष्टि नहीं हुई है। कुत्ते चर रहे हैं, गदहे भूक रहे हैं। अनाज व चारा नहीं होने की दशा में इन जानवरों की आवाज भी कहीं की कहीं जा रही है। सुरेश भाई को भान नहीं है। कमीज की जगह साड़ी पहनता है तो भाभीजी साड़ी की जगह धोती पहनती है। दशा दयनीय हो रही है। सभी व्याकुल हैं। सभी बेहाल हैं। भेरूभाई कहते हैं- मैं मेघ बनकर धरा पर वर्षा करूँगा, साथियों से भी वर्षा कराऊँगा और दुनिया में अच्छी फसल पैदावार करके सबको सुखी रखकर भोजन कराऊँगा। अत: मैं मेघ बनूँगा।

जब बच्चों की टोलियाँ गीत गाती हैं तो गीत में फला व्यक्ति स्वयं मेघ बनकर वर्षा करने की बात करते हैं, तब गीत गाने वाले के घर के सदस्य उन बच्चों पर पानी डालते हैं। पानी डालना

'शुभ' मानते हैं। कहते हैं- 'हय ते पाणी आइगयो' अर्थात् अब तो जलवृष्टि होने लग गई है। जब पानी ऊपर डाल देते हैं तब वह विदाई लेकर दूसरे घर की ओर प्रस्थान करते हैं और यह गीत गाते हैं-

खयड़े न बयड़े रेल छेल पाणी भाई
रतन्या न ढुबलिक पाणी नी भराये
माँदी पड़े न हापस्या लेय
वरीस रे मेघ बाबा डुडियो डुडियो। [5]

बच्चों की टोलियों की प्रार्थना मेघ बाबा सुन लेते हैं और वर्षा होती है। अतिवृष्टि होने से जहाँ देखो वहाँ पानी ही पानी है किन्तु खेतों में पानी नहीं है। नहर, कुँए, तालाब, नदी सभी भरपूर बह रहे हैं। बंजर टेकरी भूमि से पानी बह रहा है। रात-दिन पानी के गिरने से रतन्या की पत्नी से पानी नहीं लाया जा रहा है। उसे निमोनिया हो गया है। सांसे फूल रही है। हे मेघ बाबा! अब तो हमारे खेतों पर वर्षा कीजिए।

आदिवासी समाज के बुजुर्ग गरभ देखकर भी वर्षा का अनुमान लगा लेते हैं कि वर्षा कौन से समय में होगी। आकाश में काले बादल चलते है, काले बादलों का चलना जिसमें पानी होने का सम्मिलित होना मानते हैं। कभी-कभी यह भी मानते हैं कि गरभ नहीं दिखता है तो भी वर्षा होती है। गरभ से संबंधित गीत देखिए-

आभी-आभी नं पीछे पाणी न हिंदल राजा।
नाना-नाना रूपा कुम्लाये वोऽऽ।
धरती नं मोल साईं क्यों लियो रे रामा
आभी-आभी नं पीछे न हिंदल राजा। [6]

बादल पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर जा रहे हैं। परन्तु वर्षा नहीं होती है। वर्षा नहीं होने से किसानों की छोटी-छोटी फसल कुम्हला रही है। आखिर वह कह देती है कि- हे मेघ राजा! वर्षा नहीं करनी है तो तूने धरती की साई अर्थात् उसके भार को वहन क्यों किया। अर्थात् पृथ्वी का वारिस/पालनहार ही क्यों बना? हे मेघ! वर्षा कीजिए।

ये गीत बच्चों द्वारा अपनी परम्परा के अनुसार वर्षा के लिए टोटका करते हैं। ये बच्चे अपने शरीर पर कपड़े न पहनकर हाथ में लिये, हिलाते हुए नंगे पाव पैदल चल रहे हैं। रात्रि को विभिन्न खाद्य सामग्री एकत्रित करके अगले दिन सुबह व्यवस्था अनुसार गाँव में निमंत्रण देकर 'गाखर' (गेहूँ/मक्का के आटे की बनी बाटी) बनाकर सभी खाते हैं। आदिवासी भील-भिलालों की यह परम्परा वर्षा के आमंत्रण के लिए की जाती है। यह प्रक्रिया मौसम में एक गाँव में एक ही बार की जाती है।

आज भी भिलाला समाज में ऐसी कई परम्पराएँ प्रचलित हैं जो प्रकृति से भिलाला को जोड़े रखती है।

स्रोत

1. श्रीमती पुष्पलता डाबर, डेहर, निसरपुर।
2. श्रीमती रेवा डाबर, डेहर, निसरपुर।
3. श्रीमती सुन्दरबाई मण्डलोई, डेहर, निसरपुर।
4. श्रीमती दूरबाई किराड़े, डेहर, निसरपुर।
5. श्रीमती सोनाबाई किराड़े, डेहर, निसरपुर।
6. श्रीमती चंदा डाबर, डेहर, निसरपुर।

कालई रे वादलई नीलई रेख....

रमेश चन्द्र तोमर 'निमाड़ी'

वर्षा आनंददायी मौसम हैं। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि सभी प्राणी वर्षा की प्रतीक्षा करते हैं। वर्षा सब को जल प्रदान करती है। जल ही जीवन है। जल के बिना सब सूना है। वर्षा के चार महीने प्राणियों के लिए इतनी वर्षा कर देते हैं कि अगले आठ महीने जल से परिपूरित हो जाते हैं। प्रकृति की मेघों के माध्यम से यह अद्‌भुत व्यवस्था है। कहीं छः महीने वर्षा होती है। कहीं बारह महीने भी वर्षा होती है। वहाँ का जीवन और संस्कृति अलग ही होती है। निमाड़ में चार महीने वर्षा होती है। इसलिए इन चार महीनों को 'चौमासा' कहा गया है। पूर्व के चार माह इतने गर्म और लू-लपट वाले होते हैं कि जीवन दूभर हो जाता है। ऐसे में वर्षा की बूँदे ठण्डक कर जाती हैं। चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ माह की भयंकर गर्मी से संतृप्त पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी, तालाब और संसार के समस्त जीव वर्षा के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं।

ज्येष्ठ माह की अमावस्या को इन्द्र देवता को प्रसन्न करने और वर्षा का आह्वान करने के लिए लड़के और लड़कियाँ एक त्यौहार मनाते हैं, जिसका नाम है 'डोड़या'। ज्येष्ठ अमावस्या को डोड़गलई अमावस्या और डेडरा अमावस्या भी कहते हैं। ज्येष्ठ माह की अमावस्या पर मेंढक जो आठ माह के लिये पृथ्वी के अन्दर चले जाते हैं, वे इस अमावस्या पर पृथ्वी से बाहर निकल आते हैं। इस लिए भी इसे डेडरा अमावस्या कहते हैं। इस दिन गाँव के लड़के जंगल में जाकर पलाश की कोमल डालियाँ काट कर लाते हैं। उन्हें रस्सी से बाँधकर एक लड़के के सिर पर रखकर उसे मेंढक (डेडरा) बनाते हैं। लड़कियाँ कवेलू पर गोबर से मेंढक और पाँच गौर की आकृतियाँ बनाकर उसकी कुमकुम चावल से पूजा करके एक लड़की के सिर पर रखकर उसे डेडर माता बनाती हैं। लड़कों का मत यह है कि हरियाली को देखकर बादल जल्दी से पानी बरसायेंगे। इसलिए वे यह टोना-टोटका करते हैं। लड़कियों का मत ये है कि गाय के गोबर से पवित्र और उत्तम कुछ नहीं होता, अतः वे गोबर से मेंढक बनाकर इन्द्र देवता का आह्वान करती हैं। फिर दोनों दल लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग समूह बनाकर गाँव के प्रत्येक घर में भिक्षा माँगते हैं। गृह स्वामिनी सबसे पहले एक लोटा

पानी डेडरा और डेडर माता पर डालती हैं। फिर उन्हें भेंट स्वरूप आटा, दाल, नमक, तेल, घी आदि वस्तुएँ देती हैं। लड़कों का समूह गीत गाता है।

हे मेंढक माता! पानी बरसाकर हमारे काले-काले खेतों को हरीतिमा की हरियाली दे, काले-काले खेतों में कपास उगकर इतना पैदा हो कि वह दही के लच्छे के समान दिखाई दे। तुम्हारे आगमन से हमें दूध, दही, मही पर्याप्त खाने को मिलेगा। हे मेंढक माता! जल्दी से पानी को भेजो, पानी बरसे पर बरसकर कहीं बन्द न हो जाये। बरसते ही रहना ताकी धान (साल) फसल भी अच्छी हो, हमे चावल खाने को मिले, कहीं अकाल की स्थिति न आ जाये, वरना गधे भूकेंगे।

गाँव से भिक्षा लेकर लड़के और लड़कियाँ अमराईयों में जाकर दाल बाटी बनाकर सामूहिक भोज करते हैं। भोजन के बाद आवली-पिपली या अन्य खेल-खेलकर शाम को घर आते हैं।

बच्चे जो स्वयं भगवान का स्वरूप होते हैं। इन्द्र से समूह में पानी बरसाने की प्रार्थना करें तो इन्द्र का सिंहासन निश्चित रूप से डोल पड़ेगा। बच्चों की प्रार्थना इन्द्र देवता सुन लेते हैं। धरती पर पर्याप्त पानी बरस कर धरती को तृप्त कर देता है। तब किसान बोने की तैयारी करता है।

सर्वप्रथम किसान अपने खेती के औजारों की पूजा करते हैं। बैल ही किसान का सबसे बड़ा धन है। बैलों के बिना किसान का कोई भी कार्य नहीं होता। इसलिए बैलों की पूजा की जाती है। ज्वार निमाड़ की मुख्य उपज थी। ज्वार को ज्वार न कहकर 'ज्वार माता' कहते हैं। इसे माता की तरह पूजा जाता है। दीपावली पर भी ज्वार माता की पूजा की जाती हैं। देव बड़वों की पूजा थाली में ज्वार रखी जाती है। सर्वप्रथम खेत में बुआई करते समय प्रथम ज्वार ही बोई जाती है। ज्वार निमाड़ का मुख्य भोजन था, 'ज्वार का रोटा न अम्बाड़ी की भाजी' यहाँ का मुख्य भोजन था। ज्वार को माता का दर्जा इस गीत में दिया गया है।

सरन सती देवी शारदा, गणपती लागा पाय,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
तातो तपेलो किरसाण पाणी मेल्यों,
सामी दियो राय आगण माय राम,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
न्हाया की धोया किरसाण खड़ा रहया,
पेरी लिया सोलह सिणगार,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
घर लिप्या घर का आगणा लिपी वलई लम्बी पटसाल,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
नख छोल्या किरसाण चावल रांदी लिया,
जिमी लिया सामी मजघेर राम,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
जुगदरी को टोपलो गाड़ी म मेल्यों,
जुपी दिया धवल्या सी जोड़ राम,
सबसी मोटी जुगदरी माता,
पाँच चास किरसाण वाई दिया,
वरसी गया भर भादव मेघ राम
सबसी मोटी जुगदरी माता

हे माता सरस्वती! हम आपकी वन्दना करते हैं। हे गणेश जी! हम आपके चरण स्पर्श करते हैं। संसार में सबसे बड़ी ज्वार माता है। किसान की पत्नी ने पानी गर्म किया और उसमें ठण्डा पानी मिलकार उसे आँगन में रख दिया। किसान ने स्नान किया, उसकी पत्नी ने सोलह शृँगार किये। घर को लीपा और यहाँ तक की लम्बी सी पटसाल को भी लीप दिया है। नाखून से तरासे गये चावल किसान की पत्नी ने बनाये हैं। उसमें गुड़, घी डालकर किसान ने भोजन किया। इसके बाद ज्वार माता को टोकरे में रख उसे गाड़ी पर रखा और गाड़ी में सफेद रंग के बैल जोत दिये। पति-पत्नी दोनों खेत में गये, खेतर पाल देवता की कुमकुम अक्षत से पूजा की, नारियल फोड़ा और पाँच कतार ज्वार माता के बो दिये। ज्वार माता बोते ही भादव के समान पानी बरसा है। फसल की बुआई हो गई। फसल शनैः-शनैः बड़ी हो गई। फसल से खर पतवार निकालने के लिए किसान खेत में कोलपा (डोरा) चलाते हैं। मस्ती में हालुर गाते हैं।

कालई रे वादलई नीलई रेखऽ,
दादुर सुहाणी लाग राजऽ,
छोटी मोटी मारूणी का लम्बा लम्बा केशऽ,

हाथ रंगाड़ो गोरी को पियु पर देशऽ,
बाग म जाजो महाराज,
नारीयल बेड़ाडी लावजो राजऽ,
राय आंगण ढोलई दिजो राजऽ,
कालई रे वादलई नीलई रेखऽ,
बाग में जाजो महाराज,
लवंग बेडाडी लवजों राजऽ,
लवंग बेड्डी लवजों राजऽ,
राय आंगण ढोलई दिजो राजऽ,
कालई रे वादलई नीलई रेखऽ
दादुर सुहाणी लाग राजऽ,

काले-काले बादलों में बिजली चमक कर नीले प्रकाश की रेखा के समान सुहावनी लग रही है। प्रियतम परदेश में हैं। और प्रिया उदास है। प्रिया कद में छोटी है। लेकिन उसके बाल काफी लम्बे हैं। गर्भावस्था के कारण उसके हाथों में मेहंदी लगाई जा रही है। हे प्रियतम! गोरी को बहलाने के लिए बाग में जाईये वहाँ से नारियल तोड़कर ले आईये। नारियल तोड़कर गोरी की गोद में रख दीजिये। हे प्रिये! बाग में जाईये वहाँ से लौंग तोड़कर ले आईये, तोड़कर गोरी के ससुर के आँगन में रख दीजिये।

खेतों में कोलपे (डोरा) चलाने के बाद निदाई-गुड़ाई का काम शुरू हो जाता है। पति-पत्नी दोनों खेत पर काम करने हेतु जाते हैं। बच्चों को माँ-दादी माँ के सुपुर्द करके खेत पर चली जाती है। दादी माँ बच्चों को झूले पर झूलाते हुए लोरी गाती है।

दूर दूेश की ओ म्हारी कालई वादलई,
पाणी कब आवसे,
आवसे-आवसे ओ बईण सावण सेरा,
भादव झड़ी लगावसे
काँ की बईण पेर लाल पटोलो,
काँ की बईण पेर घनचोलो,
भावना बईण पेर लाल पटोलो,
उमा बईण पेर घनचोलो,
दूर देश की ओ महारी कालई वादलई,
पाणी कब आवसे,
आवसे-आवसे ओ बईण सावण सेरा,
काँ की बईण पेर लाल पटोलो,
काँ की बईण पेर घनचोलो,
वीणा बईण पेर लाल पटोलो,
शोभा बईण पेर घनचोलो,

माँ बच्चों को झूले पर सुला रही है। वह लोरी गा रही है। हे दूर देश से आने वाली काली बदली! तू पाती लेकर कब आयेगी? पानी कब बरसेगा? तब बादल प्रतिउत्तर में कहता है- जब सावन का महीना आयेगा, तब सावन में सेरों के रूप में पानी बरसेगा। भादव महीने में पानी की झड़ी लगेगी, सावन माह में बहनों का आगमन होगा। कौन सी बहने आयेंगी? क्या पहनकर आयेंगी? कौन सी बहन लाल पटोले की महंगी साड़ी पहनकर आयेगी और कौन सी बहन घनचोला (एक पुराने समय की रेशमी साड़ी) पहनकर आयेगी? भावना बहन लाल पटोले की साड़ी पहनकर आयेंगी। उमा बहन घनचोला पहनकर आयेंगी। दूर देश से आने वाली काली बदली तू पानी लेकर कब आयेगी? पानी कब बरसेगा? तब बादल प्रतिउत्तर में कहता है- जब सावन का महीना आयेगा तब बौछारों के रूप में पानी बरसेगा। भादव मास में पानी की झड़ी लगेगी। सावन में बहनें अपने भाईयों को राखी बाँधने आयेंगी। कौन सी बहन लाल पटोले की साड़ी पहनकर आयेगी? कौन सी बहन घनचोला पहनकर आयेगी? वीणा बहन लाल पटोले की साड़ी और शोभा बहन घनचोला पहनकर अपने मायके भाईयों को राखी बाँधने आयेंगी।

सावन का महीना बहन के मन में अपने भाई की याद लिए आता है। आकाश में तैरते बादलों की तरह उसकी आँखों में भी अपने मायके की याद तैरने लगती है। लाख प्रयत्न करने पर भी किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता है। तनिक सी आहट से वह चौंक सी जाती है और अनजाने ही बार-बार द्वार तक जाकर अपने भाई के आने की प्रतीक्षा करने लगती है। जिस ससुराल में आत्मसात् होने में उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, आज उसी ससुराल में सास को देखकर उसे अपनी माँ की याद सताने लगती है। माँ जिसके बिना वह बचपन में एक क्षण भी अलग नहीं रह पाती थी। आज उसी माँ से मिले उसे कितने दिन हो गये। उसका मन उड़-उड़कर अपनी माँ के पास पहुँच जाता है। उसे वट वृक्ष की तरह अपने पिता की याद आती है। आज भी

वे बैठक में बैठकर उसे याद कर रहे होंगे। आँगन में खेलते बच्चों को देखकर उसका मन अपने भाई-बहनों की याद में उलझ जाता है। भाई जिसके साथ बचपन में खेले। खेल-खेल में कितनी बार लड़े-झगड़े, लेकिन एक दूसरे के बिना जिन्होंने खाना नही खाया, इसी तरह की अनेक स्मृतियों में तैरते मानों समय रूपी दिन को गिन-गिनकर वह रक्षा बंधन के दिन को और भी नजदीक खींच लाना चाहती है। नीम पर निबोलियाँ पककर टप-टप गिरने लगीं है। उसी प्रकार बहन को भाई की याद में आँखों से आँसू गिरने लगे हैं। आँखों में आँसू लिए बहन प्रतीक्षा कर रही है।

नीम निम्बोली पाकी सावण महिनो आयो जी
हमरा तो मोठा भाई तुक नीद कसी आव जी
तमरी तो बेन सासरीया म झुरऽ जी
झुर तेक झुरऽ दीजो, अबके सावण लावा जी
नील निम्बोली पाकी सावण महिनो आयो जी
हमरा तो लोकेन्द्र भाई तुक नीद कसी आवगी
तमरी तो भावना बईण सासरीया में झुरऽ जी
झुरऽ तेक झुरऽ देवो अबके सावन लावा जी
नीम निम्बोली पाकी सावण महिनो आयो जी

नीम के वृक्ष पर निम्बोलियाँ पक गई हैं। सावन का महीना आ गया है। ओ मेरे बड़े भाई! इन दिनों तुमको नींद कैसे आ रही है? देखो तुम्हारी छोटी बहन ससुराल में तुम्हें याद कर रही है। जो रो रही हैं, उसे हम लेने सावन में जरूर जाएँगे।

नीम पर निम्बोलियाँ पक गई हैं। सावन का महीना आ गया है। ओ मेरे लोकेन्द्र भाई! इन दिनों तुमको नींद कैसे आ रही है। देखो तुम्हारी भावना बहन ससुराल में तुम्हें याद कर रही है। इसपर भाई कहता है-जो बहन रो रही है, उसे रोने दो, हम अपनी बहन को लेने इस सावन में जरूर जाएँगे।

बहन की मार्मिक प्रार्थना सन्देश रूप में भाई तक पहुँच जाती है। और भाई बहन को लेने जाने की तैयारी करने लगता है।

कुण भाई जासे चाकरी न कुण भाई जासे गाढ़ रे गुजरात
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
मोठा भाई जासे चाकरी न, छोटा भाई जासे गाढ़ रे गुजरात
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
कुण भाई की घोड़ी क घुघरूं,
न कुण भाई की घोड़ी क जड़ीयों रे जड़ाव
म्हारा वीरारे सावन सेरा वरसी गया
मोठा भाई की घोड़ी क घुँघरू न,
छोटा भाई की घोड़ी क जड़ीयों रे जड़ाव
म्हारा वीरारे सावन सेरा वरसी गया
कुण भाई लाव से चुन्दरी,
न कुण भाई लावसे दखणिया रो चीर
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
एक भाई लावसे चुन्दरी दुसरो भाई लावे दखणिया रो चीर
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
दुर-दुर की महारी भावना बईण तुक लेण भाई जासे
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
जासे जासे म्हारों लोकेन्द्र भाई घोड़ा कुदावतो लावसे
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
घोड़ा का टापुर वाज्या बईण कहे म्हारो भाई आयो
पायल को पिन्जण को तुमको वाज्यों
भाई कहे की म्हारी बईण आई
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया
पयली राखी म्हारा लोकेन्द्र भाई क बान्दु
लोकेन्द्र भाई न दिवी लाल गाय
लाल गाय का जाया हाल हाकऽ
म्हारा वीरारे सावण सेरा वरसी गया

कौन सा भाई नौकरी पर जायेगा और कौन सा भाई गुजरात गढ़ से बहन को लेने जाएगा? हे मेरे भाई! सावन का पानी बरस गया है। बड़े भाई नौकरी पर जायेंगे और छोटे भाई गुजरात गढ़ से अपनी बहन को लेने जायेंगे। ऐ मेरे भाई! सावन का पानी बरस गया है। किस भाई की घोड़ी को घुँघरू बाँधे जायेंगे और किस भाई की घोड़ी को रत्न जड़ित जड़ाव से शृँगार किया जायेगा? मेरे भाई! सावन का पानी बरस गया है। एक भाई चूंदर ले आयेगा और दूसरा भाई दक्षिण की प्रसिद्ध साड़ी लायेगा। दूर देश की रहने वाली मेरी भावना तुमको लेने कौन जायेगा? तुझे लेने के

लिए लोकेन्द्र भाई जायेंगे और वे घोड़ा दौड़ाते हुए तुम्हें लेकर आ जायेंगे। घोड़े के टापों की आवाज पर बहन पहचान जाती है कि मेरा भाई आया है। पावों की पायल की आवाज सुनकर भाई भी पहचान लेता है कि मेरी बहन आ गई। बहन सकुशल मायके में जाकर रक्षाबन्धन के दिन अपने लोकेन्द्र भाई को राखी बाँधती है। लोकेन्द्र उसे नेग स्वरूप लाल गाय भेंट करते हैं। लाल गाय के बछड़े खेती में हल जोतेंगे।

सावन का महीना सखी सहेलियों से मिलने का और झूला-झूलने का होता है। रिमझिम बौछारों में झूला-झूलना सुखद लगता है। सावन के महीने में कहीं भगवान कृष्ण के लिए झूला बाँधा जाता है और भगवान बालकृष्ण की मूर्ति को झूला झुलाया जाता है।

सावन आयो झूला झुलोरे म्हारा कुँवर कन्हैया
एजी सावन आयो झूला झुलोरे म्हारा कुँवर कन्हैया
डाल कदम का हिन्दौली हिचता
रूनक-झुनक आव मोर रे
म्हारा कुवर कन्हैया
सावन आयो झूला झुलोरे म्हारा कुँवर कन्हैया
काला काला बादला में बिजलई न चमकी
कोयल शोर मचाये रे
म्हारा कुँवर कन्हैया
सावन आयो झूला झुलोरे म्हारा कुँवर कन्हैया
कुँवर कन्हैया साथ राधिका भी झुल उर आनन्द उभराय रे
म्हारा कुँवर कन्हैया
सावन आयो झूला झूलोरे म्हारा कुँवर कन्हैया

सावन आ गया है। मेरे श्याम सुन्दर कन्हैया झूला झूल रहे हैं। कदम की डाल पर झूला बाँधा गया है। उसमें कन्हैया झूल रहे हैं। झूले के चारों ओर मोर भी रूनक झुनक आ गये हैं। काले-काले बादलों में बिजलियाँ चमक रही हैं। कोयल शोर मचाये जा रही है। कृष्ण के साथ राधिका भी झूले पर झूल रही हैं। अपार आनन्द हृदय में नहीं समा रहा है।

सावन जहाँ आनन्ददायी है, वहीं विरह व्याकुल नायिका के लिए विष के समान दुखदायी है। निमाड़ी में बारह महीनों को यूँ व्यक्त किया गया है। 'चौमासो' (असाड़, सावन, भादव, कुवार) स्यालो (कार्तिक, मागशिर, पोष, माह) उन्हालों (फागुन चैत्र, बैशाख, जैष्ठ)। चौमासा के चार महीने बरसात के होते हैं। स्यालो याने ठण्ड के दिन या महीने, उन्हालों याने गर्मी के महीने। इन्हीं चौमासा, स्याला, उन्हाला का भी लोक गीतों में सुन्दर चित्रण किया गया है।

घर रहो घर रहो जी अब को चौमासो मारूजी घर रहो जी
घर रहो नणदीरा वीर अब को चौमासो मारूजी घर रहो जी
रहो तो राँधा खिचड़ी जी जाओ तो नख छोलियों भात
मारूजी जाओ तो नख छोलियों भात
घर रहो घर रहो जी अब को चौमासो मारूजी घर रहो जी
रहो तो ओड़ा चन्दड़ी जाओ तो दखणी रो चीर
मारूजी जाओ तो दखणी रो चीर
घर रहो घर रहो जी अब को चौमासो मारूजी घर रहो जी
रहो तो संजा सिण गार जाओं तो रवा उदास
मारूजी जाओ तो रवा उदास
घर रहो घर रहो अब को चौमासो मारूजी घर रहो जी

हे प्रियतम! इस बरसात के मौसम में तो घर ही रह जाओ। परदेश नौकरी पर मत जाओ। यदि आप रहेंगे तो मैं खिचड़ी बनाकर खिलाऊँगी, यदि तुम्हें जाने की जल्दी है तो नाखूनों से तराशे गये चावल बनाकर खिला दूँगी। आप घर पर रहेंगे तो मैं सुन्दर साड़ी पहनूँगी और आप चले जाओगे तो दक्षिण की साड़ी पहनूँगी। हे प्रियतम! आप रहेंगे तो मैं सोलह शृँगार करूँगी और आप चले जायेंगे तो एकदम उदास पड़ी रहूँगी।

इस नायिका को देखिये इसके लिए काले बादल कितने बैरी लग रहे हैं, जो अपने प्रियतम परदेशी की बाट जोह रही है।

झुकी आया बादल काला पिया जी परदेश गया
सुरज का बैरी बादला जल का वैरी जम्मांव
मारा वैरी हो सायबा
नहीं हो संदेशों पठाय
झुकी आया बादल काला पिया जी परदेश गया

हउतो पणघट पर रोवती जोउ पिया की वाट
देश परायो भुमि बिराणी नहीं मिल जाण
पहिचाण
झुकी आया बादल काल पिया जी परदेश गया
सासुजी घर में आकरी नणद दिसे गालऽ
देवर करसे म्हारी चुगली म्हारो काई हुसे हाल
झुकी आया बादल काला पिया जी परदेश गया
जल बिना जसी तलफ माछली तलफ-तलफ मरी जाय
असो तलफ म्हारो जीवड़ो नहीं खबर कोई आवऽ
झुकी आया बादल काला पिया जी परदेश गया

काले-काले डरावने बादल उतर आये हैं। मेरे प्रियतम परदेश में है। सूरज भी बैरी की तरह तपन दे रहा है। पानी भी नहीं बरस रहा है। ऐसे लगता है कि पानी भी यमराज की तरह जम गया है। मेरे स्वामी ने न तो चिट्ठी भेजी है न कोई सन्देश भेजा है। मैं पनघट पर जाकर रोती हूँ, पनघट पर बैठकर परदेशी प्रियतम का रास्ता देखती हूँ। मेरे लिए तो मेरी ससुराल पराया देश ही है। न कोई जान-पहचान है न कोई सखी-सहेली है। जिससे दो बातें करके मन को हल्का कर लूँ। मेरी सासुजी का स्वभाव बहुत कड़क है। मेरी ननद गालियाँ देने से भी नहीं चूकती। देवर मेरा पक्का चुगलखोर है। ऐसे में मेरा क्या हाल होता होगा। जैसे जल के बिना मछली तड़फती है। तड़फ-तड़फ कर मर जाती है। इस प्रकार मेरा जीव (मन भी) तड़फ रहा है। लेकिन अभी तक मेरे स्वामी का सन्देश नहीं आया है। काले-काले डरावने बादलों से मुझे भय लगने लगा है।

कलगी-तुर्रा शैली में बद्ध रचना, जिसमें चौमासा के चार महीनों का सुन्दर वर्णन किया गया है।

गोरी महिनो असाड़ को दल बादल चले चारी देश का
की हुकुम चाकर इन्द्र का, कि रूम झुम बरसे
मोरा पिया बिन जीव तरसे
जंगल में हो रही हरियाली चमक रही बिजली बादल मऽ
इन्द्र महाराज खड़ा दल मऽ
सजनी दूसरा महिना सावन का गोरी महिना सावन का
मनसुबा सब सहेलिन का, की विचार करती
कोई करती झुला न का
झुला नाखुरे साजना पिया संग झुलु मेरी जान
हाथ मऽ फूल गुलाब ना
कई फूल पड़िया रसता मऽ
सजनी तिसरो महिनो गोरी महिनो भादौ का
पुर चड़ीयों नदियन मऽ
काय से उतरू मेरी जान
काय से उतरू मेरी जान
म्हारा पिया की खबरा पुछु या बैरन रसता मऽ
चमक रही बिजली बादल मऽ
सजनी चौथा महिना कुँवार का
धान पाक्या सभी जनमत का
मेरी जान काल घर कयती कोई दुशमन जली बली जाय
सरद गई कलंगी पाणी मऽ
चमक रही बिजली बादल मऽ

प्रियतम परदेश में है। पिया की प्रतीक्षा कर रही है कि परदेश से प्रियतम कब आयेंगे? हे प्रिय! पहला महीना आषाढ़ का है। चारों ओर से बादल इकट्ठा हो गये हैं। राजा इन्द्र के आदेश का पालन करने हेतु रिमझिन-रिमझिम पानी बरस रहा है। ऐसे पानी की बौछारों में गोरी का मन अपने सजन के लिए तरस रहा है।

पानी बरसने से जंगल में हरियाली छा गयी है। बादलों में बिजलियाँ चमक रही हैं। मानो साक्षात् इन्द्र का दल आकर खड़ा हो गया है। हे प्रिय! तुम्हारे विरह को सहन करते-करते दूसरा महीना सावन का आ गया है। सब सहेलियाँ इकट्ठा होकर विचार-विमर्श कर रही हैं। चलो झूला झूलें, यदि आप यहाँ होते तो मैं भी आपके साथ झूले पर झूलती। किसी के हाथों में गुलाब का फूल था, जो झूला झूलते हुए छिटक कर हाथों से रास्ते में गिर पड़ा है। आपकी राह देखते-देखते तीसरा महीना भादव का आ गया है। नदियों में पानी भरपूर हो गया है। और नदियों में बाढ़ आ गयी हैं। ऐसे में मैं किससे सन्देश पुछूँ, मुझे तो भय लग रहा है कि कहीं आप मुझसे मिलने तो नहीं आ रहे हो। नदी को कैसे पार करोगे? ये बैरन नदी भी मेरी सौत हो गई हैं, जो आपका रास्ता रोक रही है। बादलों में बिजलियाँ चमचमा रही हैं।

हे साजन! आपका रास्ता देखते-देखते तीन माह गुजर

गये। चौथा महीना कुँवार का आ गया है। सभी प्रकार की इस मास में पकने वाली फसलें पक गई हैं। जनमानस खुश है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे काल (मृत्यु) ने घेर लिया है। दुश्मन की तरह जल भुन गई हूँ। आपका रास्ता देखते-देखते थक गई हूँ।

सावन में हर स्त्री को पीहर जाने की चाहत होती है। जब मायके जाने की बात कहती है तो पति मौन हो उठता है। याने अबोला ले लिया जाता है। कलगी-तुर्रा शैली निबद्ध गीत देखिए।

पिया दुई दिन पियर जावा न मुख सी बोलो
पातलिया क्यो लियो जी अबोलो
एक बारा बरस सी नाँदी रहीं हेरे थारा अगणाऽ
मक भेजो हो महिनो तो आयो सरावणऽ
मकऽ लई देवो जी अन्दना फुन्दना
हम जावा झुलसा जी वीरा घर झुलणा
मैदी मऽ रंगीया दुई हाथ हिडोलो गावा
म्हारा रंग मऽ भरीया दुई हाथ कुणक बतावा
तुम करो महारा सी प्यास प्रेम रस मिलो
पातलिया क्यों लियो जी आबोलो
पातलिया क्यों लियो जी आबोलो
चवरी का फैरा फिर बन्धानी थारा पदरऽ
अलबेला तुन नहीं रे जाणी रे म्हारा कदरऽ
कोयल का भाग कैरी लूम रही।
काहैं का कारण सखी हो बाग सौ फुल्यो
काहैं का कारण कलियाँ खिल रही
माली का कारण सखी बाई बाग सौ फुल्यो
देव का कारण कलिया खिल रही
काहैं का कारण सखीबाईय चुडीली सो पेरयो
काहैं का कारण चूनर महग हैं।
स्वामी का भाग सखीबाई चुड़ीलो सो पेरयो
वीरा जी का कारण चूनर महग है।
काहैं का कारण सखी हो पुत्र जलमीयो
काहैं का कारण दियो अवतार जी
बहुवर भाग सखीहो पुत्र जलमीयो
साजन का भाग दियो अवतार जी

किस कारण से सखी पानी बरसा है और किस कारण से दूब लहलहा रही है? धरती के कारण सखी पानी बरसा है और गौ के भाग्य से दूब लहलहा रही है। किस कारण से सखी आम बौरा है और किस कारण केरी झूल रही है? तोते के कारण आम बौरा और कोयल के भाग्य से केरी झूल रही है? किस कारण सखी बाग फूला है और किस कारण से कलियाँ खिल रही हैं? माली के कारण से हे सखी बाग फुला रही है। किस कारण से सखी तुम चुड़ीला पहनी हो और किस कारण से चूनर गहमहा रही हैं?

नायिका कहने लगती है कि तुम मुझसे प्यार करो, प्रेम से सराबोर होकर मिलो, आज आपने मौन व्रत क्यों ले लिया है। अग्नि को साक्षी मानते हुए लग्न के समय मैं तुम्हारे हाथ बँधी हूँ। लेकिन प्रिय आज तक भी तुमने मुझे नहीं पहचाना। पिताजी ने तुम्हारे साथ बिठा दिया था। दस पन्द्रह ही मेहमान बुलाये, दहेज दिया और पान सुपारी भी बाँटी थी। इसलिए कि मेरे सगे-सम्बन्धियों में तुम्हारी पहचान रहेगी। मेरा सर्वस्व तुम्हारे हाथों में है। इस बात को याद दिलाते हुए वह पुनः विनती करती है कि तुम मुझसे प्यार करो अपने प्रेम से सराबोर कर दो, मैं मायके जाना चाहती हूँ। इस पर आपने यह मौन क्यों ले लिया है?

भादों के महीने में गाँव की गंगा में बाढ़ आयेगी। उन दिनों वहाँ हम सखियों के साथ जल क्रीड़ा करेंगे। छोटी सी उमर की न जाने कितनी पूजा-अराधना के पश्चात् मैंने तुम्हें पाया है। पंचमी, भ्रातृ द्वितीया व हरतालिका जैसे कठिन उपवास भी किये हैं। मैं तुम्हारे पल्ले बंधी हूँ। तुम्हारे पर बड़ा दायित्व है। लेकिन तुममें तो अभी अल्हड़पन ही भरा हुआ है। अतएव हे प्रिये! तुम अपना पुराना ढंग छोड़ दो, मुझे प्यार करो, मौन व्रत क्यों ले लिया है? कुँवार के महीने में ही आ जाना, हम श्राद्ध-पक्ष के दिनों में अपने पूर्वजों की स्मृति में श्रद्धा का अर्घ्य देंगे। लेकिन गाड़ी लेकर चुपके से ही आना, मेरा रूप देखकर शत्रु जल उठते है? अतएव हे प्रिये! तुम मुझसे प्यार करो, मैं मायके जाना चाहती हूँ। आज आपने मौन क्यों ले लिया है?

काहै का कारण सखी मेउलो से वरस्यो
काहै का कारण दुब लह लहै

धरती का कारण सखी बाई मेउलो सो वरस्यो
गऊवा का कारण दूब लह लहैं
काहैं का कारण सखिहो अम्बो सौ मवरीयो
काहैं का कारण कैरी लूम रही?
सोगीत कारण सखी बाई, अम्बो सो मवरीयो
पिताजी न पंगत दिवी बठाड़ी दी सदरऽ
छन्दगाल्या, जी निवतार आणा दस पन्दरऽ
एक दीयो दायजो बट सुपारी पानऽ
म्हारा हितु भाई म थारी रहैंसे पहिचाण
तुम करो म्हारा सी प्रेम रस मीलो
पातलिया क्यों लियो जी आज अबोलो
लाग्यो भादो पक्ष उजालई गंगा चढ़ी पुर
हम न्हावा सखी न का संग खोब भरपूर
थारा पदर बन्धाणी तुम छे बड़ा अडभंग
अलबेला जी तुम पैला छाड़ी देवा ढंग
एक ऋषि पंचमी भाई बीज हरतालई
हउ कसी रहू रे उपास उमर म्हारी बालई
तुम रो म्हारा सी प्यार प्रेम रस मीलो
पातलिया क्यों लियो जी आज अबोलो
एक कुंवार महिन आई जाओ घर उपर
छन्द गालिया जली पित्रु दी नाखंला घुपऽ
गाड़ी पर बठी न आई जाजो गुप चुपऽ
दुशमन भी देखी न वलई जाय म्हारो रूपऽ
तुम करो म्हारा सी प्रेम रस मीलो
पातलिया क्यों लियो जी आज अबोलो

पत्नी द्वारा सावन में अपने माता-पिता के यहाँ जाने की बात सुनने पर जब उसका पति मौन हो उठता है, तो स्त्री कहती है- बारह वर्षों से मैं तुम्हारे यहाँ की सारी आज्ञाओं को शिरोधार्य किये आ रही हूँ। अब सावन आया है, इन दिनों तो मुझे अपने मायके भेज दो। मुझे भुजाओं में बाँधने और चोटी गूँथने के लिए फुंदे ला दो। अपने भाई के यहाँ जाकर हम झूला झूलेंगे और हाथों में मेहंदी लगाकर हिंडोला (झूले के गीत) गायेंगे, लेकिन इन रंग भरे हाथों को वहाँ कौन देखेगा? प्रियतम तो यही रहेंगे, यह सोचते ही व्यग्र हो जाती है।

सन्दर्भ

निमाड़ी का समग्र राम नारायण उपाध्याय निमाड़ी और उसका साहित्य (डॉ. कृष्णपाल हंस)

लोकगीतों में वर्षा

डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'

ग्रीष्म के प्रचंड आतप से झुलसती धरा पावसी झड़ी से उल्लसित हो उठती है। गगन में घहराते बादल उमड़-घुमड़ जब झूम-झूम बरसने लगते हैं तो बड़े सुहावने लगते हैं और वनस्पतियों की सृष्टि के कारण बनते हैं। शीतल बयार के झोंके तन-मन को आह्लादित कर जाते हैं। पर्वत, खेत-खलिहान, मैदान जहाँ तक दृष्टि जाती है, प्रकृति धानी परिधान में सुसज्जित दिखाई पड़ती है। नदी-नाले उमड़ पड़ते हैं। ऐसे मनभावने, सुखद, सुहावने, मौसम में जब कोई प्रेमी, प्राण प्रिय पति परदेश गमन की तैयारी करे तो प्रिया को ठेस लगना स्वाभाविक ही है। इस तथ्य को लोक गायक इस तरह व्यक्त करता है-

संपवा छोड़ेला संप केंचुली हो रामा
गंगा छोड़ेली करार
पियावा छोड़ेला घर आपन हो
घरे रहु ननदी के भाय

साँप केंचुल छोड़ रहा है। बढ़िआई गंगा करार छोड़ रही हैं और मेरे प्रिय ऐसे कठिन समय में घर त्याग परदेश की तैयारी कर रहे हैं। हे ननद के प्रिय भाई! कम से कम इस बार तो सावन में घर रहो।

अब की सवनवा तू मत जा बिदेसवा
घरे रहु ननदी के भाय।

ऐसी ही अभिव्यक्ति कविवर बिहारी ने इस दोहे में व्यक्त की है-

भामा बामा कामिनी कहि बोलो प्राणेश।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत विदेश।

बरसात झमाझम हो रही है। पवन के झकोरे चल रहे हैं। संकेत से प्रिय अपनी प्रिया को बुला रहा है। प्रिया कहती है–

बूंदन भींजे हमरी सारी
कैसे आऊँ बलमा
एक तो मेह झमाझम बरसे
दूजे पवन झकोरे
आऊँ तो भींजे सुघर चुनरिया
नाहीं त छूटे सनेह

उसकी सास समझाते हुए कहती है–

नाहीं डर बहुअरि भींजे क चुनरिया
डर हौ छूटे क सनेह
सनेह से चुनरी होइहैं बहुअरि
चुनरी से नाहीं सनेह।

हे प्रिय! वर्षा की बूँदों से मेरी सुंदर साड़ी भींग कर खराब हो जायेगी। नहीं आने पर स्नेह–सम्बन्ध में दरार पड़ने की संभावना है। असमंजस में हूँ क्या करूँ?

'हे बहू! चूनर भींगने का क्या भय। डर तो प्रेम छूटने का है। चूनर से स्नेह नहीं मिलता। स्नेह बना रहने से चूनर तो मिलती ही रहती है।'

राधा–कृष्ण को आलम्बन बनाकर लोक गीतकारों ने सामान्य जन–जीवन के लोकरंजन चित्र खींचे हैं। यहाँ राधा–कृष्ण सामान्य नर–नारी हैं। सावन में झूले का एक दृश्य देखिए–

झूला पड़ा कदम की डारी
झूलें कृष्ण मुरारी ना
कौन काठ का बना हिंडोला
का की लागे डोरी ना
चनन काठ का बना हिंडोला
रेशम लागे डोरी ना
के हो झूले के हो झुलावे
के हो देवे तारी ना
राधा झूलें कृष्ण झुलावें
सखियाँ देवें तारी ना।

सावन में मेहंदी से शृँगार करना सामान्य सी बात है। प्रस्तुत गीत देखिए, इसमें नारी–भावना की सहज अभिव्यक्ति है–

पिया मेहंदी लिआय दा मोती झील से
जाय के साइकिल से ना
जाके मेहंदी लिआवा
छोटी ननदी से पिसआवा
अपने हाथ से लगावा कांटा कील से

पत्थर पर घिसने की मसक्कत छोटी ननद ही करे। यहाँ ननद के प्रति भाभी का परम्परागत व्यंग्यात्मक भाव परिलक्षित हो रहा है और प्रिय के हाथों से ही मेहंदी रचाने की भावना उसके हृदय में पल्लवित–पुष्पित प्रेम की।

बादल किधर से और अंधेरा किधर से आता है। इस लोकगीत से व्यंजित होता है–

कहंवा से आवै रामा कारी हो बदरिया
कहंवा से आवै अंधियरिया ना
पूरबै से आवै रामा कारी हो बदरिया
पछिमैं से आवै अंधियरिया ना।

पूर्व से बादल आते हैं तो पश्चिम से अंधेरा घिरता आता है।

बरसात में सबके प्रिय अपने घर–आँगन में भींग रहे हैं। एक मेरे ही प्रिय ऐसे हैं, जो परदेश में भींग रहे हैं। बरसात का मजा तो अपने घर में प्रिय के साथ–साथ भींगने में है–

लाये न कोई सनेश
बदरिया बैरिन हो
सबके पिया भींगे घर–आँगन
मोर पिया भींगे परदेश
बदरिया बैरिन हो,

बदरी आई पर प्रिय के संदेश के साथ नहीं आई। फिर उसका आना बैर भाव निभाना है। जब महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का यक्ष बादलों से अपनी प्रिया के पास संदेश भेज सकता है और महादेवी वर्मा आगंतुक 'नव घन' से पूछ सकती है-'लाये कौन संदेश नये घन' तो लोकगीत उद्‌गाता की नायिका बदरी से प्रिय के संदेश की कामना तो कर ही सकती है।

एक विवाहित सुंदरी की ग्वाले से कुछ ऐसी प्रीत लगी कि उसने पति के साथ ससुराल जाने से ही मना कर दिया-

नई-नई प्रीत लगल अहिरा से
हम गवनवा नाहीं जाब
अहिरा खिवावे रबड़ी मलइया
तू का खियइबा बेइमान
अहिरा खिवावै पूड़ी-मिठइया
तू का खियइबा बेइमान
हम गवनवा नाहीं जाब

पत्नी कजली खेलने मायके जाना चाहती है पर पति की अस्वीकृति के कारण वह खिन्न होकर कहती है-

कजरी खेलन नइहर जाब
सुन ला मोर बलमू
लेला लेला आपन गहना
नाहीं मानब तोहार कहना
कहीं क हउवा तू नवाब
सुन ला मोर बलमू

कजरी खेलने मैं मायके जाऊँगी ही। वस्त्राभूषण आदि सामग्री, जिन्हें आपने उपहार में दिया है, भले ही वापस ले लो। नवाब तो हैं नहीं कि तुम्हारी हर बात मानी जाये।

प्रस्तुत लोक गीत में नारी-हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है। वर्षा ऋतु आ गई पर प्रिय अभी तक नहीं आये-

आइ गइल बरसात रे
पिया अजहूं न अइले
तड़पे बिजुरी गरजे बादर
रहि रहि जियरा डेरात रे
पिया अजहूं न अइले
छप्पर छानी चूवे पलानी
कइसे कटी दिन रात रे
पिया अजहूं न अइले

ऐसी ही भावना व्यक्त करता हुआ यह लोकगीत भी ध्यातव्य है-

सइयां भइले गुलरी क फूल
छोटी ननदी
घिर-घिर आवै कारी बदरी
जियरा तड़पे चमके बिजुरी
सूनी सेजरिया याद सतावे
चूभे जइसे तिरसूल छोटी ननदी

और प्रिय से आग्रह करती प्रिया-

सइयां तोहें नइहरे बोलइबे
अबकी सावन में
अमवा की डारी झुलुवा झुलइबे
अब की सावन में
झिमिर झिमिर बुनिया पड़े जब
तब तोहे कजरी सुनइबे
अब की सावन में।

लोक गीत सहज भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होते हैं। वे हृदय की आह से निकलते हैं, इसलिए मर्मस्पर्शी होते हैं। लोकगीतों में जो रस है, भाव है, अनुभूति है, सरलता है, तन्मयता है, भावुकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अमान सिंह बुन्देला और प्राणसिंह धँधेरे कौ राछरौ

डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

'राछरौ' का कोषगत अर्थ ऐसा ग्राम गीत है जिसमें वीरगाथाएँ गायी जाती हैं। इस प्रकार 'राछरे' लोक कथात्मक गीत काव्य हैं। इनमें कोई न कोई लोक गाथा निहित रहती है। बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में इस प्रकार के कुछ 'राछरे' गाए जाते रहे हैं, इनमें शौर्य, शृँगार और करुणा की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। 'अमानसिंह कौ राछरौ, प्राण धँधेरे को राछरौ, बाणासुर कौ राछरौ, चन्द्रावल कौ राछरौ, मथुरावली कौ राछरौ तथा दुर्गा कौ राछरौ बुन्देलखण्ड के लोक गायकों द्वारा गए जाते रहे हैं।'

'राछरे' प्राय: वर्षा ऋतु में सावन के महीने में और क्वाँर में अधिक गाए जाते हैं। इस कारण इन्हें ऋतुगीत भी कहा गया है। सावन में जब चारों ओर हरियाली हो जाती है, पेड़ों की डालियों पर झूले गिर जाते हैं, तब सहेलियाँ झूला झूलती हुई ऐसे ही गीत गातीं हैं, जिनमें किसी की बहिन ससुराल में है, माँ उसे लिवा लाने के लिए उसके भाई को भेजना चाहती है और फिर एक कथानक बन जाता है। बुन्देलखण्ड में गाँवों की वृद्धा स्त्रियाँ इन 'राछरों' को गाती हैं और अगली पीढ़ी में इन्हें सुरक्षित कर देती हैं।

'राछरे' जन कंठ में ही सुरक्षित रहें। इनका लिखित या प्रकाशित रूप देखने में नहीं आया। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कंठ तक पहुँचते रहने से इनकी भाषा का मूल रूप सुरक्षित नहीं रह पाया। घटनाक्रम में परिवर्तन हुआ। शब्दावली में हेर-फेर हुआ। इसके अतिरिक्त बुन्देली भाषी क्षेत्रों के बोली गत लहजे का भी प्रभाव इन पर हुआ।

'अमानसिंह बुन्देला कौ राछरौ' ऐतिहासिक है। यह दो राछरो का संयुक्त रूप है। अमानसिंह बुन्देला तथा प्राण धँधेरे दोनों के राछरे की कथा एक ही है। कथा इस प्रकार है-

पन्ना के महाराजा छत्रसाल बुन्देला के पुत्र हिरदेशाह को पन्ना का राज्य प्राप्त हुआ था। हिरदेशाह के पुत्र सभासिंह के तीन पुत्र हिन्दूपतसिंह, अमानसिंह, खेतसिंह तथा एक पुत्री सुभद्रा थी। सभासिंह की पुत्री सुभद्रा का विवाह अकोड़ी-धगुंवाँ के प्राणसिंह धँधेरे के साथ हुआ था। सावन के महीने में भुँजरियों का त्यौहार निकट आने पर अमानसिंह ने सुभद्रा को नैहर बुलवाने के लिए दिन निश्चित करने नाई को अकोड़ी भेजा। सुभद्रा की गोद में नवजात शिशु होने तथा बरसात के कठिनाई भरे मौसम का बहाना लेकर प्राणसिंह ने कार्तिक मास में लिवा ले जाने की बात कहकर नाई को वापिस कर दिया। इस पर अमानसिंह अपने सहयोगियों के साथ बहिन को लिवा लाने के इरादे से अकोड़ी के लिए चल दिए। अकोड़ी में अमानसिंह व प्राणसिंह के बीच चौपड़ का खेल हुआ। चौपड़ में

अमानसिंह हार गए और उनके बहनोई ने मजाक में उनसे कह दिया कि तुम तो बाँदी के जाए हो। इसी बात पर क्रोधित होकर अमानसिंह ने अपने बहनोई प्राणसिंह का सिर काट लिया। लोक गायक इस घटना को दो तरह से गाते हैं। एक वर्ग 'राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ' ध्रुव पंक्ति लगाकर गाता है और दूसरे वर्ग के लोकगायक 'प्राण धँधेरे कौ राछरौ' ध्रुव पंक्ति लगाकर गाते हैं। वस्तुत: ये एक ही राछरे के दो तरह के प्रस्तुतिकरण हैं।

राछरों में बुन्दली लोक संस्कृति का स्वरूप सुरक्षित है। बुन्देलखण्ड के तीज-त्यौहार, रीति-व्यवहार तथा लोकोत्सवों के अवसर पर लोक जीवन की यथार्थ झाँकी देखने को मिलती है। भुँजरियों का त्यौहार निकट आने पर अमानसिंह से कहा गया कि-

साँउन आए हैं नियरे अमन जू
तिहारी बहिन परदेस। राजा असल बुन्देला कौ राछरौ।

तथा

सबकी बहिनियाँ झूलें हिंडोरा
तुमारी बहिन बिसूरै परदेश
राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ।

बुन्देलखण्ड के राज घरानों में बहिनों-बेटियों की ससुराल में नाई-बारी को भेजने की परम्परा थी। अमानसिंह ने अपनी बहिन की ससुराल में पहले नाई को भेजा-

अबकीं पठै दो नउआ बरिआ
फिरकूँ में हम चले जाँय।

इतर जाति के लोगों के प्रति सम्मानसूचक संबोधनों का व्यवहार बुन्देलखण्ड में सदा से रहा है। अकोड़ी में अमानसिंह की बहिन सुभद्रा नाई को वीरन कहती है तथा मायके लिवा ले जाने को कहती है-

ठाड़ी बहिन जा अर्ज करत है
हमें लुवा लअें जाव
जो तुम बिरन लौट घर जै हो
हमें लुवा लअें जाव

नाई के वापिस आ जाने के पश्चात् अमानसिंह अकोड़ी जाने की तैयारी करते हैं। अमानसिंह के घोड़े की सजावट का वर्णन इस प्रकार है-

पेड़ रचनियाँ की मेहंदी मँगाकें सुम्म रहे हैं रचाय
चारऊ सुम्मन माँदी रचदई पूँछ करी सरबोर
बार-बार में मोंती गो दए किसवारन में हीरालाल
पवन पुतरियाँ धरीं पुट्ठिन पै कलगी धरी है लिलार

बुन्देलखण्ड में पुरुष वेशभूषा का अनोखा स्वरूप रहा है। मध्यकाल के वर्गभेद वाले समाज में वेशभूषा का भी अंतर देखने को मिलता है। विरतिया की वेशभूषा तथा राजा अमानसिंह की वेशभूषा के वर्णन में यह अंतर देखा जा सकता है-

धोती पीताम्बर पैर विरतिया कुरता बंगालीकाट
सिर पै साफा बांध विरतिया कंधे पै साफी डार

×××

डार बकुचिया चले विरतिया धर लई अकोड़ी की गैल

तथा

खौर लगा कैं जब लाला नें धोती पितम्मर पैर
पैरी कतइया है नारंगी सरई मैमदाबाद
बकतर पैहर लए उन हर नें पिछुआं दई गैंड़की ढाल
सात तवा दै कैं छाती पै सेल गुना न होय
पाग पठौनी हन हन बांधी रूमालन सें पोंछ रये हाथ

राछरे के संक्षिप्त से कथानक को गति देने तथा रोचक बनाने के लिए अपशकुनों और मार्ग बाधाओं को भी लोक गायक ने जोड़ा है-

'छींकत भए हैं सवार'
'रीती मिलीं पनिहार'
'करिया ने काटी गैल'
'हिरनी नै काटी गैल'

आदि उपरोक्त अपशकुनों के अतिरिक्त मार्ग बाधा के रूप

में चढ़ी नदी का प्रसंग इस राछरे में इस प्रकार है–

जब रा अमन जू पौंचे नदी पै पनियाँ पंथ दिखाय
अगर सहर के मलहा बुला कें जर बर नाव डराय
नाव डरा कें कड़े अमन जू पौंचे अकोड़ी जाय

इस राछरे में स्थान संकेत की परम्परागत शैली का व्यवहार हुआ है। अमानसिंह अकोड़ी में पहुँचकर जब अपने बहिनोई का मकान पूछते हैं तो उन्हें इस प्रकार संकेत किया जाता है–

'ऊँची अटरियाँ लाल किबरियाँ सूरज सामूँ द्वार'

अमानसिंह की बहिन सुभद्रा भी ऊँचे स्थान पर चढ़कर देख रही हैं और अपने भाई के आगमन की संभावना करती हैं–

ऊँचे चढ़-चढ़ देखै बहिनिया जे दल काँ सैं आए
ऐसे घुड़ला हमें जो दीसें जैसें विरन के घुड़ला होंय

अंत में वह कारुणिक प्रसंग है जिसके लिए इस राछरे की सृष्टि की गई है। जब अमानसिंह अपने बहनोई का सिर काटने को उद्यत हुए तब बहिन सुभद्रा ने बहुत अनुनय विनय की–

हांत पकर लऔ सुनकें बहिन नें सुनौ विरन मेरी बात
कौन पै पैरें हरी पीरी चुरियां कौन पै तेल फुलेल

स्त्री का सर्वस्व तो पति ही माना जाता है। राछरे में अमानसिंह की बहिन का उक्त कथन कितना करुणापूर्ण है। बहिन ने निवेदन किया– 'भैया आप यह जघन्य कार्य न करें। मेरे हाथों में ये हरी-पीली चूड़ियाँ किसके कारण हैं?' मेरे बालों में तेल फुलेल और माँग का सिन्दूर किसके कारण है?

अमानसिंह ने बहिन की दीनता भरी प्रार्थना को भी न माना तब बहिन ने अपने पुत्र को अमानसिंह की गोद में डालते हुए कहा–

ओली में धर दऔ वारे भनैजा कौं
जाकौ मूंड काट लेओ
इतनी सुनकें कहत अमन जू
सुनौ बहिन मेरी बात
जाकौ बैर हम तइसैं भजाहैं सूरवीरन के काम

और जब अमानसिंह ने अपने बहनोई का सिर काट ही लिया तो उसकी बहिन सुभद्रा बेहद दु:खी और क्रोधित होकर उसे चुनौती देने लगी–

'जैसें रांड़ तुमनें हमकों करी हैं तैसी वा री हो जाय'

बहनाई की हत्या के पश्चात् अमानसिंह पन्ना के लिए रवाना हो गए। सुभद्रा ने योद्धा पुरुष के वेश में घोड़े पर सवार होकर पन्ना पहुँच पाने के पूर्व ही अमानसिंह को ललकारा। सुभद्रा ने तलवार का वार करने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो उसके हाथ में चूड़ियाँ देखकर अमानसिंह सहसा शिथिल हो गए। इतने में ही सुभद्रा ने अमानसिंह का सिर काट लिया और अपने पति की हत्या का बदला ले लिया।

बुन्देलखण्ड के इतिहास में यह घटना अलग तरह से दर्ज है। इतिहास के अनुसार अमानसिंह को उनके भाई हिन्दूपत ने मरवाया था, वे अमानसिंह की योग्यता व लोकप्रियता से ईर्ष्या करते थे।

पन्ना नरेश छत्रसाल बुन्देला की तीसरी पीढ़ी में सभासिंह के तीन पुत्र थे– 'हिन्दूपत, अमानसिंह तथा खेत सिंह। इनमें से अमानसिंह योग्य तथा प्रतिभाशाली थे। इस कारण उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया गया था। परन्तु राज्य के लोभ में हिन्दूपत ने अमानसिंह की हत्या करवा दी थी। अमानसिंह जनप्रिय थे। इस कारण हिन्दूपत के इस कृत्य की जनता ने भारी निन्दा की थी। राछरे में उल्लेख आया है कि अमानसिंह की हत्या उनकी बहिन सुभद्रा ने अपने पति की हत्या के बदले के रूप में की थी। राछरे जनकंठ में सुरक्षित रहे और इतिहास एक लिखित प्रामाणिक साक्ष्य है। बुन्देलखण्ड के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि हिन्दूपत ने अमानसिंह की हत्या करवाई। पन्ना दरबार के कुछ कवियों ने भी अमानसिंह की हत्या की निंदा की थी तथा इस संबंध में काव्य रचना भी की थी।'

पन्ना दरबार में उस समय चार दरबारी कवि थे– राम, मल्ल,

बोधा तथा नाथ। इन चारों कवियों ने अमानसिंह की हत्या की भर्त्सना की थी तथा कवित्त लिखे थे। नाथ कवि का लिखा हुआ एक कवित्त निम्नानुसार है–

सूरन कौ सत खोयौ व्रत खोयौ वीरन कौ।
कुल कौ मयंक खोयौ, खोई मेंड़ दान की।
हिन्द कौ जिहाज बोरौ, कामना कौ कर तोड़ौ।
राजन कौ खंभ फोड़ौ, आशा थी जहान की॥
शत्रुन कौ साल टारौ, मेंटी बाढ़ बान की।
ऐसौ लघु मतिवारौ, स्यंदन कौ संग मारौ।
कहें कवि नाथ अनाथ भयौ हिन्दूपत,
मार कें अमान शान खोई हिन्दुआन की॥

सत्य जो कुछ भी रहा हो पर बुन्देलखण्ड में प्रचलित राछरे अपने लोक विश्वास, लोक रंजन एवं लोक संस्कृति के प्रदेय के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ये लोकगीत विधा के एक अनूठे रूप को भी लिए हैं जिसमें शौर्य के साथ करुणा, त्याग तथा शृँगार का समन्वित स्वरूप सुरक्षित है। राछरे मानवीय भावनाओं की मिली-जुली अभिव्यक्ति के लिए सदा चर्चा का विषय रहेंगे।

अमानसिंह बुन्देला और प्राण धँधेरे कौ राछरौ

सदा न तुरइया फूलै अमन जू,
सदा न सावन होय,
राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ॥
साँउन आए हैं नियरे अमन जू,
तिहारी बहिन परदेश।
सबकी बहिनियाँ झूलें हिंडोरा,
त्यांरी बहिन परदेश।
राजा मोरे असल बुन्देला कौ राछरौ॥

हे अमानसिंह! तोरइ हमेशा नहीं फूलती और हमेशा सावन का त्यौहार नहीं रहता है। यह राछरा असल बुन्देला ठाकुर का है। हे अमानसिंह! सावन निकट आ गया है और तुम्हारी बहिन परदेश में है। सबकी बहिनें झूला झूल रही हैं और तुम्हारी बहिन घर में नहीं है। यह राछरा असल बुन्देला ठाकुर का है।

धाऔ रे नउआ, धाऔ रे बरिया।
बहिन के दिन धरि आऔ॥
इतनी सुनकें कहत परोसी।
सुनो अमन मेरी बात॥
नउआ रे बरिया तिनकैं जैं हैं।
जिनके वीरन नहिं होय॥
कहत बुन्देला सुनौ हो परोसी।
जेइ बड़ेन के काम॥
अबकी पठै दो नउआ बरिया।
फिरकूँ में हम चले जाँय॥

राजा अमानसिंह नाऊ और बारी से कहने लगे कि तुम लोग जाओ और बहिन के लिवाने का दिन निश्चित कर आओ। यह सुनकर पड़ोसी कहने लगे कि– हे अमानसिंह! मेरी बात सुनो। नाऊ, बारी तो उनके घर से भेजे जाते हैं जिनके यहाँ लड़की का भाई नहीं होता। तब अमानसिंह बुन्देला ने पड़ोसियों से कहा कि बड़े लोगों का यही काम होता है। अबकी नाऊ, बारी को भेज दो, फिर बाद में मैं चला जाऊँगा।

इतनी सुनके चले बिरतिया,
धनिया सौं कहैं समझाय।
उठौ सुन्दरी भोजन बनाओ,
हम असनान बनाँय॥
जब समझावे परम सुन्दरी,
कौन सौ पर गऔ काम।
हुकुम जो दीन्हों कुँअर बुन्देला,
बहिन के दिन धरि आव॥

अमानसिंह बुन्देला ने बिरतिया को जाने की आज्ञा दे दी। इतना सुनकर बिरतिया, अपने घर आए और अपनी पत्नी से समझाकर कहा। हे सुन्दरी! उठो, भोजन बनाओ, तब तक मैं स्नान कर लूँ। बिरतिया की पत्नी ने पूछा कि ऐसा कौन सा कार्य आ गया है। बिरतिया ने कहा कि कुँअर अमानसिंह बुन्देला का हुक्म है कि बहिन के लिवा लाने का दिन निश्चित कर आओ।

मल मल कैं असनान जो करकैं
तेल फुलेल लगाय।

धोती पीताम्बर पैर बिरतिया
कुरता बंगाली काट॥
सिर पै साफा बांध बिरतिया,
कँधे पे साफी डार।
नाऊ बिरतिया ऐसें बन गए,
जैसें कुँअर अमान॥

बिरतिया ने अच्छी तरह स्नान किया, सुगंधित तेल लगाया, पोशाक में धोती, पीताम्बर, बंगलाकट कुर्त्ता पहिन लिया। सिर पर साफा बाँधा और कँधे पर साफी डाल ली। नाऊ बिरतिया सज धज कर ऐसे तैयार हो गए जैसे कि कुँअर अमानसिंह ही हों।

ल्याय सुन्दरी भोजन परोसो
गंगाजल नीर भराय।
भोजन करबे बैठे बिरतिया
ठाकुर कौं भोग लगाय॥
अंचवन लैंकें बोले बिरतिया
सुनौ सुन्दरी बात।
अरे धना तुम हिममिल रहियो,
हम जात अकोढ़ी देस॥

तब तक बिरतिया की सुन्दरी पत्नी ने भोजन परोस दिया और गंगाजल सदृश निर्मल पानी भरकर रख दिया। भगवान का भोग लगाकर बिरतिया भोजन करने बैठ गए। भोजन के पश्चात् आचमन करके बिरतिया ने अपनी पत्नी से कहा कि हे सुन्दरी स्त्री! तुम मिलजुल कर प्रेम से रहना। मैं अकोढ़ी देश जाता हूँ।

डार बकुचिया चले बिरतिया
धर लई अकोढ़ी की गैल।
इक वन चाले दुज वन चाले
तिज वन पौंचे जाय।
इड़ियन छिड़ियन घूमें बिरतिया
कौन धँधरे की पौर।
ऊँची अटरियाँ लाल किबरियाँ
सूरज सामू दुआर॥
लगी कचैरी कुँअर धंधेरे की
पहरे लगे संगीन।

छोटी सी पोटली बगल में लटकाकर बिरतिया चल पड़े उन्होंने अकोढ़ी का रास्ता पकड़ लिया। बिरतिया एक वन में से निकलकर दूसरे वन में पहुँचे फिर तीसरे वन में जा पहुँचे। अकोढ़ी गाँव की गलियों में बिरतिया फिर रहे हैं। पूछ रहे हैं कि धँधेरे की ड्योढ़ी कौन सी है? गाँव की स्त्रियाँ संकेत करती हैं कि ऊँची अट्टालिकाएँ हैं, जिनमें लाल किबाड़ लगे हैं। पूर्व दिशा की ओर दरवाजा है, बिरतिया ने वहाँ पहुँचकर देखा कि कुँवर प्राणसिंह धँधेरे की कचहरी लगी है तथा सुरक्षा के लिए संगीनी पहरा लगा है।

दूर सें देखे पहरेदार नें,
राजा सें कहे समझाय।
ठाड़ौ मुसाफिर तुमरे द्वार पै
हुकुम देउ फरमाय॥
इतनी सुनकें बोले धँधेरे
हमनौ देउ पौंचाय।
हुकुम जो सुनकें राजा धँधेरे कौ,
पौंच गए राजा के पास॥

पहरेदार ने बिरतिया को दूर से देख लिया और राजा प्राणसिंह धँधेरे को उसके आगमन की सूचना कर दी। पहरेदार ने राजा से समझाकर कहा कि आपके दरवाजे पर कोई यात्री आया है, क्या आज्ञा है? इतना सुनकर धँधेरे ने कहा कि उस मुसाफिर को मेरे पास भेज दिया जाए। राजा धँधेरे की आज्ञा पाकर बिरतिया राजा के पास पहुँच गया।

लगी कचैरी राजा धँधेरे की
गरम भरे दरबार।
दूर से देखे कुँअर धँधेरे नैं,
छाती से लये लगाय॥
सबरे जनन कौं राम रमौआ,
जीजा के छिए दोइ पाँय॥
कुरसिन कुरसिन पै सहजादे
मूढ़न पै बैठे सिरदार।
तान सुरीली उनके खिंच रई
नचरई पतुरियाँ नाच॥

तबला सरंगी और सितारे
हो रए आनंद के ठाट॥

राजा प्राणसिंह धँधेरे की कचहरी लगी है। गरमा गरम दरबार भरा हुआ है। कुँअर धँधेरे ने बिरतिया को दूर से पहचान लिया और अपने हृदय से लगाकर प्यार किया। बिरतिया ने सभी लोगों को राम जुहार की तथा बहनोई धँधेरे के दोनों पैर छुए। धँधेरे की सभा में कुर्सियों पर राजकुमार बैठे थे तथा मूढ़ों के ऊपर सरदार सिपहसालार विराजमान थे। सभा में सुरीला संगीत गाया जा रहा था। नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं। तबला, सारंगी और सितार आदि बजाए जा रहे थे। सब ठाटबाट बड़े आनन्द के थे।

बरोबर बिठाए प्रान धँधेरे नें
पूछैं बिरतिया सें बात।
का कारन तुम आए बिरतिया
बता दो हमें पूरी बात॥
पौंचाए आए कुँअर बुन्देला के
बहिनी के दिन धर देउ।
इतनी सुन कें कहत धँधेरे
सुनो बिरतिया बात।
जाओ बिरतिया भोजन कर लो
तब तुम करौं कछू बात।
हुकम जो दीनों उननें संतरी कों
तुम इनकों लिवा जाउ॥

प्राण धँधेरे ने बिरतिया को बराबरी से बिठाया और बात पूछी कि बिरतिया किस काम से आए हो। मुझे पूरी बात बताओ। बिरतिया ने उत्तर दिया कि मैं कुँअर बुन्देला के द्वारा भेजा हुआ आया हूँ। आप बहिन के लिवा ले जाने का दिन निश्चित कर दीजिए। इतना सुनकर धँधेरे ने कहा कि बिरतिया मेरी बात सुनो। तुम जाकर पहले भोजन कर लो फिर कुछ बात करना। कुँअर धँधेरे ने संतरी को हुक्म दिया कि इन्हें लिवा ले जाओ।

इतनी सुनकें चले बिरतिया
महल में पौंचे जाय।
सोंने के थारन भोजन परोसे
गंगाजल नीर भराय।
भोजन करने बैठे बिरतिया
ठाकुर जी कौ भोग लगाय।
भोजन करकें चले बिरतिया
पौंचे धँधेरे नों जाये॥

इतनी बात सुनकर बिरतिया वहाँ से चल दिए और महल के अन्दर पहुँच गए। सोने के थाल में भोजन परोसा गया तथा गंगाजल समान नीर भरकर दिया गया। भगवान को भोग लगाकर बिरतिया भोजन करने लगे। भोजन करने के बाद बिरतिया धँधेरे के पास पहुँच गए।

पूछें धँधेरे सुनों हो बिरतिया
चित दै सुनों मेरी बात।
गोदी में है गौ छोटौ भनैजा
दिन चौमासे की रात॥
साउन भादों की नदी डरीं हैं
डोला कौन विध जाय॥

धँधेरे बिरतिया से कहने लगे कि मेरी बात ध्यान से सुनो। तुम्हारी बहिन की गोद में छोटा सा भान्जा है। बरसात की रात है। सावन-भादों के महीनों में नदियाँ बाढ़ पर हैं। डोला (पालकी) किस प्रकार जायेगा।

इक दिन रह कें दो दिन रह कें
जीजा जू सें कहें समझाय।
का कैंदें हम कुँअर अमन सें
हमसें कहौ समझाय।
इतनी सुनकें कहें धँधेरे
सुनौ बिरतिया बात।
साउन मास विदा नइं हुइहैं
अइयो कातिक मास॥

एक दिन दो दिन वहाँ रहने के बाद बिरतिया ने जीजा जू से कहा कि मैं कुँअर अमानसिंह से जाकर क्या कहूँ। यह मुझसे समझा कर कहिए। इतना सुनकर धँधेरे ने कहा कि बिरतिया मेरी बात सुनो। सावन के महीने में विदा नहीं होगी। उनसे कहना कि कार्तिक के महीने में आयें।

ठाड़ी बहिन जा अर्ज करत है
हमें लुवा लएँ जाव॥
जो तुम लौट विरन घर जैहौ,
माता कौं का समझाव॥

हमरौ मतौ का लेउ कन्हैया
धनिया कौ मत लै लेउ॥
इतनी सुनकें चले अमन जू
पौंचे धनियाँ के पास॥

बहिन सुभद्रा ने नाऊ बिरतिया से प्रार्थना की कि मुझे भी लिवा ले चलो। यदि तुम खाली लौटकर घर जाओगे तो माता को कैसे समझाओगे?

डार बकुचिया चले बिरतिया
धर लई घर की गैल।
इक वन चाले दुज वन चाले
तिज वन पौचें जाय।
जाय कें पौंचे कुँअर अमन नों
सबसें कहें समझाय॥
गोदी में है गौ बारौ भनैजा
तुमाई बहिन कैंसे आ जाये॥
साउन भादों की नदिया डरी हैं
डोला कौन विध आय॥
साउन मास विदा नई हुइहैं
जइयो कातिक मास॥

बिरतिया अपनी छोटी सी पोटली कंधे पर लटकाकर चल दिया और अपने घर का रास्ता पकड़ लिया। एक वन से निकले, दूसरे में आए और फिर तीसरे वन में जाकर पहुँच गए। बिरतिया कुँअर अमानसिंह के पास पहुँचे और समझाकर बात कहने लगे कि बहिन की गोद में शिशु भान्जा है, आपकी बहिन कैसे आ पाएगी। सावन-भादों की नदियाँ बाढ़ पर हैं, डोला किस प्रकार आयेगा। सावन के महीने में विदा नहीं होगी। अब आप कार्तिक मास में जाना।

इतनी सुनकें कहें अमन जू
सुनौ माता मेरी बात।
अब का करें सुनौ हो माता
हमकों देउ बताय॥
इतनी सुनकें कहे माता जी
सुनौ अमन मेरी बात॥

इतनी बात सुनकर अमानसिंह ने अपनी माता से कहा कि माता जी मेरी बात सुनो। अब मैं क्या करूँ? सो मुझे बतलाओ, अमानसिंह की बात सुनकर माता बोली कि मेरी सलाह क्यों लेते हो अपनी पत्नी से ही पूछ लो। माता की बात सुनकर अमानसिंह अपनी पत्नी के पास पहुँचे।

अब समझावें परम सुन्दरी कों
सुनौ धना मेरी बात॥
सबकी बहिनियाँ खेलें भुजरियाँ
त्यारी ननद परदेस॥
इतनी सुनकें कहत हैं रानी
सुनौ पती मेरी बात॥
नाऊ की बेटी माटी लै आहै
कक्का की भुँजरिया बंधाय॥

अमानसिंह ने अपनी पत्नी को समझाया कि हे सुन्दरी! मेरी बात सुनो। सबकी बहिनें भुँजरियों के खेल खेल रही हैं, तुम्हारी ननद परदेश में है। इतना सुनकर रानी बोली, हे पतिदेव! मेरी बात सुनिए। नाऊ की बेटी मिट्टी ले आयेगी और कक्का की बिटिया भुँजरियाँ बँधाएगी।

इतनी सुनकें कहत अमन जू
सुनो रानी मेरी बात।
कै हम कुल के हीने पर गए
असल बुन्देला के लाल॥
जो हम बुन्देला के जाए हुइ हैं
तौ बहिन कौ ल्याहें लिवाय॥

पत्नी की बात सुनकर अमानसिंह बोले कि रानी मेरी बात सुनो। क्या हम कुल के हीन हो गए हैं? हम तो असली बुन्देला के पुत्र हैं। जो हम बुन्देला की सन्तान होंगे तो अपनी बहिन को लिवाकर लाएँगे।

इतनी कहकें चले अमन जू
माता से कहें समझाय।
कहाँ बँधें मैया अलल बछेरा
कानर टंगी हैं लगाम॥
घुड़सारन बँधे लला अलल बछेरा
खूँटा सें टंगी है लगाम॥
बकसन धरे लाला जीन पलैंचा
सिरहानें टंगे हतयार॥

पत्नी से इतनी बात कहकर अमानसिंह अपनी माता के पास जाकर बोले। हे माता! मेरा घोड़ा कहाँ बँधा है और उसकी लगाम कहाँ पर टँगी हुई है? माता बोली- बेटा-घुड़साल में घोड़ा बँधा है और खूँटे पर लगाम टँगी हुई है। घोड़े की जीन और पलैंचा सन्दूक में रखे हैं तथा हथियार सिरहाने टँगे हुए हैं।

इतनी सुनकें चले अमानसींग
पौचें बछेरा के पास॥
हाथ फेरकें कहें बछेरा सें
सुनो बछेरा बात॥
दूध कटोरन तुमें पिवाऔ
खबाऔ पौनिया घास॥
जो तुम लड़बे कौं चलौ
तो हमसें कहौ तुम बात॥
जो तुमरौ काबू नइं होबै
घरै करौ तुम राज॥

माता की बात सुनकर अमानसिंह घोड़े के पास पहुँचे और उसके ऊपर हाथ फेरकर कहने लगे कि 'बछेरा' मेरी बात सुनो। तुम्हें कटोरों में भर-भरकर दूध पिलाया है और बढ़िया 'पौनिया' घास खिलाई है। यदि तुम लड़ने के लिए चलो तो मुझसे कहो। यदि तुममें सामर्थ्य न हो तो तुम घर पर ही राज करो।

इतनी सुनकें कहत बछेरा
सुनों हो बुन्देला बात॥
क्षत्री के घर में हम रहकें
करें हिया हम राज॥
समरे रहियो मेरी पीठिन पै
समर गहियो हतयार॥
रन में तुमकों ऐसें खिला दें
जैसें गोदी खिलाबे माता लाल॥

अमानसिंह की बात सुनकर घोड़ा बोला कि बुन्देला मेरी बात सुनो। हम क्षत्रियों के घर में रहकर यहाँ राज करने के लिए रहेंगे? आप तो मेरी पीठ पर सम्हल कर बैठे रहना और युद्ध में हथियार ग्रहण करना। मैं युद्धक्षेत्र में तुमको इस प्रकार खिलाऊँगा जैसे माता अपने पुत्र को गोद में खिलाती है।

इतनी सुनकें कुँअर अमन जू
बछेरा रहें हैं सजाय॥
पेड़ रचनिया की मेंदी मँगाई
सुम्म रहे हैं रचाय॥
चारऊ सुम्मन माँदी रच दई
पूँछ करी सरबोर॥
बार-बार में मोती गो दए
किसवारन में हीरा लाल॥
पवन पुतरियाँ धरी पुट्ठन पै
कलंगी धरी है लिलार॥
सवा लाख की कलंगी धर दई
झक झक परै लिलार॥
जीन पलैंचा हन हन बाँधे
खेंच दये हैं तंग॥
अपने बछेरा कों ऐसें सजा दऔ
जैसें माता अपनौ लाल॥

कुँअर अमानसिंह घोड़े को सजाने लगे। रचने वाले पेड़ की मेहंदी मँगवाई और घोड़े के सुम्म (खुर) रचाने लगे। चारों सुम्म मेहंदी से रचा दिए और पूँछ भी रंग में सराबोर कर दी। पूँछ के बालों में मोती गूँथ दिए तथा किसवार (घोड़े की गर्दन के बालों) में हीरा और लाल (कीमती रत्न) पिरो दिए। घोड़े के पुट्ठों पर पवन पुतलियाँ रख दीं तथा मस्तक पर कलंगी लगा दी। घोड़े के मस्तक की कलंगी सवा लाख कीमत की थी। घोड़े का मस्तक जगर-मगर हो रहा था। घोड़े की जीन और पलैंचा कसकर बाँध दिए और तंग खींच दिया। अमानसिंह अपने घोड़े को इस

प्रकार सजा रहे थे। जैसे माता अपने पुत्र का शृँगार करती है।

मलमल कें असनान कराए
चन्दन खौर लगाय॥
खौर लगा कैं जब लाला नें
धोती पीताम्बर पैर॥
पैरी कतइया हैं नारंगी
सुरई मैमदाबाद॥
बखतर पहिर लए उन हर नैं
पिछुआ दई गैंड़ की ढाल॥
सात तवा दैकें छाती पै
सेल गुना ना होय॥
पाग पठौनी हन हन बाँधी
रूमालन सें पोंछ रए हात॥

अमानसिंह बुन्देला ने अच्छी तरह स्नान किया। माथे पर चन्दन की खौर लगाई। धोती पीताम्बर धारण किए। नारंगी रंग की कतइया (लम्बा, ढीला कुर्त्ता) पहनी तथा अहमदाबादी चूड़ीदार पाजामा (सरई) पहन लिया। फिर उस वीर ने बख्तर पहिन लिए। अपनी पीठ पर गैंडे वाली ढाल बाँध ली। अपनी छाती पर लोहे के सात तवा बाँध लिए। जिससे सेल (एक भाले जैसा हथियार) भी न छेद सके। अमानसिंह ने पठौनी (या पठानी) पगड़ी सिर पर कसकर बाँध ली। वे रूमाल से हाथ पोंछ रहे हैं।

अँगना में ठाढ़ी कहें सुन्दरी
पति भोजन कर लेउ॥
अब का भोजन करौं सुंदरी
बहिन लिवा घरै आँय॥
धरम नहीं है जेई सूर कै
अब का तुमाए पास आंय॥
हांत जोर कें कए माता सें
लपक हुए दोऊ पांउ॥
छी दो भगौती तुम माता जी
विजै रहै तरबार॥
इतनी सुनकें कएँ माता जी।
सुनौ अमन जू बात॥
लड़े फिड़े में सार कहा है
तुमरी विजै रहगी तरवार॥
हिल मिल कर कें तुम जीजा जू सों
बहिन लिवा घरै आउ॥

आँगन में खड़ी हुई अमानसिंह की पत्नी कह रही है। पतिदेव भोजन कर लीजिए। अमानसिंह कहने लगे। हे सुन्दरी! अब भोजन क्या करें। अब तो बहिन को लिवाकर घर आऊँगा। शूरवीर का यही धर्म है, अब तुम्हारे पास क्या आऊँ। अमानसिंह ने बढ़कर माता जी के दोनों पैर छुए और हाथ जोड़कर बोले- हे माता! मेरी तलवार को अपने हाथ से छू दो जिससे यह विजयिनी हो जाए। इतना सुनकर माता जी ने अमानसिंह से कहा कि लड़ाई-भिड़ाई में कोई सार नहीं है। तुम्हारी तलवार की विजय सदा होगी। तुम अपने जीजा से हिलमिल कर प्रेमपूर्वक अपनी बहिन को लिवाकर घर आओ।

इतनी सुन कें चले अमन जू
घोरे के पौंचे पास॥
हटकत बरजत घुड़ला सजाए
छींकत भए हैं सवार॥
जबरा अमन जू पौर सें निकरे
रीती मिली पनिहार॥
कैं तेरी फोरों सिर की गगरिया
कै रा बदल घर जांउ।
इतनी सुन कें कए पनिहारी
सुनों हो बुन्देला बात॥
ना मेरी फोरो सिर की गगरिया
ना रा बदल घर जांउ॥
हम तौ कहिएं कुआ की पनिहारिया
हमरौ कौन विचार॥
तुम तौ कहिए कुँअर बुन्देला
हम हैं अबला जात॥

इतना सुनकर अमानसिंह घोड़े के निकट पहुँचे। वर्जित करने पर भी उन्होंने घोड़ा सजाया और जब उस पर सवार हो रहे थे, तब छींक हुई। जब अमानसिंह ड्योढ़ी से बाहर निकले तो रीते घड़े लिए पनिहारिन सामने आ गई। अमानसिंह कहने लगे

कि या तो तेरी सिर की गागर फोड़ दूँ या लौटकर घर जाऊँ। अमानसिंह की बात सुनकर पनिहारिन बोली– हे बुन्देला! मेरी बात सुनिए, न तो मेरी सिर की गागर फोड़ो, न तुम लौटकर घर जाओ। हम तो कुएँ की पनिहारिन कहलाती हैं। हमारा कौन सा विचार है? फिर आप बुन्देलों के कुँअर कहलाते हैं, मैं अबला स्त्री हूँ।

द्वारे सें जब निकरे अमन जू
करिया नें काटी गैल॥
कैं तो मारौ भर कें तुपकिया
कै रा बदल घर जाँउ॥
इतनी सुनकें कहै जो करिया
सुनौ अमन मेरी बात॥
ना मोय मारौ भर कें तुपकिया
ना तौ बदल घर जाँउ॥
हम तौ कहिएँ वनी के राजा
हमरे कौन विचार॥

अमानसिंह जब दरवाजे से बाहर निकले तो एक काला सर्प रास्ता काट गया। अमानसिंह कहने लगे कि तुझे बन्दूक मारकर उड़ा दूँ या लौटकर घर चला जाऊँ। इतनी बात सुनकर काला सर्प बोला कि अमानसिंह मेरी बात सुनो। न तो मुझे बन्दूक भरकर मारो और न लौटकर घर जाओ। हम तो जंगल के राजा कहलाते हैं, हमारा कौन सा विचार है?

इतनी सुनकें चले अमन जू
डांग में पौंचे जाय॥
डांग में पौंचे कुंअर अमन जू
हिरनी नें काटी गैल॥
कै तोय मारौं भर कें तुपकिया
कै तौ बदल घर जाँउ॥
कहत है हिरनी सुनों हो बुन्देला
तुम हौ छत्री के लाल॥
हम तो कहिएं वन की हिरनियाँ
हमरे कौन विचार॥

इतनी बात सुनकर अमानसिंह चल दिए। जब अमान सिंह डांग (जंगल, बेहड़) में पहुँचे, हिरणी रास्ता काट गई। अमान सिंह कहने लगे कि तुझे बन्दूक भरकर मार दूँ अथवा घर लौट जाऊँ। हिरणी बोली कि हे बुन्देला! सुनो, तुम क्षत्रिय के कुमार हो। हम तो वन की हिरणी कहलाती हैं, हमारा कौन सा विचार है? अर्थात् हमारे कारण अपशकुन की संभावना नहीं है।

जबरा अमन जू पौंचे नदी पै
पनियां पंथ दिखाय॥
अगर शहर के मलहा बुला कैं
जरवर नाव डराय॥
नाव डरा कैं कड़े अमन जू
पौंचे अकोढ़ी में जाय॥
अलिन गलिन में घूमें अमन जू
कितऊं न गैल दिखाय॥
जिला हो अकोढ़ी सें बुला बेलदार
गलियां हो रहे हैं खुदाय॥

जब अमानसिंह नदी के किनारे पहुँचे तो पानी ही पानी दिखाई दे रहा था। आगरा शहर से मल्लाह बुलाए। शीघ्रता से नाव डलवाई। नाव के द्वारा अमानसिंह नदी पार हुए और अकोढ़ी में जाकर पहुँच गए। अकोढ़ी की गलियों में अमानसिंह फिर रहे हैं, कहीं भी रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है। अकोढ़ी जिला से बेलदार बुलाकर रास्ते खुदवाए जा रहे हैं।

अलिन गलिन में डोलें हो अमन जू
कौन धंधेरे की पौर॥
ऊंची अटरियां लाल किबरियां
सूरज सामूं दुआर॥
ऊंचे चढ़ चढ़ देखै बहिनिया
जे दल काँसें आए॥
ऐसे घुड़ला हमें जो दीखें
जैसें विरन के होंय॥

अमानसिंह अकोढ़ी की गलियों में फिर रहे हैं। पूछ रहे हैं कि धँधेरे की ड्यौढ़ी कौन सी है? बताया गया है कि ऊँची अटारियाँ हैं जिनमें लाल किबाड़ लगे हैं तथा पूर्व दिशा की ओर

दरवाजे हैं। अमानसिंह की बहिन ऊँचे स्थान पर चढ़कर देख रही हैं कि ये दल (सेना) कहाँ से आए हैं। ये घोड़े मुझे ऐसे लग रहे हैं जैसे मेरे भाई के हों।

इतनी सुन कें पौंचे अमन जू
पहरे लगे संगीन॥
हुकुम जो दीनों कुंअर अमन नें
खबरें जो कर आव॥
पौरिन ठाड़े छत्री बुन्देला
उनकों लेउ बुलाय॥
इतनी सुनकें चले धंधेरे
पौंचे अमन नों जाय॥
रामराम करकें अमन जू नें
धंधेरे के छिये दोऊ पांव॥
सारे बहिनेऊ बैठे कुरसिन पै
होरए पतुरियन के नाच॥

अमानसिंह धँधेरे की ड्योढ़ी पर पहुँच गए। वहाँ पर संगीन पहरा लगा हुआ था। कुँअर अमान सिंह ने पहरेदारों को हुक्म दिया कि जाकर सूचना कर दो। ड्योढ़ियों पर बुन्देला क्षत्रिय खड़े हुए हैं, उनको भीतर बुला लिया जाए। इतना सुनकर धँधेरे अमान सिंह के पास आए। अमान सिंह ने रामराम की और धँधेरे के दोनों पैर छू लिए। साले, बहिनोई दोनों जनें कुर्सियों पर बैठ गए। वहाँ पर नर्तकियों का नृत्य हो रहा था।

जब दरबार खतम भए हैं
धंधेरे नै कही समझाय॥
असनान करकैं भोजन करलो
तब करौ कछू बात॥
इतनी सुनकैं कहत अमन जू
सुनौ जीजा जू बात॥
अबै न भूख लगी है हमकों
चौपर लेउ तुम डार॥
डार कै चौपर कुंअर धंधेरे नैं
चौपर रए हैं खेल॥
कुंअर धंधेरे चौपर जीते
अमन सिंह गए हैं हार॥

जब दरबार समाप्त हुआ, तो धँधेरे ने कहा कि स्नान करके भोजन कर लो। इसके बाद कुछ बात करो। धँधेरे की बात सुनकर अमानसिंह ने कहा कि जीजा जी मेरी बात सुनिए। अभी मुझे भूख नहीं लगी है। आप चौपड़ की बिछात बिछालो। कुँअर धँधेरे ने चौपड़ बिछली और दोनों जने खेलने लगे। चौपड़ के खेल में धँधेरे जीत गए। अमानसिंह बुन्देला हार गए।

इतनी सुनकें कहत बुन्देला
सुनौं धंधेरे बात॥
चौपर जीत गए तुम हमसें
सुनौ जीजा जू बात॥
काम बड़ेन के जेइ जीजा जू
चौपर लई है जीत॥
हँसी-हँसी में करी दिल्लगी,
सुनौ बुन्देला बात॥
कुंअर नहीं हौ तुम छत्री के
लौंड़ी के हौ तुम लाल॥
इतनी सुनकें कुंअर बुन्देला कें
भर आए आंखन रोस॥
खैंच के तेगा कुंअर बुन्देला
धंधेरे पै रए हैं ढार॥

अमानसिह बुन्देला कहने लगे कि धँधेरे मेरी बात सुनो। तुम चौपड़ खेल में जीत गए हो। जीजा जी बड़े लोगों के यही काम हैं। बड़े होने के नाते आपने चौपड़ जीत ली। धँधेरे ने परिहास में मजाक किया और बुन्देला से कहने लगे कि तुम क्षत्रिय नहीं हो। तुम तो दासी की संतान हो। धँधेरे की बात सुनकर बुन्देला की आँखों में क्रोध छा गया। उन्होंने तलवार निकाल ली और धँधेरे के ऊपर चलाने को तैयार हो गए।

हांत पकर लऔ सुन कें बहिन नैं
सुनौं विरन मेरी बात॥
कौन पै पैरें हरी पीरी चुरियां
कौन तेल फुलेल॥
तब तौ अमन जू बहिन कौं समझावें
सुनौ बहिन मेरी बात॥

भैया पै पैरौ हरी पीरी चुरियां
भतीजे पै तेल फुलेल॥
फूलन के हम बंगला लगा हैं
फूलन सजा हैं सेज॥
काम जेई हैं सूर वीरन के
लै लैहैं धंधेरे कौ मूंड़॥
ओली में धर हऔ बारे भनैजा कौ
जाकौ काट लेउ मूंड़॥

जब अमानसिंह अपने बहनोई प्राणसिंह का सिर काटने को उद्यत हुए तो बहिन सुभद्रा ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि हे भाई! मेरी बात सुनो। मैं किसके ऊपर हरी पीली चूड़ियाँ पहनूँगी और किसके लिए सुगन्धित तेल लगाऊंगी। तब अमानसिंह बहिन को समझाते हुए कहने लगे कि तुम भाई के सहारे हरी पीली चूड़ियाँ पहिनना और भतीजे के सहारे सुगंधित तेल लगाना। मैं फूलों के बंगला लगाऊँगा और फूलों की ही शय्या सजाऊँगा। बुन्देले शूरवीरों का यही काम है कि धँधेरे का सिर काट ही लेंगे। तब बहिन सुभद्रा ने भाई अमान सिंह की गोद में भान्जे को रख दिया कि इसका सिर काट लो।

इतनी सुन कें कहत अमन जू
सुनौ बहिन मेरी बात॥
जाकौ बेर हम तइसें भंजा हैं
सूर वीरन के काम॥
लै कैं तेगा चले हैं अमन जू
काट लऔ धंधेरे कौ मूंड़॥
इतनी सुनकें कहत बहिनियां
सुनौ विरन मेरी बात॥
जैसें रांड तुमनें हमकों करी हैं
तैसी बा री हो जाय॥
इतनी सुनकें चले अमन जू
गह लई घर की गैल॥

अमानसिंह ने बहिन से कहा कि जिसका बैर है, मैं उसी से बदला लूँगा। शूरवीर का यही काम है। अमान सिंह तलवार लेकर गए और धँधेरे का सिर काट लिया। तब बहिन ने भाई से कहा कि जिस प्रकार से तुमने मुझे विधवा बनाया है उसी प्रकार से वह भी (भाभी) विधवा हो जायेगी। बहिन की बात सुनकर अमानसिंह चल दिए और घर का रास्ता पकड़ लिया।

चले बुन्देला अपने घर कों
लगा दइ घोरे कें ऐंड़॥
इक वन चाले दुज वन चाले
तिज वन पौंचे आय॥
जब रा अमन जू आए नदी पै
पनियां पंथ दिखाय॥

अमानसिंह तेजी से घर के लिए निकल पड़े। उन्होंने घोड़े को दौड़ाने के लिए ऐड़ लगा दी। एक वन चले, दूसरे वन चले, तीसरे वन में जाकर पहुँच गए। जब अमान सिंह नदी के पास पहुँचे तो पानी ही पानी दिखाई दे रहा था।

पाछैं चितै देखें अमन जू
इक घुड़ला असवार॥
बलख बुखारे कौ सजौ है घुड़ला
कस बांधे पांचउ हतयार॥
बदल मोरचा गहे अमन नें
खेंच लई तरवार॥
आमूं सामूं खड़े हैं बुन्देला
रन में रए ललकार॥

अमान सिंह ने पीछे मुड़कर देखा तो एक घुड़सवार आता दिखाई दिया। उसका सुसज्जित घोड़ा बलख बुखारे का था। उस सवार ने हथियार बाँध रखे थे। आशंका के कारण अमान सिंह ने पलटकर मोरचा सम्हाला और तलवार निकाल ली। अमान सिंह बुन्देला उस घुड़सवार शत्रु के आमने-सामने खड़े उसे ललकार रहे थे।

जब रा अमन नें देखौ तरबरया
स्वापा कसें जरीदार॥
लाल कतइया कौ बागौ पैरें
पैरें सरई चूड़ीदार॥
हांत कलइयां हरी री चुरियां
बिजुरी सी चमकार॥
ढीले पर गए हांत अमन के
सामूं सुभद्रा ज्वान॥
तौ लौं सुभद्रा ने मूंड़ काट लऔ
राखी धँधेरे की आन॥

अमानसिंह ने उस तलवारधारी को देखा। वह जरीदार साफा बाँधे हुए था। लाल रंग का कुर्ता पहने था और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए था। हाथ की कलाइयों में काँच की हरी-हरी चूड़ियाँ बिजली सी चमक रही थीं। यह देखते ही अमान सिंह के हाथ क्षणभर के लिए शिथिल हो गए। उनके सामने वीरवेश में सुभद्रा खड़ी थी। अमानसिंह को शिथिल जान सुभद्रा ने उनका सिर काट लिया और धँधेरे की आन का बदला ले लिया।

बोलियों में राष्ट्रीय साहित्य

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

राष्ट्रीय साहित्य वह है, जो राष्ट्र का हो, राष्ट्र के संबंध में हो और राष्ट्र के हित में राष्ट्र को व्यक्त करता हो। 'राष्ट्र का हो' यानी कि राष्ट्र की किसी भी भाषा में हो ताकि वह उसी राष्ट्र का माना जाय, जिसमें वह भाषा प्रचलित हो। बहुभाषायी राष्ट्र में कई भाषाएँ बोली जाती हैं और उनमें से किसी भी भाषा का साहित्य राष्ट्रीय कहा जायेगा। अभी तक हर राष्ट्र की एक अलग भाषा मानने का चलन था, लोकतंत्री पद्धति ने बहुभाषायी राष्ट्र का प्रत्यय खड़ा कर दिया है और हमें उसी रूप में सोचना होगा। अब यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक राष्ट्र में कई भाषाओं, कई धर्मों और कई विचाराधाओं के लोग हो सकते हैं और उनका साहित्य राष्ट्रीय ही होगा। शर्त यह है कि वह राष्ट्र के संबंध में हो। राष्ट्र के शरीर और मन तथा उन दोनों से परे राष्ट्र की आत्मा के संबंध में। राष्ट्र का शरीर उसकी भूमि, प्रकृति, ऋतुएँ, उपज, नगर सभी बाहरी साधन होते हैं और मन उसके निवासियों का लोकमन होता है तथा आत्मा लोकात्मा। जब किसी साहित्य में राष्ट्र का तन, मन और आत्मा अभिव्यक्त होते हैं, तब राष्ट्र व्यक्त होता है। राष्ट्र के तन-मन, आत्मा का अर्थ राष्ट्र की समूची अस्मिता से है, जिससे राष्ट्र की पहचान होती है। हर राष्ट्र का एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है, अपनी निजताओं से एक अलग छवि आलोकित करता हुआ। उसमें अपनी शक्ति और सीमाएँ होती हैं, शाश्वत और कालिक लोकमूल्य होते हैं। स्थिर और गतिशील आचरण होता है, लोकहृदय की एक निराली धड़कन और लोकमन का विशिष्ट चिन्तन होता है, अपनी सभ्यता और संस्कृति होती है तथा इन सबको मिलाकर एक सम्पूर्ण आत्म बनता है, जिससे राष्ट्र खड़ा होता है। इसी राष्ट्र को राष्ट्र के हित में व्यक्त करता है राष्ट्रीय साहित्य।

'स्व' का विकास और रचनाकार

यदि आत्मपरक दृष्टि से विचार किया जाय, तो मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का 'स्व' ही विकास करता हुआ राष्ट्रीयता या

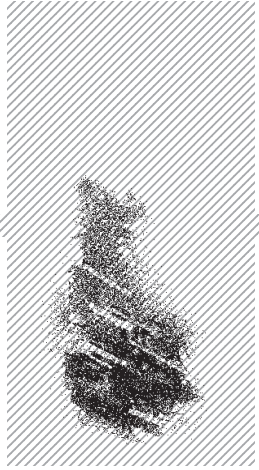

राष्ट्रीय चेतना के स्तर तक पहुँचता है। वह अपने व्यक्तित्व से परिवार, परिवार से मुहल्ला, मुहल्ले से नगर और नगर से प्रदेश, देश और विश्व तक अपने प्रेमभाव या राग का विस्तार करता है। जब देश के स्तर पर पहुँचकर वह देश की हर वस्तु और व्यक्ति को प्रेम करने लगता है तथा उसकी रक्षा और विकास को अपना उद्देश्य बना लेता है, तब वह लोक प्रेमभाव की उस उदात्त भूमि पर पहुँच जाता है जहाँ से वह पुकार कर कहता है–

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषास्मि विश्रवाषा शमाशां विषासहिः॥

मैं अपनी मातृभूमि की समृद्धि और कीर्ति के लिए सब सहते हुए इस पृथ्वी पर श्रेष्ठ हूँ। सभी दिशाओं में उसके लिए कामना करता हूँ।

इस रूप में देश के प्रति प्रेमभाव के साथ उसके हित करने का ओजमय चाव या उत्साह जुड़ जाने से राष्ट्रीयता की भावना उजागर होती है और उसी को साहित्य में अभिव्यक्त करता है राष्ट्रीय साहित्य।

यहाँ इस संदर्भ में एक प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रीय साहित्य के सृजन में उसकी रचना-प्रक्रिया के दौरान कवि या साहित्यकार के 'स्व' का विकास इसी तरह राष्ट्रीय चेतना के स्तर तक पहुँचता है। राष्ट्रीय साहित्य के अनेक सर्जक जैसे मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि देशप्रेमी रहे हैं और उन्होंने अपने 'स्व' का उन्नयन करते हुए राष्ट्रीयता का वरण किया है। वे देश की आजादी के लिए कटिबद्ध होकर अपनी तरह से संघर्ष करते रहे हैं और उन्होंने उन अनुभवों को अपनी काव्यानुभूति में उतारा है। वस्तुतः राष्ट्र की परिस्थिति पर सबकुछ निर्भर है। जैसे वर्तमान काल में संघर्ष का मुद्दा दूसरा है, हमें आर्थिक और मानसिक आजादी प्राप्त करना है। इस स्थिति में भी रचनाकार को राष्ट्र की आर्थिक या मानसिक वास्तविकता से जुड़कर, उनकी आजादी की कल्पना से सम्प्रेरित होकर अनुभूति का वह रूप मन में गढ़ना होगा, जो काव्य में रूपायित होना है। मतलब यह है कि रचनाकार राष्ट्रीय साहित्य के सृजन में राष्ट्रीय चेतना के स्तर पर ही सही, राष्ट्रीय अनुभूति की खोज और उसकी अभिव्यक्ति करने में सक्षम होता है।

विभिन्न अवयवों के संबंध

राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना को ठीक से समझने के लिए राष्ट्र के विभिन्न अवयवों को ध्यान में रखना जरूरी है। एक बड़े राष्ट्र में अनेक प्रान्त या जनपद होते हैं और हर जनपद की अपनी निजी जलवायु, आर्थिकता, समाज-व्यवस्था, संस्कृति आदि होती है, जिनके कारण वह अपनी जनपदीय अस्मिता या पहचान रखता है। लेकिन उसके साथ ही उसमें कुछ ऐसे गुण या तत्त्व होते हैं, जो उसे राष्ट्र की आत्मा से जोड़ देते हैं। राष्ट्र की देह में वे आँख, कान, नाक, हृदय आदि की तरह ही महत्त्वपूर्ण होते हुए राष्ट्र की समूची इकाई के उपकारक अंग हैं, बाधक नहीं। वे केवल शारीरिक संस्थानों की तरह एक नहीं हैं, वरन् उन सबका मन और आत्मा एक है। इस एकता के बिना कोई भूभाग राष्ट्र नहीं बन सकता। कई तरह के धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं, निवासियों आदि के बावजूद उनमें निहित भारतीयता के तत्त्व और राष्ट्रीय चेतना सबको भारतीय बना देती है। यही एकता भाषाओं और बोलियों के साहित्य में है। जनपदों की बोलियाँ हिन्दी भाषा की उपकारक हैं। उनके शब्द भण्डार ने हिन्दी को समृद्ध किया है और उनके साहित्य ने राष्ट्र के साहित्य को। यदि बोली के साहित्य में जनपद की भूमि, प्रकृति और संस्कृति के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, तो वह किसी भी रूप में राष्ट्रीयता को क्षति नहीं पहुँचाता, वरन् राष्ट्रीय साहित्य का अंग ही सिद्ध होता है।

आंचलिकता और राष्ट्रीयता

असल में, असली समस्या है 'आंचलिकता बनाम राष्ट्रीयता' की। कुछ विद्वानों का एक वर्ग यह मानकर चलता है कि आंचलिकता राष्ट्रीयता की विरोधी भावना है और राष्ट्रीय हित के लिए अनिवार्य संकट। यह सही है कि राष्ट्रीय एकता से कटकर सिर्फ आंचलिकता की प्रतिष्ठा करना खतरनाक है, पर इस तरह की कट्टरता को आंचलिकता की भावना के साथ जोड़ना भी एक दुराग्रही प्रवृत्ति है। जिस तरह हर अंचल राष्ट्र का अंग है, उसी तरह अंचल की संस्कृति, साहित्य और कला भी राष्ट्रीय संस्कृति, साहित्य और कला के अवयव हैं। जनपदीय या आंचलिक संस्कृतियों के बिना राष्ट्रीय संस्कृति का अस्तित्व नहीं है। एक अंचल में प्रचलित सांस्कृतिक मूल्य जब कई अंचलों में व्याप्त हो

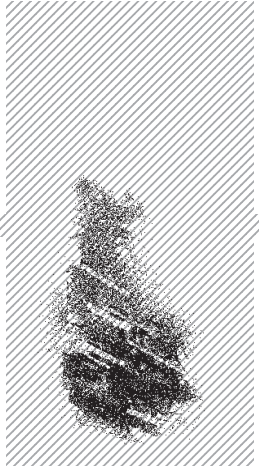

जाता है, तब वह राष्ट्रीय संस्कृति का मूल्य बन जाता है। उदाहरण के लिए, ओरछा के हरदौल के त्याग से जुड़ा देवर-भौजी के निश्छल प्रेम का लोकमूल्य उत्तर भारत के सभी जनपदों में फैल गया है और भारतीय संस्कृति के समवाय (पेटर्न) में जुड़ गया है। यही बात साहित्य-सम्पदा के साथ है। राष्ट्र की साहित्य-सम्पदा में हर अंचल की साहित्य-राशि जमा होती है। यह कहना अनुचित है कि बुंदेलखण्ड का साहित्य भारतीय साहित्य में सम्मिलित नहीं है। किसी भी अंचल का साहित्य, लोक साहित्य, बोली का समस्त साहित्य उसके राष्ट्र का साहित्य है।

राष्ट्रीय संस्कृति और साहित्य

यह तो हुई आवयविक संबंध की बात। अब दूसरी तरफ विचार करें। आखिर भारतीय संस्कृति है क्या? उसकी खोज करने के लिए अंचलों की संस्कृतियों में व्याप्त उन तत्त्वों को परखना होगा जो हर अंचल की संस्कृति में समान रूप से विद्यमान हैं। ऐसे ही समानधर्मी विशेषों की इकाई या समवाय का नाम राष्ट्रीय संस्कृति है। दूसरा उदाहरण साहित्य का है। हर अंचल की साहित्यिक प्रवृत्तियों से समान प्रवृत्तियाँ अलग रखकर उनके समवाय से बनी एक धारा को हम भारतीय साहित्य की धारा कहते हैं। इसी तरह हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के पहले हर अंचल के साहित्यिक इतिहास को सामने रखना जरूरी है, क्योंकि सभी अंचलों का साहित्यिक इतिहास ही हिन्दी साहित्य के इतिहास को पूर्णता प्रदान करता है। राष्ट्रीय साहित्य की गति-अगति, सम्पन्नता-विपन्नता तथा शक्ति-सीमा सबकुछ अंचलों की साहित्यिक समृद्धि, गतिशीलता और गुणवत्ता पर निर्भर होती है। अतएव राष्ट्रीय साहित्य की किसी भी तरह की परख के लिए अंचलों के साहित्य को संकलित प्रकाशित और उजागर करना पहली शर्त है।

अंचल का साहित्य

किसी भी हिन्दीभाषी अंचल का साहित्य तीन भागों में रखा जा सकता है। (अ) हिन्दी में रचित साहित्य (ब) बोली या लोकभाषा में रचित साहित्य (स) लोक-साहित्य। हिन्दी में रचित साहित्य के बारे में इतना ही कहना है कि उसकी खोज, संकलन, सम्पादन और प्रकाशन की ऐसी व्यवस्था हो कि वह राष्ट्र की साहित्य-धारा के प्रवाह में निरंतर विद्यमान रहे। अभी तक बहुत-सा साहित्य अज्ञात और उपेक्षित पड़ा है, जिसकी वजह से न तो उस युग की खास साहित्यिक प्रवृत्ति समझ में आती है और न उसके सही स्रोत खुल पाते हैं। एक उदाहरण पर्याप्त है।

बुन्देलखण्ड में सम्प्रदायमुक्त कृष्णकाव्य के इतने ग्रंथ प्राप्त हुए हैं कि उससे इतिहासकारों की यह मान्यता खण्डित हो जाती है, जिसके अनुसार समस्त हिन्दी कृष्णकाव्य सम्प्रदायबद्ध ठहरा दिया गया है। इसी तरह इस प्रदेश में मध्यकालीन वीरकाव्य की इतनी समृद्धि और प्रखरता है कि उस आधार पर यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मध्ययुग का कवि अपने युगधर्म से पूर्ण परिचित था। यहाँ तक कि भक्ति भी वीररसात्मक हो गयी थी और 'असुर' को अराष्ट्रीय तत्त्वों का प्रतीक मानकर उसे सामाजिक और राष्ट्रीय अर्थ दिया गया था। छत्रसाल के काव्य में जहाँ पूतना, अघासुर, बकासुर आदि असुर हैं, वहाँ मुहम्मद गोरी भी। समाज और राष्ट्र का अहित करने वाला असुर है और उससे संघर्ष करना जरूरी है। मध्ययुग के कवियों ने अपनी तमाम रचनाओं में क्षात्रधर्म, युद्ध में जूझने से स्वर्गलोक की प्राप्ति, हिन्दुवाने की हद्द और लाज रखना आदि की दुहाई अनेक रचनाओं में दी है।

हरबोलों में कटक या युद्धकाव्य सुना-सुनाकर जन-जन को सत्तावन की आजादी की लड़ाई के लिए तैयार किया था। इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि छिपे और छिपाये साहित्य को उजागर करने की बहुत आवश्यकता है। कम से कम आज के युग में, जब पुरानी पाण्डुलिपियाँ या साहित्य बेचना एक पेशा हो गया है।

लोकभाषाओं का साहित्य

दूसरे वर्ग में लोकभाषाओं में रचित साहित्य है, जिसके दो रूप हैं- एक वह, जो अपनी लोकानुभूति, लोकाभिव्यक्ति और लोकप्रियता के कारण लोकमुख में आकर लोकसाहित्य बन गया है तथा दूसरा वह, जो लोक के सामान्य स्तर से कुछ ऊँचा या अलग होने के कारण लिखित रूप में है और प्रकाशित रूप में भी। हर जनपद में लोकभाषा या बोली आज भी लोक प्रचलित है, इसलिए उसमें साहित्य की रचना सहज स्वाभाविक क्रिया है।

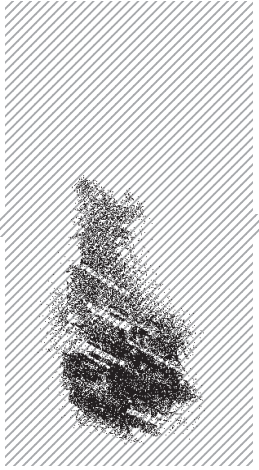

उसके लिए न तो किसी पर दबाव डाला जाता है और न उसे रोका जाता है। लोक की भाषा का अर्थ है– लोक की कल्पनाओं, भावनाओं, विचारों, विश्वासों और कर्तव्यों की भाषा। लोक से बहुत गहरे जुड़ी हुई, लोकात्मा तक प्रसारित और लोक की समस्त चेतना, संस्कृति और लोकत्व को प्रतिबिम्बित करती हुई। क्या ऐसी लोकभाषा को संकीर्ण कहा जा सकता है?

यदि राष्ट्रीय साहित्य में राष्ट्र व्यक्त होता है, तो लोकभाषा के साहित्य में जनपद और सभी लोकभाषाओं के साहित्य में पूरा राष्ट्र। लोकभाषा में रचित साहित्य राष्ट्र के साहित्य का एक अनिवार्य अंग है। लोक से ज्यादा संबद्ध होने के कारण वह राष्ट्रीय भी अधिक है। सच्चा राष्ट्रीय साहित्य वही है, जो लोक का हो, लोक को व्यक्त करता हो और लोक की समझ में आ जाय अर्थात् सम्प्रेषणीय हो। इस रूप में लोकभाषा का साहित्य खरा उतरता है और लोक साहित्य तो एक तरह से आदर्श ही है।

प्रेषणीयता संबंधी कठिनाई की ओर हमेशा संकेत किया जाता है कि लोकभाषा या बोली सीमित क्षेत्र की भाषा है, अतएव उसका साहित्य अन्य जनपदों और पूरे राष्ट्र को बोधगम्य होना कठिन है। यह तर्क बिल्कुल सही है पर ऐसा सोचा जाय, तो मराठी, गुजराती, बंगाली का साहित्य बहुत अलग-थलग पड़ जायेगा। यदि हिन्दीभाषी व्यक्ति बुंदेली, अवधी, भोजपुरी, कन्नौजी, राजस्थानी आदि के प्रति उदासीनता रखता है और उनसे नहीं जुड़ना चाहता, तो उसे मराठी, गुजराती, बंगला, तेलगू आदि और अधिक मुश्किल लगेंगी। बहुभाषायी राष्ट्र के लिए यह एक समस्या है, लेकिन उसका समाधान कठिन नहीं है। उसके लिए प्रत्येक नागरिक को जागरूक रहने की जरूरत है।

हिन्दी की बोलियाँ सीखने में किसी को अधिक श्रम नहीं लगाना पड़ेगा। हिन्दी की समृद्धि के लिए बोलियों से सामग्री लेकर उसका सदुपयोग एक महत्त्वपूर्ण साहित्यक सेवा है। भारतीय जनता देहातों में ज्यादा रहती है, इसलिए बोलियों के साहित्य से सिर्फ भाषा या हिन्दी भाषा को ही लाभ नहीं होगा, वरन् हिन्दी साहित्य राष्ट्र के लोकजीवन की परम्पराओं को आत्मसात् करता हुआ राष्ट्रीय धारा से जुड़ेगा।

नगर और गाँव का साहित्य

नगर का रचनाकार गाँवों के लोक का साक्षात्कार नहीं कर पाता, अतएव वह राष्ट्र की अधिकाँश जनता की संस्कृति, भाव-लोक और सम्प्रदायमुक्त धर्म तथा दर्शन से अपरिचित रहता है। आज के नगर और गाँव के लोकजीवन में बहुत अंतर है। इस कारण नगरी रचनाकार का साहित्य नगरी लोक का प्रतिबिम्बन तो करता है, गाँव के लोकजीवन का नहीं। प्रकट है कि ऐसा साहित्य सम्पूर्ण राष्ट्र की चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं करता। गाँव के लोकजीवन, लोकभावों, लोकदर्शन, लोकसंस्कृति आदि से परिचित होने के लिए बोलियों का साहित्य उपयोगी है। ग्रामवासिनी भारतमाता का चित्र बोलियों के साहित्य में ही मिलता है, और उसके बिना राष्ट्रीय जीवन, प्रकृति, चरित्र और सब मिलाकर राष्ट्रीय व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती।

यदि हम भारतीय जनता के इतिहास को देखें, तो उससे एक बात बहुत उभर कर सामने आती है और वह है ग्राम-नगर संबंधों की स्थिति। ग्राम या जनपद भारतीय जीवन की परम्पराओं को सहेज कर रखते रहे हैं, जबकि नगर और महानगर बाहरी संस्कृतियों के प्रभाव से जीवन को बदलते रहे हैं। कभी गाँव ने महत्त्व पाया, तो कभी नगर ने और कभी दोनों के समन्वय ने। अभी आजादी की लड़ाई में दोनों ने मिलकर संघर्ष किया था और दोनों के अस्तित्व को प्रतिष्ठा मिली थी, और लोकतंत्री व्यवस्था में दोनों के खाते बराबर चलते हैं। वैसे बहुसंख्यक गाँवों की महत्ता अधिक होनी चाहिए, लेकिन चतुर अल्पसंख्यक नगर ही बाजी मार ले जाते हैं। फलस्वरूप आजादी मिलने के बाद उसका ज्यादा फायदा नगरों के खाते में जमा हुआ है और यह प्रवृत्ति आज ज्यादा प्रभावशाली है। नगर में साहित्य की संस्थाएँ हैं, केन्द्र हैं, उनके महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं और कई रूपों में सम्मानित-पुरस्कृत करने वाले अभिजन हैं। इसलिए नगर का साहित्यकार अनेक सुअवसर पा जाता है और गाँव का पिछड़ा रहता है। इसी मानसिकता से प्रेरित होकर गाँव का कालिदास नगर की ओर दौड़ता है। लेकिन राष्ट्रीय साहित्य में नगर और गाँव तथा उनकी संस्कृतियों का अनोखा मेल रहता है। उसमें नगर और गाँव की भूमि, पर्वत, नदियाँ, वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य तथा उन

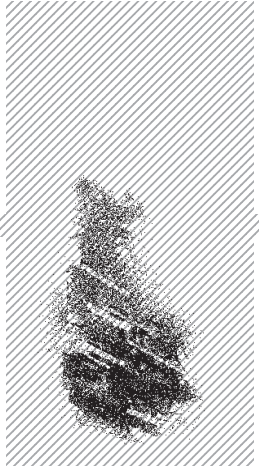

सबके संबंधों से बने सांस्कृतिक समवायों का वर्णन होता है। जब राष्ट्र की भाषा और साहित्य बहुत परिष्कृत और रूढ़िबद्ध होकर जनता से दूर होने लगते हैं, तब कोई न कोई समर्थ रचनाकार बोलियों की शब्दावली लेकर भाषा को ताजगी देता है और बोलियों के साहित्य से लोकतत्त्व लेकर साहित्य को लोकोन्मुख और रूढ़िमुक्त करता है। सबसे उत्तर उदाहरण तुलसी का है, जिनके काव्य में उस समय प्रचलित बुंदेली, बघेली, अवधी आदि बोलियों के शब्द ही नहीं मिलते, वरन् जनपदीय लोकादर्श, लोकाचरण, वस्त्राभरण, संस्कार, लोककलाएँ, लोकछंद आदि भी संग्रथित हैं। तुलसी ने सबसे पहले जहाँ राष्ट्रभाषा का स्वरूप खड़ा किया था, वहाँ भारतीयता को वाणी दी थी। जरा गहराई से विचार करें, तो तुलसी का काव्य तत्कालीन राष्ट्रीय भाषा और साहित्य का उत्कृष्ट नमूना सिद्ध होगा। उसमें जनपदीय और नागरी प्रवृत्तियों और संस्कृतियों का उचित समन्वय भी है।

बोलियों का साहित्य

संकीर्णता और पक्षधरता के आक्षेप जनपदीय बोलियों के साहित्य पर थोपने का एक फैशन-सा चल पड़ा है। क्या ये आरोप नागरी साहित्य पर नहीं लागू होते? संकीर्णता और वर्गबद्धता नागरी साहित्य में अधिक होती है, जबकि जनपदीय साहित्य लोकसहज होने के कारण अधिक मुक्त रहता है और स्वच्छंदता की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति में साम्प्रदायिकता, वर्गवाद और पुरस्कार या शिविरधर्मिता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। लोकदर्शन, लोकधर्म और लोकभाव में किसी भी तरह की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति नहीं पनपती। इस कारण वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय सिद्ध होता है। कभी-कभी 'सामंतवादी' अथवा 'सामंतीय अवशिष्ट' होने का आरोप भी थोप दिया जाता है। तर्क दिया जाता है कि पहले की सामाजिक संरचना सामंतवादी थी, इसलिए उस समय की लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य 'सामंतीय अवशिष्ट' हैं। कुछ लोककथाओं में राजा, सेठ-साहूकार, मंत्री अर्थात् उच्च वर्ग के नायक अंकित किये गए हैं, लेकिन समग्र रूप में लोकसाहित्य जातीय जीवन का साहित्य है, इसलिए उसमें सभी वर्गों को महत्त्व दिया गया है। सामंतीय संस्कृति में जिस भोग-विलास, ऐश्वर्य, ताम-झाम, निरंकुशता आदि की प्रधानता रहती है, वह रत्ती भर भी लोकसंस्कृति में नहीं है। यदि सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाय, तो लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति की दृष्टि से सामंतवाद का विरोधी है, क्योंकि वह रूढ़ि कृत्रिमता, विलासिता, निरंकुशता आदि की विरोधी स्वच्छंदता, सहजता, प्रेम, सहानुभूति आदि प्रवृत्तियों को महत्त्व देता है। सामंती प्रकृति में थोड़े से लोगों का सबकुछ रहता है, जबकि लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य अपने जनपदीय लोक को ही प्रधानता देते हैं। अब आप ही निर्णय लें कि ऐसा साहित्य जो तमाम संकीर्णताओं, भेदभावों और पक्षधरताओं से दूर है, राष्ट्रीय साहित्य का सच्चा उदाहरण है या नहीं?

कुछ समान विशेषक

इसके साथ-साथ हर अंचल के साहित्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो दूसरे जनपद, प्रदेश और राष्ट्र के साहित्य से मेल खाती हैं और सभी के बीच जुड़ाव की स्थिति लाती हैं। सभी में संस्कारों की एकरूपता है, एक से मानवीय रिश्तों की व्यंजना है और लोककल्याण का एक ही लक्ष्य है। प्रेम, त्याग, शौर्य, बलिदान, कर्म, पातिव्रत्य, शील जैसे मूल्य सभी में प्रधान हैं। सभी में एक सा लोकधर्म और लोकदर्शन है। कुछ गीतों की संवेदना हर अंचल में समान है, जिससे ऐसा लगता है कि उनका लोकभाव यात्रा पर रहा है। उदाहरण के लिए बेटी की विदा के लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ देखें-

बुंदेली- *माई के रोवे सें नदिया बहत है,*
बाबुल के रोयें बेलाताल, मोरे लाल।
बीरन के रोये सें छतिया फटत है,
भौजी के जियरा कठोर, मोरे लाल।

बघेली- बापा के रोये नदिया बहति हेइ,
माया के रोये तलबा।
भइया के रोये हिया फटति हइ,
भउजी के बइना कठोर॥

छत्तीसगढ़ी- *दाई तोला रोवै नोनी हरर हरर ओ,*
ददा रोवै गंगा बोहावै।
भइया तोला रोवे नोनी भीजें पिछोरी,
भौजी के नैना कठोर हो॥

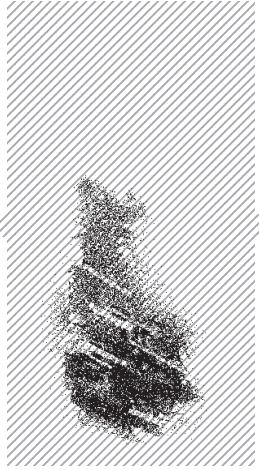

मालवी– *मैया की अँखियन से गंगा बहत है,*
बाबुल की अँखियन तलाब।
भैया की अँखियन से नदिया बहत है,
भाभी को हृदय कठोर॥

मध्यप्रदेश के बाहर उत्तरप्रदेश, बिहार आदि उत्तर भारत में जनपदों और प्रदेशों में इसी तरह का लोकभाव मिलता है– मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि बोलियों में बिल्कुल इसी भाव की पंक्तियाँ हैं। स्पष्ट है कि भौजी या भाभी की प्रतिष्ठा कम हो गयी थी। लेकिन हरदौल के बलिदान के ऐतिहासिक उदाहरण ने भाभी के प्रेम और त्याग को बहुत ऊँचाई प्रदान कर दी है, जिसकी वजह से पुराने विश्वास या लोकमूल्य में परिवर्तन हुआ है।

इसी तरह आल्हा, सरवन कुमार, ढोला–मारू, भरथरी आदि गाथाओं ने दूर–दूर तक यात्रा की है और अब वे राष्ट्रीय सम्पत्ति हो गई हैं। एक अंचल की लोकगाथा भाषायी ओढ़नी ओढ़कर दूसरे अंचलों में चली गयी है। ठीक वैसे ही, जैसे एक अंचल की बिटिया दूसरे अंचल की बहू बनकर घर–बार सँभाल ले। ऐसे उहारण लोककथाओं, लोकनाट्यों, लोकोक्तियों आदि में भी मिलते हैं। बुंदेली लोकगीत की कतकारी (कार्तिक का व्रत रखने वाली) तो ब्रज की मोर बनना चाहती है–'सखी री, मैं तो भई न बिरज की मोर।'

बोलियों का राष्ट्रीय साहित्य

इतना ही नहीं, बोलियों के साहित्य में राष्ट्रीय साहित्य की एक दीर्घकालीन परम्परा है, जिसकी खोज अभी तक नहीं हुई है और न ही उसका कोई क्रमबद्ध रूप उभर कर आ सका है। हर बोली ने राष्ट्रीय चेतना को समय–समय पर व्यक्त किया है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(1) मगही में भारत माता के साकार रूप की वन्दना है–

भारत माता हे, सोनवें पूजब तोहर पाँव।
टीका झुमका फूल बनाएब, नथिया अच्छत बनाएब।
हँसुली सिकरी आसन बजुआ सिंघासन बइठाएब।
कँगना पहुँची अरधा–चंदन मुँदरी हार बनाइब।
तोहर देल सोना अभरनवा तोहरे देब चढ़ाएब॥

(2) भोजपुरी के एक गीत में पंजाब के हत्याकाण्ड का चित्रण हुआ है और फिरंगियों को ललकारता हुआ कवि कहता है–

आजु पंजाबवा के करिके सुरतिया से,
फाटेला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत की छाती पर भारत के बघवन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरंगिया।
दुधमुँहा लाल सब बालक मदन सम,
तड़पि तड़पि देले जान रे फिरंगिया।

(3) जलियाँवाला बाग के इस करुण दृश्य का फल था संघर्ष और क्रान्ति, जिसकी झलक एक बुंदेली फाग में मिलती है–

बाजी भारत की रनभेरी, सुन सन ब्यालिस केरी।
क्रांतीदल की धूम मची ती, बलिया में जिन केरी।
इक तें एक हते भट बाँके, तरूनई रंग रंगे री।
दहल उठी अंग्रेजी 'मधुरा' देख फौज इन केरी॥

(4) भारत जब स्वतंत्र हो गया, तब बघेली कवि गर्व से भर उठा–

भइलो, स्वतंत्र हम भयन आज।
अब सुना बिदेसी हमरे पर, कबहूँ काऊ करिहैं न राज॥
फहराई तिरंगा तब जाघा, सबसे ऊँचा मा सानदार।
होई भारत अइसन हमार, मानी जइसे सब विश्व हार।
होई हमार यह देश ताज भइलो॥

इन चार ही उदाहरणों से आपको आभास हो गया होगा कि हर अंचल का कवि राष्ट्र के प्रेम और कल्याण के लिए कितना चिन्तित था और अब तक रहा है।

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की प्रधानता

सभी अंचलों की बोलियों के साहित्य में सांस्कृतिक

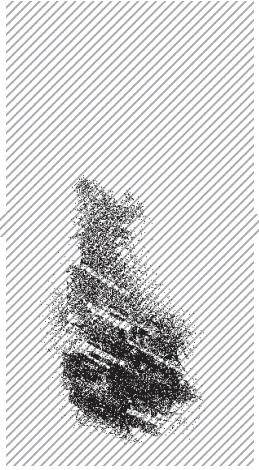

राष्ट्रीयता की प्रधानता है। उनका लोकसाहित्य तो उस लोकसंस्कृति को चित्रांकित करता है, जो भारतीय संस्कृति की जड़ हैं और जिससे संस्कृति का पौधा बाहर की आँधियों को झेलता खड़ा रहता है। हर क्षेत्र की लोकसंस्कृति के कुछ समवाय (पेटर्न) अन्य क्षेत्रों के समवायों से समानता के कारण राष्ट्रीय संस्कृति के समवाय बन गये हैं। साथ ही राष्ट्रीय समवाय भी हर क्षेत्र की लोकसंस्कृति में व्याप्त हो गये हैं। दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ चलती हैं और अंतर्क्रिया (इण्टरैक्शन) भी जारी रहता है।

उदाहरणस्वरूप जन्म, विवाह और मृत्यु के राष्ट्रीय संस्कार पहले किसी न किसी अंचल के संस्कार थे, बाद में हर अंचल के बन गये। मालवी, राजस्थानी, बघेली, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, गढ़वाली आदि बोलियों के संस्कारपरक गीतों में राष्ट्रीय समवायों की अधिकता है। आश्चर्य तो यह है कि गढ़वाली लोकगीत में जिस प्रकार कन्या छह फेरे तक ससुराल नहीं पहुँचती है और सातवें फेर में परायी हो जाती है, उसी प्रकार बुंदेली गीत में भी समान सांस्कृतिक समवाय और लोकभाव हैं। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

गढ़वाली– *पैलो फेरो फेरी लाडी, कन्या च कुँवारी।*
दुजो फेरो फेरी लाडी, कन्या च माँ की दुलारी।
सातों फेरो फेरी लाडी, है चूके तुमारी।

बुंदेली– *पैली भाँवर जब फेरियो, बेटी अबलों कुँआरी।*
दूजी भाँवर जब फेरियो, बेटी बाबुल की प्यार।
सातईं भाँवर जब फेरियो, बेटी हो गई परायी।

व्रत और त्यौहार से जुड़े लोकगीतों में भी राष्ट्रीय समवायों की प्रचुरता है। ऐसा लगता है कि लोकभाषाओं की रंग-बिरंगी चुनरियों में एक ही मन और आत्मा की बहुएँ खड़ी हों। मौखिक परम्परा का लोकसाहित्य हर सर्जक को प्रभावित करता है, विशेष रूप में सांस्कृतिक रचनाओं के सर्जकों को। बोलियों के लिखित साहित्य में संस्कृति के उन्हीं समवायों को ग्रहण किया गया है, जो तत्कालीन लोकसंस्कृति के अंग थे। बदलते समवायों पर रचनाकारों की दृष्टि कम हो गयी है। इतना अवश्य है कि विदेशों से आयातित समवायों पर तीखे व्यंग्य और चुटीले आक्रमण लोकभाषा के कवियों की अपनी विशेषता रही है। एक बानगी देखें–

पढ़ गये अंगरेजी नयी फैशन बनाई,
मैं कैसी करों माई।
पियें सिगरेट उर चाय, अंडा मुर्गा बे खायँ,
इंगलिस में बात करें, माइ डियर माई। मैं कैसी. ।
डाटें चश्मा उर टोप, लगी चमड़े की गोट,
छू मूँछन की कर दई, बिल्कुल सफाई। मैं कैसी. ।

सांस्कृतिक समस्याओं जैसे बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, भौजी-देवर और भौजी-ननद के संबंध, परिवार की टूटन, अनाचार और भ्रष्टाचार आदि की अभिव्यक्ति काफी प्रभावकारी रही है। उसमें आधुनिक रचनात्मक समवायों की पैठ कम है, भीतर के यथार्थ को व्यंग्य की शैली में परत-दर-परत खोलने की आजादी ज्यादा है। एक कवि ने रावण को प्रतीक मानकर उसके माध्यम से सांस्कृतिक पतन की ओर संकेत किया है–

लाखन भुजा सीस अनगिनते, लंकापति के हो गये,
हिरा गये आदर्स हिया सें, नेह-साँच कउँ सो गये,
हिय को रावन मरै न मारें, राम लाज सें गड़ रये।
रावन दहन होत हर साले, तोऊ रावन बड़ रये।
बैर भाव हिंसा अनीति, मानुस खों ऐन जकड़ रये।

प्रभाव का एक साक्ष्य

बोली के राष्ट्रीय साहित्य की अपनी निजी गरिमा है और अपना अलग प्रभाव है। उससे न तो परिष्कृत साहित्य बचा है और न जनमन। परिष्कृत साहित्य जब एक विशिष्ट परिपाटी पर जड़वत होने लगता है, तब सजग सर्जक बोली के साहित्य में अंकित सांस्कृतिक समवाय या तो लोकतत्त्व के रूप में सीधे ग्रहण करता है या फिर प्रतीक और मिथक रूप में।

तुलसी ने तो अपने काव्य में उन्हें कथा के अंग बनाकर आत्मसात् कर लिया है। यहाँ तक कि सोहर, मंगल गीत आदि अपनी पूरी परम्परा के साथ अवतरित हुए हैं। कवि अच्छी तरह जानता था कि उन सबके बिना रामसीता लोकनायक नहीं बन

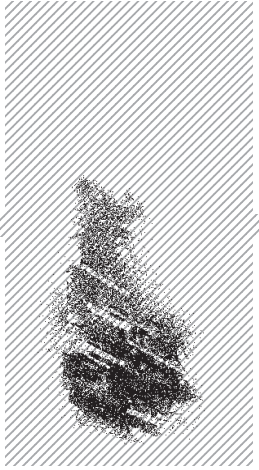

सकते। इसी तरह आधुनिक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में उनका पूरा-पूरा प्रभाव है। लेकिन इस सबके बावजूद क्या कोई भूल सकता है कि दोनों राष्ट्रकवियों की भारतीय संस्कृति की संरचना में बुंदेलखण्ड की संस्कृति और साहित्य का प्रमुख योगदान है। इतना ही नहीं, 1840-42 ई. स्वतंत्रता-संग्राम के नायक जैतपुर नरेश पारीछत के अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का वर्णन करने वाला 'पारीछत कौ कटक' इस तथ्य का गवाह है कि बोली का काव्य दुश्मन की छावनी तक को राख कर सकता है-

काऊ नें सैर भाषे काऊ नें लावनी।
अबके हल्ला में फुँकी जात छावनी॥

लोकगीतों में राष्ट्र

डॉ. रामनिवास शर्मा

देश में स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। देश का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा, जहाँ राष्ट्रीय भावना ने अपना असर न उठाया हो। देखते-देखते यह लहर देश के कोने-कोने में फैल गई। इसी राष्ट्रीय भावना की लहर से प्रभावित होकर देश के हजारों युवक फाँसी की रस्सियों पर झूल गये, हजारों वीर गोलियों के शिकार हो गये और हजारों ऐसे भी माँ के लाल हैं जो बिना प्रचार पाये, बिना अपने गले में हार डलवाये ही राष्ट्रीय आन्दोलन की भेंट हो गये। जब देश की नस-नस में, मिट्टी के कण-कण में राष्ट्रीय भावना उभर चुकी तो लोक-जीवन उससे दूर कैसे रह पाता? लोक-जीवन ही किसी राष्ट्र की संस्कृति का जीवंत (सच्चा) स्वरूप होता है। ये कहा जाए कि लोक जीवन में राष्ट्र का स्वरूप ही निर्भर नहीं रहता बल्कि लोक-जीवन ही राष्ट्र का जीवित एवं जागरूक इतिहास है। जब लोक में चेतना प्रस्फुटित होती है तो वह लोकगीतों के द्वारा साकार हो उठता है और यही लोकगीत अतीत का सम्बन्ध वर्तमान से जोड़ते हुए इतिहास के पृष्ठों को सँवारते रहते हैं। मानव-इतिहास के पाठक भली-भाँति जानते होंगे कि जन्म लेते ही मानव ने उन्माद में आ जाना ही सीखा था। जब किसी लोक में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो उठती है, तब वह निश्चय ही उस भावना के प्रवाह में बहता हुआ उन्मादी हो गुनगुना उठता है-यह उन्माद ही उसके लोक-जीवन को बल प्रदान करता है और वह राष्ट्र-हित में स्वयं को भी भूल जाता है। उसके सामने रह जाता है केवल राष्ट्र और राष्ट्र का सम्मान।

अंग्रेजी शासन के जुल्म तथा उसकी लूट-खसोट का जिस दिन लोक को ज्ञान हुआ, वह उसी दिन सतर्क हो गया। उसने स्वयं को कहा कि तेरी इज्जत खतरे में है, तू कहाँ तक अपने-आपको अपमानित करता रहेगा? कब तक गुलामी करेगा? पंजाबी लोक कवि का संदेश देखिए, वह सचेत करता हुआ बोल उठा-

पगड़ी सम्हाल जट्टा
तेरी पगड़ी नूँ लग गये चोर।

-ओ जाट! तू उठ अब अपनी पगड़ी (इज्जत, मान) को संभाल। देख तो सही तेरी पगड़ी की ताक में चोर बैठे हैं जो तेरी इज्जत को चुरा लेंगे।

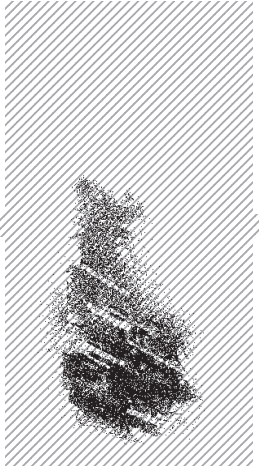

देखिए, लोक कवि की दृष्टि कितनी पैनी है। वह जानता है कि गुलामी (दासता) में किसी की भी इज्जत कायम नहीं रह सकती। [1]

सन् 1920 के लगभग का एक लोक गीत देखिए, जिसमें लोक ने अंग्रेज शासन के न्याय पद्धति की नंगी तस्वीर प्रस्तुत करते हुए कटु आलोचना की है–

नाँ ताँ मेरी लई उगाही, नाँ सब बात पछाणी।
कन्नों बोली दिसे अदालत, अक्खों बी है काणी।
सच्चे फैसले किवें करे ओह, जिहने बड्डी होवे खानी।
नर काँच पये जिन्दड़ी, मिले ना तिहाये नूँ पाणी। [2]

अदालत ने मेरी गवाही भी पूरी तौर से नहीं ली अर्थात् मुझे अपने पक्ष में सफाई का पूरा–पूरा अवसर नहीं दिया।

–न अदालत ने मेरी सभी बातों की पहचान की अर्थात् प्रमाण लिये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अदालत कानों से बहरी है।

–वह मुझे आँखों से भी कानी प्रतीत होती है अर्थात् दोषपूर्ण दृष्टि साफ नहीं है।

–वह अपने फैसले सही और सच्चे किस प्रकार करे– जब वह कटी–कटाई फसल ही खाने की आदी हो चुकी है अर्थात् निकम्मी हो चुकी है।

–ऐसे शासन में तो हमारा जीवन भी नारकीय हो चुका है।

–यहाँ प्यासे लोगों को पानी भी मिलना दूभर है।

भारतीय इतिहास में आधुनिक युग का प्रवर्त्तन अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से होता है और सन् 1857 की देश व्यापी क्रांति पुरानी जीर्ण–शीर्ण व्यवस्था का अन्तिम राग–सा प्रतीत होती है– इस राज्य क्रान्ति में हिन्दू–मुस्लिम–सिख आदि सभी संगठन एकजुट होकर सामने आए। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय आन्दोलन चला, उसका उद्देश्य केवल स्वराज्य तक सीमित नहीं था, बल्कि देश की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगति की ओर उन्मुख था। इन नए सुधारों का अर्थ भारत को पाश्चात्योन्मुखी न बनाकर अपनी सामाजिक राजनीति में क्रान्ति उत्पन्न करने का था। अस्पृश्यता, जाति–पाँति तथा ग्रामों में अवरुद्ध जीवन में नवीन चेतना का मंत्र फूँकने के लिए इस युग में पाश्चात्य–दर्शन की अपेक्षा भारतीयों ने स्वदेशी परिस्थितियों के अनुकूल स्थानीय समाधान खोजने में रुचि ली। [3] और इन प्रयासों के बड़े सकारात्मक परिणाम निकले। स्वाधीनता की लहर नगरों–महानगरों से गाँव–गाँव तक पहुँची, जो ललनाएँ (महिलाएँ) राजनीति का 'ककहरा' भी नहीं जानती थीं, उनमें भी (लोककंठ से) गीतों के रूप में राष्ट्रीय भावना फूटी। वे भी गाँधीजी के 'जलसे' में जाने को उत्सुक दिखाई देती हैं और वह अपने पति से साथ ले चलने के लिए आग्रह करती है–

'मैं भी तेरे साथ चलूँगी गाँधी जी के झलसे में'

इतना ही नहीं गाँधी जी का संदेश गाँव–गाँव पहुँचा। विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी के प्रति रुचि जागृति हुई। अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण की दुरभि संधि के विरोध में नर–नारियों में सक्रिय असन्तोष एवं व्याकुलता लक्षित होने लगी। किशोरियों के एक गीत में इसकी झलक देखिए–

तुम बूंद बिलायती छोड़ो
हे सखी गाँधी बाबा आ रहे हैं।
तुम खद्दर पहना करो हे सखी..... ।
तुम नथ और बाली छोड़ो, हे सखी..... ।
तुम मिल का चून पिसाना छोड़ो, हे सखी..... ।
घर का पिसा खाया करो,
तुम फिल्मी गाने छोड़ो, हे सखी, गाँधी के गीत गाया करो।
गाँधी बाबा आ रहे हैं॥

इस आन्दोलन का राष्ट्र व्यापी प्रभाव हुआ। लोक गायकों/कवियों ने अपने ओजस्वी गीतों के द्वारा जन–मन में जोश भरा। इन गीतों को सुनकर सोता हुआ राष्ट्र जाग उठा–

'भारतवासी जागो तुम शेरों की संतान हो'

ऐसे प्रेरणादायक गीतों ने सोते हुए राष्ट्र में एक नया जोश भरा। लोगों ने घर के काम–काज छोड़कर गाँधी जी के नेतृत्व में

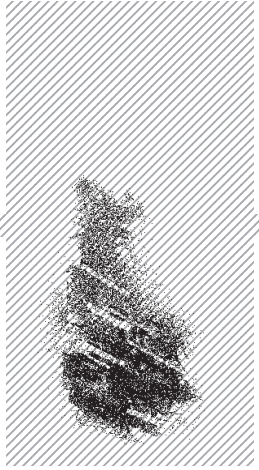

सत्याग्रह के लिए आत्म समर्पण किया। एक लोकगीत में बहिन की व्याकुलता में राष्ट्रीय चेतना का चित्रण उभरकर आया है–

अम्मा तो रोवै रे वीरा आपणी,
कौण भरेगा भात,
गाँधी ने झण्डा ठा लिया।
तू क्यों रोवे री मैना, यादों से भरेंगे भात,
गाँधी ने झण्डा ठा लिया।

बहिन भाई से कहती है कि तू तो गाँधी जी के आन्दोलन में शामिल होने को चला और विवाह में भाई द्वारा भात (धन-वस्त्रादि देने की रस्म) निभाई जाती है, उसे कौन निभाएगा? इस पर भाई सान्त्वना देता है कि तू चिंता न कर, सब ठीक हो जाएगा।

देश भक्ति के गीतों द्वारा मातृभूमि की लाज बचाने के लिए माताएँ अपने लालों को प्रेरित करती हैं। चीन और पाकिस्तान के साथ हुए संघर्ष में भी हरियाणा के वीर सूरमाओं तथा वीरांगनाओं में उत्साह की लहरें उठती हैं और वे माँ के दूध अथवा गौरव की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम करने के लिए तैयार रहते हैं–

कर देश की रक्षा चाल्य, लाल मेरे सज-धज के।
अरिदल ने सीमाएं तेरी, चारों ओर से आकर घेरी,
क्या इसका नहीं ख्याल, लाल मेरे सज-धज के।
जिस दिन के लिए तुझे दूध पिलाया, वो आज लाड़ले आया,
करके दिखा कमाल, लाल मेरे.... ।
शहादत है जाने की आना, आया है उसे होगा जाना,
धनी हो या कंगाल, लाल मेरे सज-धज के ॥[4]

यहाँ आत्मा के अमरत्व का संदेश देकर प्राण-उत्सर्ग की बात कही गई है। इन पंक्तियों में गीता का संदेश साकार हो उठा है।

गाँधी जी की मृत्यु पर सारा देश बिलख उठा। सही अर्थों में देश अनाथ हो गया था। गाँधी जी बहुत बड़ी शक्ति थे, बहुत बड़ा बल थे। लोक कवियों ने लोकगीतों के रूप में शोक-संवेदना व्यक्त की और राष्ट्र नायक को भाव-भीनी श्रद्धांजलि दी–

भारत के चन्दरमाँ छिप गये, रहे बिलखते तारे,
नत्थू नीच मरहरटा था जिन्ने गाँधी जी मारे।

उपर्युक्त गीत का बिम्ब कितना मर्मभेदी है। भारत का चन्द्रमा छिप गया था, उस शोक में तारे बिलखते रह गये थे। इस शोक की घड़ी में भारत की ललनाएँ केवल बिलखकर नहीं रह गईं, बल्कि नाथूराम को धिक्कारा भी–

ऐ नात्थूराम तूनें जुलम करा, कैसे मारा गाँधी
शान्ति देवी राज करे थी, आगे लगा दी बाँद्दी
चूल्हें आगे आट्टा छोड्या, हारे (हाँड़ी) में छोड्या साग,
गाँधीजी के मारनिया, तुझे कुछ ना आई लाज
जिब गाँधी की सजी आरथी, झिलमिल झिलमिल होय
मुगलों ने बखेर करी थी, चढ़कें हवाई जहाज।[5]

प्रतिदिन के दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के साथ गाँधी जी का नाम जोड़कर अनेक गीत गाए, इससे गाँधी जी के प्रति प्रेम तो प्रकट होता ही है, साथ ही राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा को भी देखा जा सकता है–

ऐ रेस्सम की साड़ी मंगवा दो साँवलिया
गाँधी का इसमें फोटौ लगवा दो
नेहरू का झंडा लगवा दो, भारत की तस्वीर।

नई चाल के गीतों में भी उनकी (अंग्रेजी शासन) शोषण नीति और लोभी प्रवृत्ति की झलक देखने को मिलती है–

पैसे का लोभी फिरंगिया
धूएँ की गाड़ी उड़ाए लिए जाय।

ब्रज बनिताओं (नारियों) की रुचि चरखा कातने में अधिक रहती है। जब से गाँधी जी ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर स्वदेशी खादी से बने वस्त्रों को पहनने का संदेश घर-घर पहुँचाया, तब से यह राष्ट्र-प्रेम का प्रतीक बन गया। चरखा से सम्बन्धित अनेक लोकगीत मिलते हैं। ब्रज नारियाँ घर के काम-काज से निवृत्त हो चरखा कातने बैठ जाती हैं। प्रतिदिन चरखा कातने से अधिक सूत, शुद्ध वस्त्र प्राप्त होते हैं और विदेशी धन जाने पर भी

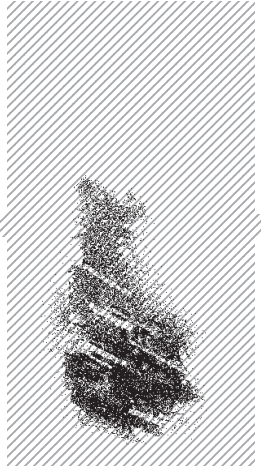

रोक लग जाती है। इसलिए उन्हें चरखे की घरर-घरर ध्वनि भी कर्णप्रिय व मधुर प्रतीत होती है-

घरर घर घरर चलै चरखा रे।
चलै चाक पै माल तौ चरखा करै सूत बरखा॥
तजि देउ सब आलस्य किफायत पैसा की
कीजो।
घर घर कातौ सूत ओत सब कपड़ा की कीजो॥
घरर घर घरर चले चरखा।
शुद्ध सूत के कपड़ा पहरौ स्वच्छ रहैं दिन रात।
पैसा बाहर ना जाये तौ सदा रहे अपने पास॥
घरर घर घरर चलै चरखा।[6]

इस तरह ब्रज बनिताएँ प्रतिदिन चरखा चलाती हैं और गाँधी जी का गुणगान करती है। चरखा और अपने चरखे से कते सूत की प्रशंसा करती नहीं अघातीं-

मेरे चरखे का टूटे न तार, चरखा चलता रहे।
काहे कौ चरखा बनवायौ काहे की डोरी माल॥
चरखा चलता रहे।
चंदन कौ चरखा बनवायौ, रेसम की डारी माल
चरखा चलता रहे।
प्रेम कौ मैंने तकुआ बनवायौ, ग्यान कौ तार निकालौ॥
चरखा चलता रहे।
शुद्ध सूत कौ कपड़ा पहिनौ, गर्मी लगै न ठण्ड॥ चरखा..... ॥
गाँधी जी ने कर्म करिकैं, कियौ भारत आजाद॥ चरखा... ॥
जो चरखा नित प्रति कातै, कटेंगे दु:ख अपार।
जैसे नाम अमर गाँधी कौ, तेसे ई रहै मेरौ तार॥
चरखा चलता रहे।[7]

जहाँ जन-मन में गाँधी जी के प्रति अपार श्रद्धा थी, वहीं लोक सुभाषचन्द्र बोस के नाम से भी परिचित था। एक लोकगीत में सुभाषचन्द्र बोस के प्रति लोक की चिन्ता को देखिए-

भारत माता तेरे फिकर में बाबू चन्दर बोस गया
बेरा ना पटे कित फिरै भरमता, होकर तेरा पूत गया
सबसे कहा बीर ने आपस में तुम मेल करो
फूट गुल्लामी पड़ी देश में, कान पकड़ कैं भार करौ
एक पिता के बेटे हो कै सोच समझ बिचार करौ।
अंगरेजों ने खबर पटी थी, एक फौज तैयार करी
जो फौज आजाद हिन्द की थी सब गिरिफ्तार करी
सिंघापुर में नेता जी ने मौत सी मारामार करी
चुगल खोर ने चुगली की थी, म्हारे देस भारत की
महात्मा गाँधी जवाहर नूं कहै
म्हारा भरा भराया लाल गया, भारत माता तेरे फिकर में.. ।[8]

एक हरियाणवी लोकगीत में बालिका भी अपनी माँ से युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए मचलती हुई गाती है-

मैं चीन से लड़ने जाऊँगी, मानूँ नां मेरी माँ।
ये सारा जेवर बेचूंगी, कुछ रच्छा कोस में द्यूंगी
कुछ हथियार मंगाऊँगी, मानूँ नां मेरी माँ।
उस पापी आततायी के पाऊ-एन-लाई के
सिर पै गोले बरसाऊँगी, मानूँ नां मेरी माँ।[9]

भारतीय आजादी का संघर्ष जो आधुनिक भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है, उसकी अनेक छवियाँ लोक साहित्य में मौजूद हैं। भोजपुरी लोक संस्कृति में 1857 ई. के समर की व्यापक अनुगूँज विद्यमान है। भोजपुरी क्षेत्र के महान नायक बाबू कुँवर सिंह से सम्बन्धित अनेक लोकगीत मिलते हैं, अनेक कहावत प्रचलित है, जिन्हें क्रमवार विवेचित कर बाबू कुँवरसिंह के लिखित इतिहास के अतिरिक्त 'जन इतिहास' रचा जा सकता है। इन सबमें राष्ट्रीय चेतना के स्वर हैं। लोक में अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष की आग भीतर ही भीतर कैसे सुलग रही थी, इसकी एक मार्मिक झलक वहाँ के लोकगीत में देखिए। बच्चे के नामकरण के समय एक महात्मा से ग्रामीण प्रार्थना कर रहा है-

सामी जी अइहें मोर गाँव, रखीहें मोर बचवा के नाम,
लड़ी उ लड़ाई अंग्रेजवन से।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध स्तरों में विभाजित भारतीय समाज और 'लोक' के मन में राष्ट्रवाद का कैसा रूप था राष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्ध में एवं अंग्रेजों के विरोध में उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ थीं, इन सबकी खोज बाकी है। राष्ट्रीय आन्दोलन

की ऐसी अनेक घटनाएँ और उनसे जुड़े लोग हैं, जिनके विषय में इतिहास मौन है। इनका चित्रण केवल लोक साहित्य में मिलता है। लोक मन राष्ट्र के प्रति पूर्णत: समर्पित है। बुद्धिजीवियों की भाँति उसमें चेतना

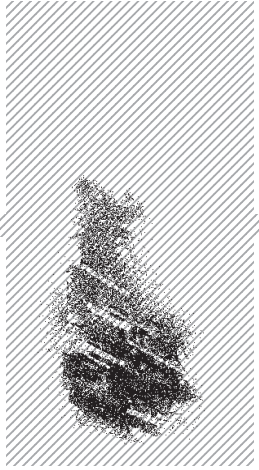

का विकास भले ही कम हो, परन्तु जो कुछ उसने व्यक्त किया है, वे सीधी सरल भाषा में उसके मन के सच्चे उद्‌गार हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. नरेन्द्र धीर, हँसता गाता पंजाब, पृ. 93-94
2. वही, पृ. 94-95
3. डॉ. भीम सिंह मलिक, हरियाणा लोक साहित्य : सांस्कृतिक संदर्भ, पृ. 152
4. वही, पृ. 161-62
5. डॉ. सत्या गुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृ. 126
6. डॉ. हर्ष नन्दिनी भाटिया, ब्रजलोक गीत, पृ. 101
7. वही, पृ. 102
8. डॉ. सत्या गुप्त, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृ. 126
9. डॉ. भीमसिंह मलिक, हरियाणा लोक साहित्य : सांस्कृतिक संदर्भ, पृ. 162
10. बद्रीनारायण, लोक संस्कृति और इतिहास, पृ. 44

बुन्देली साहित्य में राष्ट्रीय एकता

लखन लाल खरे

लोक साहित्य को विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ प्रदान की हैं और इसके स्वरूप एवं महत्त्व का बहुविध वर्णन किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'लोक' शब्द की परिव्याप्ति ग्राम या जनपद के साथ-साथ नगर के अकृत्रिम जीवन जीने वाले लोगों तक मानते हैं।[1] श्री श्रीनिवास शुक्ल- लोक मानस में रमता, लोककण्ठ में गूँजता और लोकवाणी से मुखरित साहित्य को लोकसाहित्य कहते हैं। [2] दरअसल लोकभाषा और लोक वातावरण में लिपटा अन्तरंग एक है। [3]

वस्तुत: लोक साहित्य अपने रूढ़ अर्थ में एक सीमाबद्ध अर्थ की प्रतीति कराता है। इसका पृथक अस्तित्व है, पृथक शास्त्र है तथा पृथक सौंदर्य है। सूरज की पौ फटने से लेकर उसके डूबने व पुन: निकलने के अन्तराल में पनघटों, खेत-खलिहानों व धुआँ उठते खपरैलों के स्पन्दन की सघन-विरल अनुभूतियों का झांझ-मंजीरों सा निर्दोष स्वर ही लोकसाहित्य है।

लोक साहित्य, शिष्ट साहित्य का मूल है। शिष्ट साहित्य भारतीय संस्कृति से सुरभित है और भारतीय संस्कृति में ही राष्ट्रीय एकता के बीज निहित हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का आधार लोक साहित्य की सांस्कृतिक चेतना है। सांस्कृतिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय एकता की कल्पना करना व्यर्थ है। बुन्देलखण्ड का भौगोलिक, आर्थिक व राजनैतिक स्वरूप कुछ भी हो, परन्तु साहित्यिक रूप अत्यन्त समृद्ध है। बुन्देली गीत, किस्से-कहानियाँ, नाटक-लीला व लोकोक्ति-कहावतें (अहानें) आदि विशुद्ध बुन्देली संस्कृति की संवाहक हैं। इस संस्कृति का केन्द्रीय लक्ष्य अन्य लोक संस्कृतियों की भाँति मानव को मानव से जोड़ना है। 'लोक-संस्कृति के संस्कारों, त्यौहारों, रीति-रिवाजों आदि ने व्यक्ति को व्यक्ति और परिवार से बाँधने का ऐसा प्रयत्न किया है कि मशीनी यांत्रिकता और विज्ञानी बौद्धिकता के लगातार हमले उसे तोड़ नहीं सके।' [4]

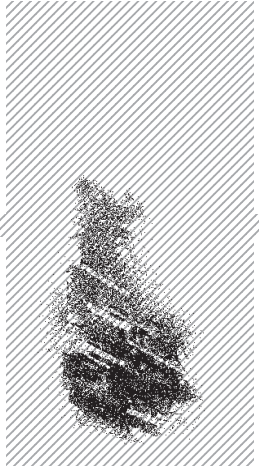

बुन्देली लोक साहित्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि लोक-जीवन-व्यापार के प्रस्तुतिकरण के साथ ही उसमें राष्ट्रीय एकता की गहन अभिव्यंजना हुई है। पूर्व में, देश में राष्ट्रीयता की परिभाषा स्थिर नहीं थी। आदिकाल मध्ययुग में अपने राजा व राज्य के प्रति समर्पण व श्रद्धा की भावना ही राष्ट्रीयता थी। आल्हाकार जब 'जा को बैरी सुख से सोबे, ऊ के जीवन को धिक्कार'- का उद्घोष करता है तो व्यष्टिगत प्रसंग होते हुए भी इसमें समष्टिगत चेतना की अनुगूँज ध्वनित होती है।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम की विफलता से देश में निराशा व्याप्त हो गयी, किन्तु गाँधीजी के चमत्कारी व्यक्तित्व ने निराश जन-मन में आशा और उत्साह का संचार किया। बुन्देलखण्ड का लोक कवि गा उठा-

देखो टूटे न चरखा को तार, चरखवा चालू रहै।
गांधी महात्मा दूल्हा बने हैं, दुलहिन बनी सरकार,
सबरे वालंटियर बने बराती, नउवा बनो थानेदार।
गांधी महात्मा नेग खों मचले, दायजे में मांगें सुराज,
ठांड़ी गवरमेण्ट बिनती सुनाबे, जीजा गौने में देबै सुराज।[5]

लोक कवि का यह रूपक रोमांचित कर देने वाला तथा मनोहारी है। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में आम भारतीय अंधा होकर अपनी लीक से भटक गया है। लोक कवि उसे राह पर लाने हेतु सचेष्ट है-

पढ़ लई अंग्रेजी नयी फैशन बनाई। कि सुनो मोरे भाई।
पहरें पेण्ट और कोट, लगो चश्मा और टोप
लगी चमड़े की गोट।
इंगलिस में बोली बोलें माई डियर आई
कि सुनो मोरे भाई।
पियें सिगरेट और चाय, मुर्गी अण्डा रोज खांय
घूमन साइकल पे जांय।
मूंछन की कर दई है पूरी सफाई, कि सुनो मोरे भाई।

यह चित्र केवल बुन्देलखण्ड का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश का है। हम अपनी जड़ों से जितने कटते जा रहे हैं। उतने ही दिनों-दिन सूखते जा रहे हैं। इसी स्थल में वह विषकीट छुपा है, जो राष्ट्रीय एकता को डस रहा है और जीवन मूल्य तथा आदर्श संज्ञाहीन होते जा रहे हैं। इसका उत्तरदायित्व किसी और पर नहीं, स्वयं हम पर है। तभी तो कवि व्यथित होकर कहता हैं-

अपनी आदत आपने, आपहिं लई बिगार।
कहा करे मजहब तुम्हें, कहा करे करतार॥[6]

राष्ट्रीय चेतना का भव्य महल भावात्मक एकता की नींव पर अवलम्बित होता है। बुन्देली लोक साहित्य में यह तत्त्व पर्याप्त रूप में विद्यमान है। बुन्देलखण्ड की बऊ, ओरी अथवा मतारी जब- 'सो जा बारे बीर, बीर की बलैंया ले गई गंगाजी के तीर' - में ममता की सम्पूर्णता भरकर लोरी गाती है तो वह स्वर एवं ममता मात्र हिन्दू माँ की नहीं होती वरन् मुसलमान, ईसाई तथा सिख की भी होती है। क्योंकि माँ, माँ होती है, उसकी ममता हिन्दू या मुसलमान में विभक्त नहीं होती। बुन्देलखण्ड की ग्राम्य बाला राधा के साथ जब सलमा भी नारे सुअटा गाती हुई ढरिया सिर पर धरकर नौरता खेलने निकलती है, तब कहीं कोई अप्रिय हलचल नहीं होती। सब कुछ बिलकुल सहज भाव से होता है। ग्राम के ठाकुरजी को जो लोग जलविहार के लिए रथ में बैठा कर ले जाते हैं, वही ताजियों को भी अली का विमान मानकर कंधे पर उठाते हैं और बाल-वृद्ध सभी कष्टनिवारणार्थ विमान के नीचे से निकलते हैं। भागवत कथा का वाचन करते हुए कथावाचक जब भावविभोर होकर 'हरि हाथ सों ले गयो माखन रोटी'- का झूमकर गायन करता है, तभी श्रोताओं को रोमांच हो आता है। तब लगता है कि श्रीमद्भागवत पुराण का लेखन वेदव्यास और रसखान ने मिलकर किया है। बुन्देलखण्ड की इस 'भइयाबन्दी' का आधार कितना सशक्त व हृदयग्राही है। बुन्देली लोक साहित्य इसी समभाव का पोषक है-

कृष्ण, मुहम्मद, देवचन्द, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे, दुख मेटे तत्काल॥[7]

प्रेम, करुणा, सहयोग व भ्रातृत्व- राष्ट्रीय एकता के अनिवार्य तत्त्व हैं। बुन्देली लोकसाहित्य में इनका पर्याप्त समायोजन है। करुणावतार लाला हरदौल के महान त्याग को वाणी देकर

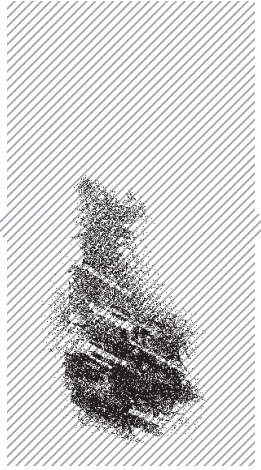

लोकसाहित्य धन्य हो गया-

भौजी भोजन परसें,अँसुआ चौमासे से बरसें।

वहीं प्राणोत्सर्ग द्वारा स्वामीभक्ति की चरम परिणति प्रस्तुत की- उनके सेवक सांवले मेहतर ने। बुन्देलखण्ड का जन-जब-जब भी इस करुण गाथा को तन्मय होकर गाता है, तो आँखें बरबस बरसने लगती हैं और उसका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। वे आगे गाने की स्थित में नहीं रह जाते। लोक साहित्य ने हरदौल की करुणा और मेहतर बाबा के नि:स्वार्थ त्याग को बिना किसी भेदभाव के अमर कर दिया-

गाँव-गाँव में चौंतरा पूजत हैं नरनार।
मैंतर बाबा के उतई, बनें चौंतरा चार॥[8]

ईसुरी, गंगाधर व्यास, एनसाईं, घासीराम व्यास, बिहारीलाल भट्ट आदि अनेक कवियों के साहित्य में राष्ट्रीय एकता के सम्वर्द्धक तत्त्वों के दिग्दर्शन होते हैं। इसी प्रकार बुन्देली लोक-कथाओं, नाटकों तथा कहावतों में इनकी छाप परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ

1. बुन्देली लोक काव्य, भाग 1, 2 : डॉ. बलभद्र तिवारी
2. राष्ट्रगौरव पत्रिका, छतरपुर , मई, 1993
3. सांस्कृतिक एकता और समकालीन हिन्दी काव्य (ग्वालियर) सम्पाद. डॉ. राधावल्लभ शर्मा
4. वही
5. राष्ट्र गौरव पत्रिका, छतरपुर, 95-96 सं. दशरथ जैन
6. वही, वर्ष 1994
7. मामुलिया, त्रैमासिक, (छतरपुर) सं. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, अंक 22-24
8. ओरछा का इतिहास : डॉ. लक्ष्मण सिंह गौर

छत्तीसगढ़ी गीतों में राष्ट्रीय चेतना

श्यामलाल चतुर्वेदी

स्वतंत्रता प्राप्ति की उत्कंठा से, राष्ट्रीय भावनाओं को जन मानस में भरने के लिए, जब यत्र-तत्र कतिपय विभूतियों ने विभिन्न क्षेत्रों में कार्य प्रारम्भ किया तब सामान्य लोगों ने पहले उसे साश्चर्य देखा, शनैः-शनैः समझने की चेष्टा की और परखने का प्रयास भी। धीरे-धीरे लोगों को अहसास होने लगा कि ये घर फूँक तमाशा करने वाले मनस्वी, समाज और देश हित के लिए स्वत्त्व की आहुति देकर 'सर बांधे कफनवा' निकल पड़े हैं। कारागार की काली कोठरी के कष्टों से इन्हें कोई घबराहट नहीं पद प्रतिष्ठता की, कोई चाहत नहीं, इन्हें तो आम जनता के हाथों बादशाहत ही अभीष्ट है। तब सामान्य नागरिकों में से लोग आकर जन कल्याण के इस पुनीत कार्य में भागीदार होने लगे। अपने को जोड़ने के उपक्रमों में उन्होंने उदार चेता त्यागी महापुरुषों के गुणगान, गोरी सरकार के विरुद्ध बगावती विचारों के विस्तार, स्वदेशी सामग्रियों की उपयोगिता, स्वभाषा-स्नेह, गौरव गाथाओं के गुणानुवाद आदि अनेक बातों का अवलम्बन अंगीकार किया। इन सबके विस्तार के लिए गीतों का भी सहारा लिया जाने लगा क्योंकि भाव सम्प्रेषण की विलक्षण शक्ति तो गीतों में ही होती है। वन्दे मातरम्, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, शहीदों की टोली निकली, सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, चरखा चला चलाकर लेंगे स्वराज लेंगे, घर बार छोड़कर के जायेंगे जेलखाना आदि ऐसे अनेक गीतों ने हजारों-हजारों लोगों के जीवन में देश की आजादी के लिए मर मिटने की तमन्ना का संचार किया था। जागरण के प्रलयंकारी प्रवाह की उत्ताल तरंगों ने जब लोकजीवन का संस्पर्श किया तब ऐसे ही भाव लोक भाषाओं की निर्झरिणी से निसृत होने लगे थे। फिर यह कैसे सम्भव था कि छत्तीसगढ़ का अंचल अछूता रह जाता? खेतों और खलिहानों में अनपढ़ों की अनगढ़ शब्दावलियों ने राष्ट्र भक्ति की चेतना को शक्ति देने के लिए आसक्ति के कारण अभिव्यक्ति दी। स्वतंत्रता प्राप्ति की ललक ने शृँगार सराबोर ददरिया के चोले को बसन्ती रंग में रंग डाला और तब स्वाधीनता का सन्देश गूँज उठा था। छत्तीसगढ़ी ददरिया की इन पंक्तियों को देखिए-

गोरी के अँचरा, भुइयां म लूटे रे।
गांधी बबा के तो झंडा, दुनिया म फिर रे॥

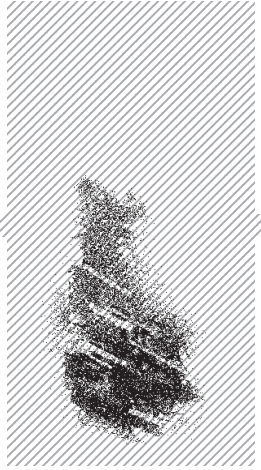

नानमुन टूरा पहिरे ला पागी रे।
गांधी बबा के कहे म सब पहिरव खादी रे॥
तिवरा के दार म, बनाये भाजी रे।
फिरंगी होंगे राजा, नँदागे खाजी रे॥
दिया मांगे बाती, बाती रे मांगे तेल।
सुराज लेबो अंगरेजवा, कतेक देबे जेल॥
नावा रे घर मा लगाये थुनिहा।
गांधी बबा के कहे मा, चलत हे दुनिया॥
खादी ला पहिरा चरखा ला काता रे।
ये सुराज के लड़ाई ला, जमो झन बांटा रे॥

एक ओर जहाँ 'मसि कागज छूयो नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ' के हामी लोक गायकों ने आन्दोलित करना प्रारम्भ किया तो दूसरी ओर जन भाषा के कवियों ने भी अपनी कलम-कुठार आघात करने के लिए उठा लिया था-

हमला काबर सताथव गा अंगरेजवा
हमला काबर सताथव गा।
गोबर के उसने चाउर लाये,
धुनहा गहूं थमाये।
पैसा झींके के रस्ता बनाये
कंट्रोल के धक्का खवाथव गा।
मट्टी तेल दुइ पैसा के लाये।
तउनो ल दूना भाव लगाये।
झाला फाला कपड़ा लाये
हावँय अड़ानी छत्तीसगढ़िया
भोला भाला नाम धराये
हर बात म बैकूफ बनाके,
हमला नँगरा बनाथव गा।
हमर देस के चीज लेगवाथ स
भारत ल फांका मस्त बनवाथ स
लन्दन ला खूब सजबाथ स
हमर देस ला साख बनाथस गा
अंगरेजवा हमला काबर सताथव गा॥

एक दूसरी कविता में अधिकाधिक संख्या में भाग लेने का आवाहन-

जागव, जागव गा मोर भइय्या।
तुम गोरा के भगवइय्या।
देखव अभी अभी कुछ कर लव,
गांधी हवय बतइय्या।
सूते रइहव कबले भइय्या
छत्तीसगढ़ के रहवइय्या
बड़े बड़े नेता चिल्लावत हें
जागव गा मोर भइय्या॥
दूसर जिला म लाठी चलत हे,
गोली चलत हे गा मोर भइय्या।
देस के खातिर प्रान देवत हें
'चिंव' नहिं करथव गा मोर भइय्या॥
जेल जात हें खुसी खुसी म
गद्दा तकिया के सोवइय्या
देस के खातिर गाना गाथन,
सामिल होवव गा मोर भइय्या।
मातृभूमि के लाज बचावव
सब भारत के रहवइय्या॥

उस समय अनेकों कवियों ने भाव पूर्ण कविताएँ लिखी थीं। एक कविता में विद्रोही स्वर की प्रखरता देखिए-

तैं हर लूट डारे हमला रे! गोरा।
तैं हर बिलायत ले भिखमंगा,
भिखारी बन के आए।
पर के मुलुक म तैं रे नंगरा,
बैपारी बन के आए
लोटा न थारी फक्कड़ राम, गिरधारी बनके आए
अउ राजा बने बर रे बुजापुत, रोजगारी बनके आए
मुंह के कौंरा ल हमर नँगा के
पारे हमर पेट म फोरा॥
फेर हाड़ा गोड़ा ल टोरे,
फोरे हमर माड़ी कोहनी
गरीब मन के हित करत हौं
कहि के दुनिया म पीछे ढिंढोरा।
तैं हर लूट डारे हमला रे गोरा॥

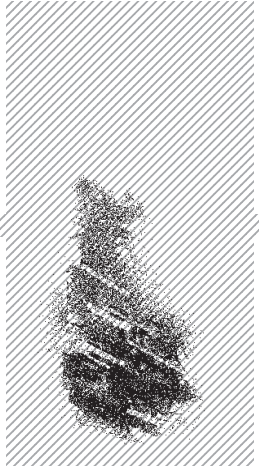

अंग्रेजी शोषण के विरुद्ध बेझिझक बयानी करते हुए कवि कहता हैं-

अंग्रेज तैं हमला बनाये कंगला।
सात समुंदन बिलायत ले आके,
हमला बनाये भिखारी।
हमला नचाये तैं बेंदरा बरोबर
बन गये अपन मदारी॥
चीथ चीथ के हमर चेथी के मास ला,
अपन बर तैं हर टिकाये बंगला॥
चिथरा पहिरथन कथरी दसाथन।
पेज पसिया पी के अघाथन॥
चिरहा कमरा अउ टूट हा खुम्हरी म
घिलर घिलर के कमाथन॥
हमर रकत ला चुहक के रे गोरा,
लाल करे अपन अँग ला।
अंग्रेज तैं हमला बनाये कंगला॥

आजादी के आन्दोलन के समय टूटे-फूटे शब्दों में तत्कालीन सरकार के विरुद्ध कही गयी बातें, बिजली की तरह असरकारी होती थीं। एक कम पढ़े लिखे सत्याग्रही ने कोटमी बाजार में एक टीले पर खड़े होकर जब बोलना प्रारम्भ किया कि क्षण भर में सारा बाजार वहाँ एकत्रित हो गया था। जिस समय उसने कहा 'दुलहा बने महात्मा गांधी, दुल्हिन बनी ब्रिटिश सरकार' सुनते ही आन्दोलित जन समूह ने तालियों की गड़गड़ाहट से अपना समर्थन प्रकट किया था। कहने का आशय यह है कि तब, कहने वाले कर्म वीरों की कुर्बानी की कद्र की जा रही थी, शब्द सौन्दर्य और भाव प्रवणता की आवश्यकता गौण थी। सूधे-सूधे शब्द में सीधी-सीधी बात से वशीकरण हो रहा था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'और' लोग तो कुछ और होने लगे कई लोग काबिले गौर बनने की दौड़ में इस ठौर से उस ठौर हो गये परन्तु राष्ट्र भाव की चेतना को जगाये रखने में कवियों ने तब से अब तक कोई कसर नहीं की है। चेतना जागृत करने वाली अनेकों कविताओं की रचना तत्समय है। उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए-

भइया भइगे सुराज, भइया भइगे सुराज,
अब तो दसा ला सुधारा रे।
गांव गांव मा मेल करावा
सहर ले सुन्दर सोर लगावा
परजा के राज ल परजा सम्हारय
बिनती 'विप्र' हमारा रे॥

एक दूसरी कविता में-

अब आये हे सुराज तेला नइ छोड़ी।
घर घर म सब बनव सिपाही।
अब आये हे अपनेच पाही।
कोन्नो बैरी देस मां आहीं।
मारे बिगर नइ छोंड़ी॥

छत्तीसगढ़ के अनेक लोकप्रिय गायकों-कवियों ने चेतना जगाने के लिए गीत गाये-

जय माटी जय जनम भूमि के,
जय हो भारत मइया के।
बोलो जागौ जुरिया जावै
रूप धरो बिर सैय्या के
अरे नांग तैं काट नहिं त,
जी भर के फुफकार तो रे!
अरे बाघ तैं मार नहीं तौ
गरज गरज धुतकार तो रे!
एक न एक दिन ये माटी के, पीरा रार मचाही रे।
नरी कटाही बैरी मन के, नवा सुरूज फेर आही रे॥

एक अन्य गीत में-

कन्झागे आगी जिव के जिव म, भितरे भितर गुंगवाइस।
अतियाचार घलो दिन्नो दिन, अंगरेजन के अकताइस।
भड़किस आगी जहाँ तहाँ, जर उठिस क्रांति के चिनगारी।
जागिन माटी के बेटा, उमड़िन सब एक्के दारी॥
मारव काटव मचे लगिस सब मथिन दही कस खदर बदर।
तभे महतमा गांधी बोलिस 'अंग्रेज छोंड़व देस हमर॥'

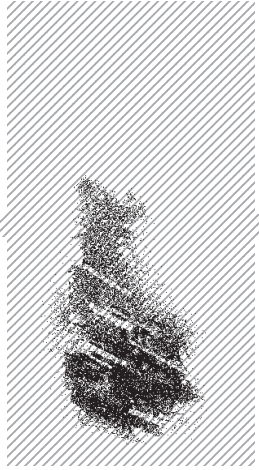

एक क्रांतिकारी कवि का शंखनाद सुनिये–

चलव क्रांति नेवहार मनाये
जांगर पेरव माटी कोड़व
होल्ले बारव भेद भाव के,
आपस मा झन माथा फोरव
चीन्हौ छत्तिसगढ़िया बैरी।
सोसन के सासन ला टारौ
गुंगवावन हे कबले छाती,
लहू डार के मसाल बारौ॥

एक दीवानापन दृष्टव्य है–

तुंहला आज कसम हे संगी
तुंहरे खेती खार के।
चला देखादी आज लुटेरा मन ला, हम ललकार के।
जउन मुसीबत आवै साथी झेले बर तैयार रहो।
लहू के होली पड़ै खेलना, खेले बर तैयार रहो॥

एक कवि इन शब्दों में आवाहन करता है–

आवव गोहरावव सब संगी,
पांव बढ़ावव हांथ चलावव
मिहनत के मारे तो पथरा
मन मा फूल घलो खिलथे गा॥
काम करव तम्भे जिनगी हे
ठेलहा बइठे जियन अकारथ
सदा काल के परिपाटी हे,
बूड़व तौ मोती मिलथे गा॥

छत्तीसगढ़ी गीतों में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए अनेक कवियों ने लिखा। स्वातंत्र्य पूर्व की भाव भूमि और स्वातंत्र्योत्तर पृष्ठभूमि में परिवर्तन होने से कथ्य बदल गये हैं किन्तु राष्ट्र को सुदृढ़, सुख-समृद्ध बनाने की उत्कट अभिलाषा से अभिभूत कवि गण और लोक गायक सभी, चैतन्य के चक्र को चलाये हुए हैं। उसका प्रभाव भी जन मानस में पड़ने की प्रतीति है।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम : अवधी-बुन्देली गीतों में

डॉ. परशुराम विरही

सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम वास्तव में पहला नहीं था। उसके पहले अनेक बार अनेक स्थानों पर अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह हो चुके थे। जिस असंतोष और मुक्ति-कामना ने उन विप्लवों को जन्म दिया था, उसका व्यापक और महान विस्फोट 1857 के संग्राम के रूप में हुआ था, जिसमें राजाओं, नवाबों, सामंतों, सैनिकों के साथ सामान्य जनता भी उठ खड़ी हुई थी।

साहित्यिक भाषा के इतिहास प्रसिद्ध कवियों के काव्य में प्रथम स्वाधीनता संग्राम की अभिव्यक्ति न के बराबर मिलती है, जबकि लोक भाषाओं या बोलियों के कवियों के काव्य में उसकी विशद और यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। लोक-भाषाओं या बोलियों के रचनाकारों के गीतों को लोक ने गाकर उन्हें लोक गीतों की मान्यता प्रदान की। अवध और बुन्देलखण्ड महाक्रान्ति के प्रमुख केन्द्रों में थे। शंकरपुर के राना वेणीमाधव सिंह के समकालीन लोक-कवि दुलारे ने उनके संघर्ष का वर्णन इस गीत में किया-

अवध माँ राना है मरदाना।
पहिल लड़ाई भै बक्स माँ सेमरी के मैदाना। अवध माँ.....
उहाँ का कूच भयो पुरवा कौ तबै लाट घबराना।
नक्की मिले, मानसिंह मिलिगे मिले सुदर्सन काना।
क्षत्री वंश एक ना मिलिहै करिहै कौन बहाना।
भाय भतीज सबै बुलवायौ हमरी लेउ सला ना।
तुम तौ जाय अंगरेजन मिलिहौ हम हू का भगवाना।
शंकरपुर के बड़े लड़ैया घोड़ा चढ़े मनमाना।

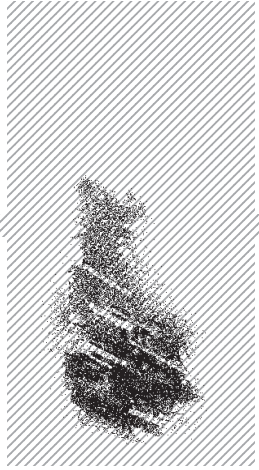

कहै दुलारे सुन पिय प्यारे उत्तर कियौ पयाना।
अवध माँ.....

एक लोकगीत में विद्रोह के समय हुई लूट-पाट के बारे में एक स्त्री अपने पति के भोलेपन के बहाने से कहती है-

लोगों ने लूटे शाल दुशाले, मेरे प्यारे ने लूटे रूमाल।
मेरठ के सदर बाजार में मेरे सैयाँ लूट ना जानैं।
लोगों ने लूटे प्यारी कटोरे, मेरे प्यारे ने लूटे गिलास।
मेरठ के सदर बाजार में, मेरे सैयाँ लूट ना जानैं॥
लोगों ने लूटे गोले छुहारे, मेरे प्यारे ने लूटे बादाम।
मेरठ के सदर बाजार में, मेरे सैयाँ लूट ना जानैं॥
लोगों ने लूटीं मुहर अशर्फी, मेरे प्यारे ने लूटे छदाम।
मेरठ के सदर बाजार में, मेरे सैयाँ लूट ना जानैं॥

फैजाबाद जिले में गाए जाने वाले एक लोक गीत में किसी राना बहादुर की वीरतापूर्ण लड़ाई की बात कही गई है। राना बहादुर का नाम नहीं दिया गया है। अनुमान यही होता है कि राना बहादुर और कोई नहीं राना बेनीमाधव बक्स सिंह ही थे। लोक गीत में कहा गया है-

राना बहादुर सिपाही अवध में, धूम मचाई मोरे राम रे।
लिख लिख चिठियाँ लाट ने भेजीं, आन मिलौ राना भाई रे।
जंगी खिलत लंदन से मँगा दूँ, अवध में सूबा बनाई रे।
जवाब-सवाल लिखा राना ने, हमसे न करौ चतुराई रे।
जब तक प्रान रहैं तन भीतर, तुम कन खोद बहाई रे।
जमींदार सब मिल गए गुलखान, मिल मिल कै कपाई रे।
एक तो बिन सब कट कट जाई, दूसरे गढ़ी खुदवाई रे।

इसमें कहा गया है कि राना बहादुर योद्धा है जिसने धूम मचा रखी है। अंग्रेज नाई ने उन्हें अनेक पत्र लिखे जिनमें राना को अवध का सूबेदार बनाने और लंदन से खिलअत (राजा की ओर से वस्त्र-तलवार आदि भेंट करना) मँगाकर दी जायगी। राना ने उत्तर दिया कि अपनी चतुराई न दिखाओ। मैं प्राण रहने तक तुम्हें खोदकर मिटा दूँगा। गुलखान कहते हैं कि जो जमींदार अंग्रेजों से मिल गए उन्होंने क्या पाया? एक तो राना के सामने वे कट मरे दूसरे उनके भवन खोद डाले गए।

संडीला क्षेत्र में एक लोक गीत प्रचलित रहा, जिसमें राजा गुलाब सिंह के संग्राम का वर्णन है-

राजा गुलाब सिंह रहिया तोरी हेरूँ, एक बार दरस दिखावा रे।
अपनी गढ़ी से बोले गुलाब सिंह-सुन रे साहब मोरी बात रे।
पैदल भी मारे, सवार भी मारे, मारी फौज बेहिसाब रे।
बाँके गुलाब सिंह रहिया तोरी हेरूँ, एक बार दरस दिखावा रे।
पहली लड़ाई लखनागढ़ जीते, दूसरी लड़ाई रहीमाबाद रे।
तीसरी लड़ाई संदीलवा में जीते, जामू में कीना मुकाम रे।
राजा गुलाब सिंह रहिया तोरी हेरूँ, एक बार दरस दिखावा रे।

इस लोक गीत में प्रथम स्वाधीनता सेनानी राजा गुलाब सिंह की वीरता का वर्णन है। उनके दर्शन पाने के लिए लोग राह देखते हैं। अंग्रेजों को उन्होंने बताया कि अंग्रेजों की सारी फौज उन्होंने काट डाली। उन्होंने लखनागढ़, रहीमाबाद और संडीले की लड़ाईयाँ जीतकर जामू में पड़ाव डाला।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की सर्वाधिक चर्चित नेता थीं झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई। उनके बारे में एक लोक गीत है, संभवत: जिससे प्रभावित होकर सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी लोक-प्रिय कविता, 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी', लिखी थी। लोक गीत इस प्रकार है-

खूब लड़ी मरदानी, अरे भाई झाँसी वारी रानी।
सिगरे सिपाइन खों पेरा जलेबी, अपन खाई गुरधानी।
अरे भाई झाँसी वारी रानी।
गुरजन गुरजन तोपें लगै दईं, गोला चलाए अस्मानी।
अरे भाई झाँसी वारी रानी।
छोड़ मोरचा लसकर खों दौरी, ढूंड़े मिलै न पानी।
अरे भाई झाँसी वारी रानी।

इसमें कहा गया है कि मर्दानी झाँसी वाली रानी खूब लड़ी। सभी सैनिकों को पेड़ा और जलेबी खिलाई जाती थीं, किन्तु रानी खुद गुड़धानी खाती थीं। बुर्जों पर उन्होंने तोपें लगवा

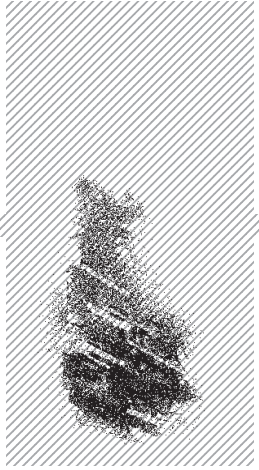

दी थीं जिनसे आसमानी गोला चलते थे। पानी की कमी के कारण वे मोर्चा छोड़ सेना के पास दौड़ी और सेना का प्रबन्ध करने लगीं। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता और प्रबन्ध कौशल के बारे में अनेक महाकाव्य लिखे गए, जो बुन्देली के गौरव ग्रन्थ माने जाते हैं। लोक-गीतों की अच्छी खासी संख्या है, जो बुन्देलखण्ड में विशेषत: झाँसी क्षेत्र में गाए जाते हैं। रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान के बाद जो दुर्दशा हुई उसका वर्णन इस गीत में है-

कट गई झाँसी वारी रानी।
झाँसी वारी रानी कट गई, झाँसी वारी रानी लाल।
चौतरफा सें आफत आ गई, झाँसी भई बिरानी लाल।
घर-घर बिड़न लगे अंगरेजा, लूटत हैं रजधानी लाल।
काटत हात-पाँव रजपूतन, सुनत न काऊ बानी लाल।
बउयें बिटियाँ पकर लेत हैं, करत रात मनमानी लाल।
खान फकीरे ऊदम मच रओ, सबरी बात नसानी लाल॥

अर्थात् युद्ध क्षेत्र में झाँसी वाली रानी मार दी गईं तो चारों तरफ से संकट आ गया। घरों में घुसकर अंगरेज लूट-पाट करने लगे। राजधानी को लूट लिया और राजपूतों के हाथ-पैर काट डाले। अंगरेज किसी की नहीं सुनते, वे बहू-बेटियों को पकड़ लेते हैं, मनमानी करते रहते हैं। रानी के बलिदान से सारी बात बिगड़ गई।

जिला पन्ना के अजयगढ़ के विद्रोही नेता लछमन सिंह की वीरता का वर्णन इस गीत में देखिये-

लछमन सिंह फिरत हैं दौआ।
मारत जात लखत अंगरेजन, काटत ककरी जौआ।
भगे फिरत अंगरेजा बेकल, दौआ हो रओ हौआ।
बाँदा सें कोठी तक मारे, फौज फिरंगी कौआ।
सुन लेओ सब कान खोलकें, भाग चले लखनौआ।

लछमन दौआ शत्रुओं को मारते हुए घूमते हैं। वे अंगरेजों को ककड़ी के नये फल की तरह काट डालते हैं। अंगरेज उनसे डरकर लखनऊ की ओर भागते हैं। उन्होंने कौआ के समान धूर्त अंगरेजों की फौजों को बांदा से लेकर कोठी तक मार डाला।

मंडला के राजा शंकरशाह ने माता कालिका की प्रार्थना की थी, इस छंद में-

मूँद मुख डंडिन को चुगलन को चबाई खाई
खूँद दौड़ दुष्टन को सत्रुन- संहारिका।
मार अंगरेज रेज करि देई मात चण्डी
बचै नहिं बैरी एटी प्रलयंकारिका।
संकर की रच्छा कर दास प्रतिपाल कर
दीन की सुन टेर आकैं मात प्रनपालिका।
खाय लेई म्लेच्छन कों झेल नहिं करौ अब
भच्छन कर ततच्छन घोर मात कालिका॥

इस छन्द के कारण शंकरशाह और उनके राजकुमार को अंगरेजों ने तोप से उड़ा दिया था। राजा शंकर शाह ने माता कालिका से प्रार्थना की थी कि अंगरेज म्लेच्छों का वह सर्वनाश कर दें और शंकर की रक्षा करें।

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में सामंतों और सैनिकों के साथ आम जनता थी और साधुओं ने भी उसमें भाग लिया था। गुसाईं श्यामगिरि ने तीन हजार साधुओं को एकत्र किया और कानपुर, बिठूर तथा चित्रकूट में अंग्रेजों से युद्ध किया था। एक लोक गीत है-

स्यामल गिरि भोरईं आ धमके।
तीन सहस साधू लै धाये अंगरेजन पै बमके।
कानपुर से भगे फिरंगी पुन बिठूर जा चमके।
होन लगी तकरार रार फिर आन फिरंगी ठमके।
सात दिना लौ भई लराई गिरी गुसाईं हुमके।
काट कूट के सबई फिरंगी चित्रकूट पै धमके।
रेवाराम देख लेव जा गत, आन मिलो सब जमके।

श्यामल गिरि अचानक तीन हजार साधुओं को लेकर आ गए और अंगरेजों पर आक्रमण कर दिया। कानपुर और बिठूर में सात दिनों तक लड़ने और अंगरेजों को हराने के बाद वे चित्रकूट के युद्ध में पहुँचे। अंगरेजों के विरुद्ध सबको मिल जाना चाहिए और जमकर लड़ना है।

इस महाक्रांति में महिलायें भी लड़ी थीं। बांदा की क्रांतिकारी

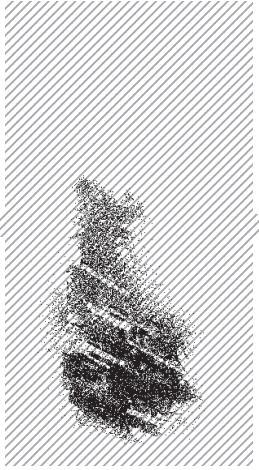

शीला देवी के युद्ध का वर्णन है–

बांदा लुटो रात कें गुइयाँ।
सीला देवी लड़ी दौर कें, संग में सोक मिहरियाँ।
अंगरेजन ने करी लड़ाई, मारे लोग लुगइयाँ।
गिरि गुसाईं तब दौरे हैं, लरन लगे भौ मइयाँ।
भगीं सहेली तब गाँवन सें, लैके बाल मुनइयाँ।
गंगा सिंह टेर कें रै गए, भगों इतै ना रइयाँ।

एक स्त्री अपनी सहेली से कहती है कि रात में बांदा लुट गया। शीलादेवी दौड़कर आईं और सौ महिलाओं को साथ लेकर उन्होंने युद्ध किया। अंगरेजों ने नर–नारी सभी को मारा। तब गिरि गुसाईं दौड़े (कंचन गिरि) और अपने साधुओं को लेकर लड़ने लगे। अंगरेजों ने शीला देवी का सिर काट लिया। गाँवों से सहेलियाँ बाल–बच्चों को लेकर भागीं कि अब यहाँ नहीं रहना है।

अनेक लड़ाईयों और क्रांतिवीरों के बारे में अनेक गीत हैं। यह एक चुनौती भरा लोक–गीत है–

लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झाँसी भरोसैं ना रहियौ।
जहाँ तोप चलें, गोला चलै, भालन की हू है मार। फिरंगी.....
जहाँ सीस हथेली लै चलै, जमराजा के सिरदार।
लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झाँसी भरोसै ना रहियौ॥

अंग्रेजों, झाँसी के भरोसे मत रहना। लोहागढ़ का किला कठिन है। जहाँ से तोपें, गोले चलते हैं और भालों की मार होती है। जहाँ के वीरों के सिर यमराज हथेली पर लेकर चलते हैं।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम और निमाड़ के आदिवासी

डॉ. शिवनारायण यादव

विन्ध्याचल और सतपुड़ा की सुरम्य पर्वत शृँखलाओं से घिरा और पवित्र नर्मदा की धारा से सिंचित निमाड़ का क्षेत्र सदैव ही विदेशी शासकों द्वारा ललचाई निगाहों से देखा जाता रहा। इस क्षेत्र के घने वन और उपजाऊ माटी किसे न सुहाते। भारत को उत्तर व दक्षिण के खण्डों में विभाजित करने वाली नर्मदा ने आक्रांताओं से लम्बे समय तक दक्षिणी भारत को सुरक्षित रखा था, किन्तु मालवा के सूबे पर मुस्लिम आधिपत्य कायम हो जाने के बाद नर्मदा को पार कर दक्षिण विजय करना ही उनका लक्ष्य बन गया था। खिलजी तथा तुगलक सेना के बाद मुगल बादशाह अकबर ने नर्मदा पार की और दक्षिण का द्वार कहलाने वाला असीरगढ़ का अभेद्य दुर्ग जीत लिया। अपने इस अभियान के दौरान बादशाह अकबर ने निमाड़ के भीलों की जीवटता देखी थी। औरंगजेब तो निमाड़ के इन बहादुर लोगों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने मालवा के मुगल सूबेदार को विशेष हिदायत दी थी कि निमाड़ी लोगों को अधिकाधिक मुगल फौज में भरती किया जाए।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि पश्चिमी निमाड़ में फैला बड़वानी राज्य अपने स्थापनाकाल से भारत की स्वाधीनता तक एक पूर्ण संप्रभु स्वतंत्र रियासत के रूप में कायम रहा। यहाँ के राणा राजपूत शासकों ने कभी किसी की अधीनता नहीं स्वीकारी। इनकी फौज में प्रारम्भ से ही भील सिपाही थे। बड़वानी रियासत का अधिकांश भू-भाग पर्वतीय था, जो घने जंगलों से आच्छादित था। इन वनों में भील और भिलाले प्रमुख रूप से निवास करते रहे। इन आदिवासियों के मन में राणा शासकों के प्रति अपार श्रद्धा व आदर था। आज भी बड़वानी के राजमहल के समक्ष बने चबूतरे पर बैठकर दूर-दूर से आये आदिवासी अपने विवादों का स्वयं निपटारा करते हैं। उनकी यह मान्यता है कि राणा साहब के दरबार में सदैव न्याय होता है। इस परम्परा का उल्लेख यही दर्शाने वाला है कि निमाड़ के आदिवासी अपने स्वतंत्रता प्रेमी राणा के समान स्वयं भी स्वतंत्रता प्रेमी व स्वाभिमानी थे। यद्यपि उस समय तक वृहत् स्वतंत्र भारत की कल्पना उनके मस्तिष्क में न थी, किन्तु वे अपने राज्य की आजादी के प्रति पूर्णतः सतर्क थे। वे अंग्रेजों के

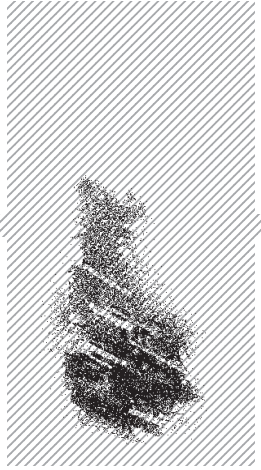

अत्याचारपूर्ण कारनामों से परिचित थे, जिन्हें वे निमाड़ की भूमि पर अपना प्रभाव नहीं जमाने देना चाहते थे।

विजय और शौर्य की श्रेष्ठ परम्परा वाला यह क्षेत्र 1857 के स्वतंत्रता संग्राम- के शंखनाद को सुनकर आखिर शांत कैसे रह सकता था। 1 जुलाई, 1857 की प्रात: इन्दौर के क्रांतिकारियों की तोपों ने जुल्म और अत्याचारों की प्रतीक रेसीडेंसी कोठी पर आग उगलनी प्रारम्भ कर दी। इससे प्रेरणा पाकर 2 जुलाई को महू के भारतीय सिपाहियों ने भी विद्रोह पताका फहरा दी। उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारा और उनके घरों में आग लगा दी।

उसी दिन महू के क्रांतिकारियों द्वारा चलाई गई तोपों की गर्जना मण्डलेश्वर में भी सुनाई दी। मण्डलेश्वर उन दिनों निमाड़ की गतिविधियों को संचालित व नियंत्रित करने वाला महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी केन्द्र था। अंग्रेजों का कोष भी मण्डलेश्वर दुर्ग में सुरक्षित रखा था। उस समय एस.जे. नाहर नामक भारतीय व्यक्ति निमाड़ का डिप्टी कलेक्टर व ज्वाइंट मजिस्ट्रेट था। उस पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने अंग्रेज सरकार के साथ विश्वासघात किया था और विद्रोहियों को उसने सहायता पहुँचाई थी। श्री नाहर ने अपनी सफाई देते हुए जो पत्र केप्टन आर.एच. किटिंग्स, निमाड़ स्थित पालिटिकल असिस्टेंट, मण्डलेश्वर को 24 अगस्त 1857 को लिखा वह काफी महत्त्वपूर्ण है। निमाड़ में स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत किस प्रकार मण्डलेश्वर से हुई इस बात का भी इस पत्र में उल्लेख है। नाहर ने लिखा- 'एक जुलाई की दोपहर मिस्टर किटिंग्स को केप्टन क्युमिंग का एक पत्र मिला जिसमें सूचना थी कि प्रात:काल से ही महू की ओर से तोपों की भारी गर्जना सुनाई दे रही है। मैंने वास्तविकता जानने के लिए दो सवारों को महू भेजा और अकबरपुर से एक इलेक्ट्रिक टेलिग्राम मिस्टर ड्यूरेण्ड को भेजा। सवार ने आकर सूचना दी कि इन्दौर से एक जुलाई की प्रात: से ही सम्पर्क विच्छेद हो गया है।'

सवार ने समाचार दिया कि इन्दौर में भी यूरोपियन व्यक्तियों को मार डाला गया है, केवल ड्यूरेण्ड दो तोपों के साथ सीहोर की ओर बच निकले हैं। महू के सभी यूरोपियन लोगों को किले में ले जाया गया है। यह सुनकर मैंने मण्डलेश्वर के सभी यूरोपियन व्यक्तियों को किले में एकत्रित करना चाहा जो एक मात्र सुरक्षित स्थान था। खजाना भी यहीं था। इसी समय अश्वारोही दल का जमादार मोहम्मद खान यह समाचार लाया कि होलकरों ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर दी है। अपने सवारों में से एक के पिता महेश्वर में गोलंदाज हैं, यहाँ खबर करने आये हैं कि 3 जुलाई को या अगली सुबह मण्डलेश्वर पर आक्रमण होगा, ऐसी स्थिति में मैंने भील सरदार को बुलाया और हर तरह से उन्हें प्रोत्साहित करते हुए आश्वासन दिया कि प्रत्येक विद्रोही को मार डालने पर उन्हें 25/- रू. का ईनाम दिया जाएगा। किन्तु यह महसूस किया गया कि उनमें लड़ने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। उन्हें सुरक्षा चौकियों से हटा लिया गया।

2 जुलाई की रात को अधिकांश समय तक व 3 जुलाई को दिन में महू से तोपों की गर्जना सुनाई देती रही। इसी समय भीलों ने एक माह पूर्व के वेतन भुगतान हेतु दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। बरकंदाओं में से भी कुछ ने दुर्ग के भीतर रहकर लड़ने से इन्कार कर दिया। दोपहर को कर्नल फेनविक के हस्ताक्षरयुक्त एक पत्र, जो उन्होंने बम्बई निवासी अपने पुत्र को लिखा था, यहाँ एक कुली द्वारा लाया गया। इसमें इन्दौर के विद्रोह, यूरोपियन व्यक्तियों की हत्या तथा ड्यूरेण्ड के देवगुराड़िया की ओर पलायन के विषय में लिखा था। यह पत्र खोलकर मण्डलेश्वर में पढ़ा गया। इन परिस्थितियों में मैंने श्रीमती किटिंग्स व अन्य यूरोपियन व्यक्तियों को नर्मदा नदी पार करने को कहा।

मैंने किले में अकेले ही रहने की इच्छा जाहिर की। श्रीमती किटिंग्स ने उन दो यूरोपियन व्यक्तियों के प्रति अविश्वास प्रकट किया, जिन्हें यह व्यवस्था सौंपी गई थी। ऐसी हालत में मैंने खजाने को तत्काल धूलिया स्थानान्तरित करने का निर्णय लिया। मैंने जमादार व सूबेदार को आदेश दिया, जिन्होंने आश्चर्यजनक तरीके से आदेश का पालन किया। अश्वारोही दल का जमादार व दफेदार आये और उन्होंने सूचित किया कि भीलों ने इस स्थान को छोड़ने से इन्कार कर दिया है। वे लोग किले के भीतर आ रहे हैं और यदि मैंने बहुत सावधानी नहीं बरती तो दंगा हो जाएगा। मेरे साथ महिलाएँ, बच्चे व दो यूरोपियन सज्जन थे, जिन्हें वहाँ से तत्काल हटाना आवश्यक था।

मैंने दो जमादारों और सूबेदारों को चार्ज सौंप दिया जो

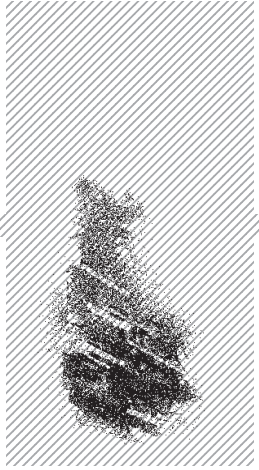

उनके सशस्त्र दल के साथ किले में थे। हमने नदी (नर्मदा) पार की और दूसरी ओर सारी रात ठहरे रहे। अगली सुबह (4 जुलाई) कसरावद गाँव के लिए चल दिये। वहाँ हम शाम तक रुके। वहीं आपका पत्र श्रीमती किटिंग्स को मिला जिसमें आपने चाहा था कि हम मानपुर आकर आपसे मिलें। इसके पहले मुझे सूचना मिली थी कि सरदारपुर में सभी (यूरोपीय) महिलाओं और बच्चों की हत्या कर दी गई है। अगली सुबह (5 जुलाई) को ये लोग सूलगाँव में मिले जहाँ से वे लोग पुनासा की ओर चले गए। 7 जुलाई को आपका संदेश मिला कि मैं मण्डलेश्वर वापस लौट आऊँ। उसी शाम को लौटकर मैं खेड़ी-घाट पहुँचा और सारी रात पैदल चलकर 8 जुलाई की प्रातः मण्डलेश्वर पहुँचा।

मण्डलेश्वर की गड़बड़ी का यह समाचार सारे निमाड़ में विद्युत प्रवाह के समान फैल गया। आदिम, निरीह व पिछड़े कहे जाने वाले भीलों में राष्ट्रीय चेतना का ऐसा अभूतपूर्व संचार हुआ जिसका उदाहरण इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। भीलों ने अब गोरी हुकूमत के खिलाफ तीर-कमान व फालिए उठा लिए थे।

29 सितम्बर 1857 को महू से एच.एम. ड्यूरेण्ड ने निमाड़ के पॉलिटिकल असिस्टेंट केप्टन आर.एच. किटिंग्स को पत्र लिखते हुए निर्देश दिया कि वह सम्पूर्ण निमाड़ में इस बात की चौकसी रखे कि कोई पर्चा या अखबार अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध कोई न लिखे। उसने यह भी चाहा कि यदि निमाड़ से बाहर छपकर भी कोई इस प्रकार की सामग्री वितरित की गई हो तो उसकी सूचना ए.जी.जी. को दी जाए। देशी राज्यों की सीमा में स्थित कोई लेखक या प्रेस या मालिक यदि ऐसा करता है तो उन्हें सम्बन्धित राज्य के शासक से दण्डित करवाया जाए।

इस पत्र से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में उन दिनों अंग्रेजों की जो दुर्गति हो रही थी उसके समाचार निमाड़ की भूमि पर प्रतिबंधित किए जा रहे थे। अंग्रेजों के पास उस समय जंगलों में छिपे भील आदिवासियों का सामना करने की सैनिक क्षमता नहीं थी। रेवालिया नायक व उसके रिश्तेदारों ने बड़वानी से दक्षिण-पूर्व में स्थित अकबरपुर में विद्रोह का झंडा खड़ा किया था, वे खानदेश के गाँव-गाँव में जाकर क्रांति का मंत्र फूँक रहे थे। बड़वानी और सेन्धवा के बीच में भीमा नायक व खोजेवसिंह ने मोर्चा सम्हाल लिया था। निमाड़ में चारों ओर हिंसा व विद्रोह के स्वर गूँज रहे थे।

निमाड़ का यह विद्रोह कोई सैनिक विद्रोह न था, अब तो उसने जनक्रांति का स्वरूप धारण कर लिया था। स्थिति पर जब अंग्रेज नियंत्रण कायम न कर पाये तो उन्हें गुजरात से अतिरिक्त सैनिक सहायता बुलानी पड़ी। इस विषय में खानदेश के मजिस्ट्रेट एस. मेन्सफिल्ड ने इन्दौर रेसीडेंसी के प्रभारी केप्टन हचकिशन को अपने पत्र में लिखा- 'सैनिक टुकड़ी अकरोनी परगने में इस माह की 4 तारीख को पहुँचेगी। आप मुतवार, अलीराजपुर, बड़वानी तथा नर्मदा के दोनों ओर निवास करने वाले शासकों को सूचित कर दें कि वे आवश्यक रूप से इस टुकड़ी को सभी रसद दें तथा कालू बाबा की सेना के विषय में कोई सूचना हो तो वह भी दें।'

अकरोनी परगना जब साफ हो जाएगा तब रेवालिया नायक व उसके रिश्तेदारों को सजा देने के उपाय किए जाएँगे, जो अकबरपुर में हैं और जिन्होंने खानदेश के गाँवों में विनाश किया है, वहाँ से सेना, भीमा नायक व खोजेवसिंह को सजा देने के लिए बढ़ेगी।

9वीं इन्फ्रेन्ट्री बटालियन सूरत से अपने मार्ग पर रवाना हो गई है। उनके आ जाने पर अनियमित सैनिकों सहित इस सेना की संख्या 2700 हो जायेगी।

बड़वानी नरेश इन नायकों तथा उनकी सीमा के निकटवर्ती नायकों की गतिविधियों के विषय में हमारे गुप्तचर विभाग को महत्त्वपूर्ण सूचना दे सकते हैं क्योंकि उनकी भौगोलिक स्थिति इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैंने केप्टन ब्रीच को बड़वानी भेजा है जो वहाँ के शासक को हमारी सैनिक टुकड़ी की संख्या के विषय में सूचित करेंगे तथा सैनिक अभियान व राजा की सूचना की महत्ता के विषय में बतलाएँगे। आप अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए यदि उन्हें पत्र लिखें तो अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

भीमा नायक की गतिविधियों से बड़वानी के राणा शासक जसवन्त सिंह भलीभाँति परिचित थे। भीमा को गोई नदी और सतपुड़ा श्रेणियों के मध्य शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए

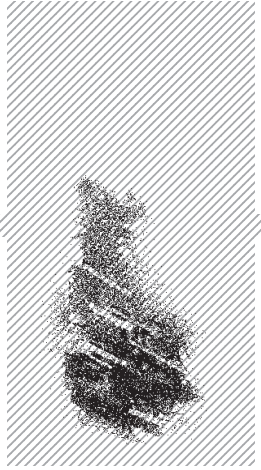

50/- रू. प्रतिमाह का वेतन बड़वानी दरबार से दिया जाता था। उसे आसपास की रियासतों से धनुष-बाण, पगड़ी व नगद धन का सम्मान मिलता था। वह एक जागरूक व प्रभावशाली आदिवासी सैनिक नेता था। इस पर्वतीय घाटी में उसकी आज्ञा ही सर्वोपरि थी। अंग्रेज उसे पकड़ने की हर सम्भव कोशिश कर रहे थे। ब्रिटिश राज्य की पुलिस तक भीमा से जा मिली और जानबूझकर उसे गिरफ्तार नहीं करवाया।

इस योद्धा को गिरफ्तार करने के लिए सेन्ट्रल इण्डिया स्थित भारत के गवर्नर जनरल का एजेण्ट आर. सेक्सपीयर भी चिंतित हो उठा था, मालवा भील पलटन के कार्यवाहक सेनापति केप्टन ई. एफ. वाटरमेन को भेजा जिसमें भीमा नायक को गिरफ्तार करने की बात कही गई थी। इसी पत्र की एक प्रमाणित प्रति निमाड़ एजेन्सी के कार्यवाहक प्रभारी श्री एस.जे. नाहर को भी भेजी गई थी। इस पत्र में ए.जी.जी. ने लिखा 'भीमा नायक की गिरफ्तारी पर 500/- रू. का पुरस्कार दिया जाए। भीमा नायक के सम्बन्ध में गुप्तचर सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए 150/- रू. मासिक स्वीकृत किए जाते हैं। जिनमें आप अतिरिक्त गुप्तचरों की नियुक्तियाँ कर सकते हैं। यदि विद्रोही गिरफ्तार कर लिया जाए तो उसे कैदी के रूप में मेरे पास भेजा जाए।'

यदि भीमा नायक स्वेच्छा से आत्म समर्पण कर दे तो उसके जीवन की सुरक्षा की ग्यारंटी दी जानी चाहिए। खोजेवसिंह को, जो उसकी ग्यारंटी के रूप में है, तब तक मुक्त न किया जाए जब तक कि भीमा नायक गिरफ्तार न हो। यदि आप समझते हैं कि वह भीमा नायक को निश्चित रूप से ला सकता है तो उसके जीवन की ग्यारंटी देकर सैनिक अभियान कुछ समय के लिए रोका जा सकता है। भीमा की गिरफ्तारी पर 500/- रू. के ईनाम की घोषणा अभी या बाद में करने का निर्णय मैं आप पर छोड़ता हूँ। आप को निर्देशित किया जाता है कि आप भीमा नायक के दल व उसे शरण देने वालों के विरुद्ध पूरी शक्ति के साथ कार्रवाई करें। ब्रिटिश सीमा के बाहर आप शिष्टाचार का ध्यान रखें।

सेंधवा क्षेत्र

गुजरात से ब्रिटिश फौज के आने का समाचार पाकर भीमा नायक व उसके क्रांतिकारी साथियों ने अपना दबाव बड़वानी की बजाए सेंधवा क्षेत्र में अधिक बढ़ा दिया, इस पर खानदेश के कलेक्टर ने यह आदेश जारी किया कि सेंधवा क्षेत्र के व्यापारी अपना पैसा ब्रिटिश संरक्षण में जमा करवा दें, क्योंकि वह इस बात का प्रमाण पा चुका था कि व्यापारी भीलों को आर्थिक सहायता व खाद्यान्न दे रहे थे। वस्तुत: इन व्यापारियों का धन वह ब्रिटिश कोष में इसलिए भी जमा करवाना चाहता था ताकि भारतीय व्यापारियों का हित अंग्रेजों से जुड़ जाए और वे ब्रिटिश कोष की रक्षा में सहायक सिद्ध हों।

सेंधवा के इस संचित कोष को बड़े गोपनीय तरीके से अन्यत्र ले जाया जा रहा था। इसकी सूचना क्रांतिकारियों तक पहुँचाई गई। उन्होंने मार्ग में ही कोष पर धावा बोलकर उसे लूट लिया। इस घटना का विस्तृत विवरण निमाड़ के कार्यवाहक पॉलिटिकल असिस्टेंट एस.डब्ल्यू. क्युमिंग को 28 जून, 1858 को लिखे पत्र से मिलता है। उसे लिखा गया- 'भील जैसे ही आये कुछ फायर किए गए। एक गुमास्ता या उसी तरह का एक आदमी उसके पास गया, जैसा कहा जाता है कि वह उनसे समझौता करना चाहता था। इसी बीच वे गाड़ियों पर झपटे और उन्हें लूट लिया, उनकी इस लूट में 30 से 40 अपने आदिमयों ने भी मदद की।'

यह खजाना उन्हें मिल गया था जिससे वे सतपुड़ा क्षेत्र में उत्पात मचाने वाले मकरानियों, विलायतियों और भाड़े पर लिए लोगों का पोषण कर सकते हैं, जो मेजर इव्हान्स द्वारा दबाये जाने के पूर्व तक सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों में बम्बई मार्ग पर लूटपाट किया करते थे।

इस क्षेत्र में विद्रोह के इतने लम्बे समय तक चलते रहने का मुख्य कारण, जैसा कि आरोप है, और जो उचित है कि यह कोष के स्वामियों (व्यापारियों) के व्यवहार के कारण ही है। बम्बई सरकार ने, मेरा विश्वास है कि इस तथ्य को स्वीकारा होगा कि यह कोष जानबूझकर विद्रोहियों द्वारा लूटा जाने दिया गया है ताकि वे अपनी विद्रोही गतिविधियों को आगे जारी रख सके।

नवम्बर 1857 की इस लूटपाट का रूपया जब जून 1858

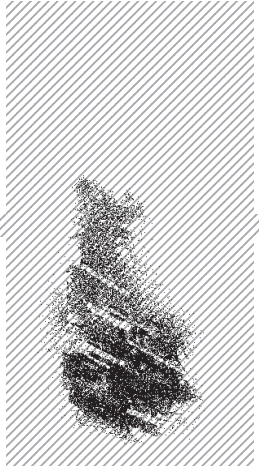

में बरामद हो गया तो पॉलिटिकल असिस्टेंट को लिखा गया। गत नवम्बर में भीलों ने सेंधवा के समीप कोष लूट लिया था, जिसमें 40,000/- रू. पुलिस ने बरामद कर लिए थे, वे आपके आदेशानुसार 5 प्रतिशत काटकर शेष धनराशि उनके स्वामियों को लौटा दी गई थी।

सतपुड़ा फील्ड फोर्स ने 1,20,000/- रू. बरामद किया है। सुझाव आया है कि इस धन को इसी टुकड़ी में पुरस्कार स्वरूप बाँट दिया जाए क्योंकि खानदेश के कलेक्टर की चेतावनी के बाद भी इन व्यापारियों ने खजाना असीरगढ़ के मार्ग की बजाय इसी मार्ग से लाए।

अंग्रेजों का यह पत्र स्पष्टत: उनकी नीति का द्योतक है। पहले तो उन्होंने 5 प्रतिशत काटकर धन व्यापारियों को लौटाया और दूसरी बार सारा धन ही हड़प जाने का प्रस्ताव किया। उनकी इस कार्रवाई को आखिर किस प्रकार न्यायोचित ठहराया जा सकता है?

सेंधवा के व्यापारियों के साथ यह सरासर अन्याय किया गया था, जिससे वे अंग्रेजों के और अधिक विरोधी हो गए। उन्होंने अंग्रेजों को दी जाने वाली वस्तुओं के दाम खूब बढ़ा दिए। इस कार्रवाई से चिंतित होकर निमाड़ के कार्यवाहक पॉलिटिकल असिस्टेंट ने 8 मार्च, 1859 को एक पत्र बम्बई-आगरा मार्ग के कार्यपालन यंत्री को लिखा। मैं बड़ी दृढ़ता से अनुशंसा करुँगा कि आप महू के बनियों को लाकर सेंधवा में बसाइये, सेंधवा के लोगों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। यदि वे आपको मजबूर पाएँगे, तो वे प्रत्येक वस्तु के दाम बढ़ा देंगे। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि सेंधवा के व्यापारियों ने अंग्रेजों का पूर्णत: बहिष्कार कर दिया और उन्हें किसी भी कीमत पर कोई भी वस्तु देने से इन्कार कर दिया। व्यापारियों के इस रुख ने अंग्रेजों के लिए भारी संकट उत्पन्न कर दिया, क्योंकि सेंधवा के दुर्ग में काफी अंग्रेज सिपाही थे।

अकबरपुर

अकबरपुर अंग्रेजी टेलीग्राफ लाईन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, जिसके द्वारा क्रांतिकारियों की गतिविधियों की सूचना तेजी से अन्यत्र भेजी जाती थी। अत: क्रांतिकारियों ने उस भवन को नष्ट कर देने की योजना बनाई। यह काम चार व्यक्तियों को सौंपा गया जिसमें गंगादीन सिपाही, खरगोन का एक मुस्लिम सिपाही अकबरपुर के कमाविसदार का सिपाही, बिहारी तिवारी तथा एक अन्य व्यक्ति सम्मिलित था। इन लोगों ने अपने 25 साथियों को तैयार किया और बंगले में आग लगाने जा पहुँचे। दुर्भाग्य से उनका प्रयास असफल रहा और उक्त चारों नेताओं को पकड़ लिया गया। उनके विरुद्ध यहाँ के थानेदार ने कोई कार्रवाई न की, यह क्षेत्र होलकर रियासत का हिस्सा था। थानेदार के सहानुभूतिपूर्ण रुख से नाराज मानपुर स्थित डिप्टी भील एजेंट केप्टन केमिंग ने होलकर दरबार को एक पत्र लिखकर उनके विरुद्ध कार्रवाई करने का आग्रह किया।

खरगोन क्षेत्र

निमाड़ का एक बहुत बड़ा भूभाग उन दिनों होलकरों के प्रशासनिक नियंत्रण में था। इन्दौर के क्रांतिकारियों से प्रेरणा पाकर खरगोन में भी आंग्ल विरोधी गतिविधियाँ चल रही थीं। क्रांति के महान नेता तात्या टोपे ने जब निमाड़ की भूमि में प्रवेश किया उसके काफी पहले से उनका पत्र व्यवहार खरगोन के कमाविसदार के साथ चल रहा था, खरगोन नगर व समीपवर्ती क्षेत्र पर होलकरों का शासन था, यहाँ इस बात का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि तात्या के आगमन का समाचार खरगोन और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में एक माह पूर्व ही फैल गया था जिससे क्रांतिकारियों के हौंसले काफी बुलंद हो गए थे। संभावित विपत्ति से निपटने के लिए होलकर सेना के 150 सिपाहियों का एक दल अक्टूबर 1858 में खरगोन भेजा गया। इस दल के अधिकारी ने खरगोन से भेजी गई अपनी रिपोर्ट में लिखा कि 'पीपलखेड़ा और खरसान जो यहाँ से तीन मील की दूरी पर है, लूट लिए गए हैं। दिलशेर खान कमाण्डर को 150 सिपाहियों के साथ नांगलवाड़ी भेजा है। वे दो दिन ऊन में ठहरे थे। पाँच सिपाही बरुड़ में छोड़े हैं जो बन्द दरवाजे में है। उनके पास सिपाही जब भोजन सामग्री के लिए गए तो उन्होंने जवाब दिया- 'हम तुम्हें खाना देने को तैयार नहीं, हम टीकराम को खाना देंगे। यदि तुम आवोगे तो हम शस्त्रों से हमला करेंगे। हम दरवाजा नहीं खोलेंगे। यदि आना है तो दरवाजे को कुल्हाडी से काटकर ही आ सकते हो।'

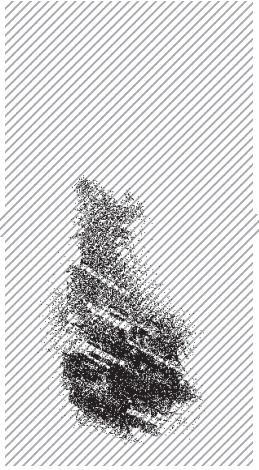

'विद्रोही भीलों के साथ श्यामसिंह नायक भी जा मिला है। भीलों व नायकों को उनके वेतन की अग्रिम राशियाँ दी गई। सेना के हाथियों को नावों पर चढ़ाकर बड़ी मुश्किल से नर्मदा पार पहुँचाया गया है।' उक्त पत्र से स्पष्ट होता है कि क्रांतिकारियों ने खरगोन के निकटवर्ती क्षेत्रों में हमले प्रारम्भ कर दिए थे। होलकर सिपाहियों को विद्रोह के भय से अग्रिम वेतन भी दे दिया गया था।

2 अक्टूबर, 1858 की आधी रात में कर्नल किटिंग और दिलशेर खान की मुलाकात जुलवानिया में हुई। 30 होलकर सिपाही किटिंग ने अपने पास रख लिये, दिलशेर खान को नांगलवाड़ी की ओर रवाना करके कहा गया कि वह विद्रोहियों को वार्ताओं में उलझा रखें। उनकी सुनिश्चित खबर मिलने पर दोनों सेनाएँ मिलकर विद्रोहियों पर आक्रमण करेंगी।

उधर धीरे-धीरे होलकर सेना के सिपाही भी विद्रोहियों के साथ मिलते जा रहे थे। 18 अक्टूबर 1858 को रामचन्द्र भाऊ साहब ने बक्षी खुमानसिंह को भेजे एक पत्र में लिखा- 'हाउस होल्ड के तथा नाजिम पल्टन के सिपाही भी विद्रोहियों के साथ जा मिले हैं। मण्डलेश्वर के आसपास सीताराम के नेतृत्त्व में भारी विद्रोही गतिविधियाँ प्रारम्भ की गई थी। शीघ्र ही सीताराम पकड़ लिया गया, उसके साथी भी गिरफ्तार किए गए थे, किन्तु होलकर महाराजा ने सीताराम सहित सभी विद्रोहियों को मण्डलेश्वर से मुक्त करवा दिया था। इन्दौर के रेजीडेंट एच.एम. ड्युरेण्ड के समान ही निमाड़ के अंग्रेज अधिकारी किटिंग का भी यह स्पष्ट आरोप था कि विद्रोहियों को होलकर महाराजा तुकोजीराव (द्वितीय) ने भड़काया है।'

बीजागढ़

निमाड़ में स्थित बीजागढ़ का दुर्ग मुगलकाल से अपनी दृढ़ता के लिए विख्यात रहा है। मुगलों का यह प्रशासनिक मुख्यालय था और यहाँ से जारी आदेशों पर सरकार बीजागढ़ लिखा जाता था। समय के थपेड़ों ने इस आबाद दुर्ग को विराने में बदल दिया। 1857 के समय यह दुर्ग घने वनों से आच्छादित था, जहाँ आसानी से नहीं पहुँचा जा सकता था। इस दुर्ग के द्वारों ने फिर एक बार घोड़ों की टापों की ध्वनि सुनी और पुनः आबाद हो उठा। इस बार इसे आबाद करने वाले क्रांतिकारी सीताराम और उसके साथी थे। उन्होंने बीजागढ़ के पर्वतीय दुर्ग को अपना मुख्यालय बनाया।

सीताराम और उसके साथियों की योजना इस दुर्ग में पर्याप्त रसद का संग्रह करना था। एक दिन रसद हासिल करने यह दल बरुड़ की ओर गया था, तभी इनकी सूचना केप्टन आर.एच. किटिंग को मिली। उसने अपनी कार्रवाई का विस्तृत विवरण इन्दौर स्थित ए.जी.जी. सर राबर्ट हेमिल्टन को बीजागढ़ के समीप लगे फौजी शिविर से 11 अक्टूबर, 1858 के पत्र में इस प्रकार लिख भेजा कि इस जिले में शांति स्थापना हेतु मेरी कार्रवाई जारी है। मैंने जुलवानिया में केप्टन निकलसन की टुकड़ी की प्रतीक्षा करने के बाद 8 तारीख की दोपहर को मार्च किया। 9 की प्रातः मैं पुंदाली के मैदानी क्षेत्र में पहुँचा, जो नांगलवाड़ी से लगभग 10 मील पूर्व में हैं। वहीं सूचना मिली कि एक रात पहले ही सीताराम ने पहाड़ियाँ छोड़ी हैं। वह बरुड़ और बीजागढ़ को लूटने गया है।

भोपावर इन्फेन्ट्री के सूबेदार महादेवलाल के नेतृत्त्व में सैनिक टुकड़ी छोड़कर मैं अश्वारोही दल के साथ बुशवाली की ओर बढ़ा, जहाँ से मुझे विश्वास था कि वह दल लौटते समय गुजरेगा। कुल 160 व्यक्ति मेरे साथ थे। पुंदाली से आते समय हमें भील लुटेरों का एक छोटा दल मिला, जो हमें देखकर माल छोड़कर भाग गए, उनमें से दो को पकड़ लिया गया। उनसे ज्ञात हुआ कि रघुनाथसिंह मण्डलोई किले में था और सीताराम रसद की गाड़ियों की रक्षा करता हुआ उन्हें किले में ले जा रहा था। हमने आगे बढ़कर बीजागढ़ दुर्ग को जाने वाले मार्ग को बुदवालिद नामक गाँव के समीप जा घेरा। गाड़ियों के पहियों के निशान देखकर हमने उनका पीछा किया और घने जंगल में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर हम रसद की गाड़ियों से आगे निकल गए और 50-60 फिट ऊँचे टीले पर जा पहुँचे। रोड के अचानक मोड़ से हमें सीताराम और उसका दल आता हुआ दिखाई दिया। कुछ लोग सशस्त्र थे और कुछ निःशस्त्र थे किन्तु वे किसी संभावित आक्रमण से निश्चिंत थे। हम तेजी से उन पर झपटे और कुछ पर तलवारों से प्रहार किया। विद्रोही एकदम हतप्रभ रह गए किन्तु

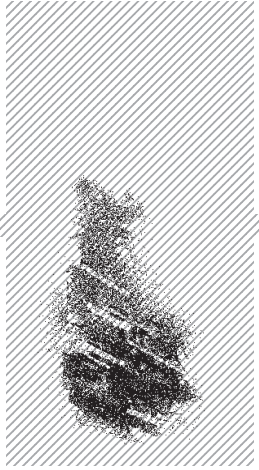

फिर भी उन्होंने मुकाबला किया। उनमें से निहस्थे लोग घोड़ों से कूदकर घने जंगलों में भागने का प्रयास करने लगे। 20 लोग मारे गए जिनमें सीताराम और जनबा हवलदार सम्मिलित हैं। सीताराम और उसके वफादार साथियों की मृत्यु से बीजागढ़ के क्रांतिकारियों को गहरा सदमा लगा जिसमें सीताराम का साथी और दल का नेता रघुनाथ सिंह मण्डलोई भी था। बरुड़ नामक छोटे से कस्बे में भी विद्रोह भड़क उठा। मण्डलोई रघुनाथ सिंह स्वयं क्रांतिकारियों का नेतृत्त्व करता हुआ बरुड़ पहुँचा और उसने अपने भील साथियों को एकत्रित कर वहाँ के बहिवटदार को हटा दिया। देखते ही देखते क्रांतिकारियों की संख्या तीन हजार हो गई। इनमें अधिकांश भील सिपाही थे। इनके साथ 200 बंजारे भी अपनी बैलगाड़ियों सहित आ मिले थे। बंजारों का मुख्य काम बागियों को रसद पहुँचाना था।

इस संदर्भ में आर.एच. किटिंग्स द्वारा इन्दौर स्थित ए.जी.जी. को लिखा पत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है। किटिंग्स लिखता है कि जब इस क्षेत्र में सीताराम ने विद्रोह किया तब सबसे बड़ी कठिनाई जो मैंने महसूस की वह यह थी कि रघुनाथसिंह मण्डलोई जो भील भीलालों व मण्डलोईयों का भी जाति पटेल था, ने उन लोगों से कहा कि जब तक वे विद्रोह में सम्मिलित नहीं होंगे, तब तक वे जाति के बाहर रहेंगे।

सबसे पहली आवश्यकता जो इस क्षेत्र में है, वह यह कि एक वफादार (अंग्रजों के प्रति) जाति पटेल व मण्डलोई खोजा जाए जिनके अनुयायियों में स्वामी भक्त भीलालों को एकत्रित किया जा सके।

इस विषय पर मैंने आपको लिखा और दरबार ने दौलतसिंह मण्डलोई को नियुक्त कर दिया है। उसने तुरन्त कार्यभार सम्हाल लिया है और उसका तुरन्त प्रभाव दिखाई भी पड़ा। दरबार का सीधा केवल यही आदेश था कि उसे मण्डलोई नियुक्त किया जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि नये मण्डलोई को राजस्व एकत्रित करने का अधिकार प्रारम्भ से ही नहीं दिया गया है और दरबार अभी विद्रोही मण्डलोई को ही बनाये रखने का विचार रखता है। ऐसा केवल दौलत सिंह के साथ विश्वासघात करके ही किया जा सकता है, जिसने संकट के समय हमारा साथ दिया है।

निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा यदि हम इस क्षेत्र में महान क्रांतिकारी नेता तात्या टोपे की गतिविधियों का उल्लेख नहीं करेंगे। अक्टूबर 1858 में दक्षिण पहुँचने के प्रयास में तात्या टोपे ने नर्मदा नदी पार की थी। सतपुड़ा पर्वत श्रेणियाँ पार करने के बाद अगले माह वह ताप्ती घाटी के रास्ते से पूर्वी निमाड़ में प्रविष्ट हुआ। खण्डवा पहुँचने पर उसने सभी दिशाओं में अपना मार्ग अवरुद्ध पाया। खानदेश की ओर बढ़ने में ह्यू रोज उसका मार्ग रोके खड़ा था, तथा जनरल राबर्ट्स के कारण गुजरात की ओर नहीं बढ़ सकता था। बरार की ओर से भी ब्रिटिश सेना उसका पीछा करने के लिए बढ़ती आ रही थी।

एक प्रत्यक्षदर्शी भारतीय ने उस समय की स्थिति का जो वर्णन किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि तात्या की स्थिति बड़ी सोचनीय हो गई थी। उसके पास गोला बारूद, रसद व धन सभी कुछ चुक गया था। वह अपने को असहाय पा रहा था। ऐसी दशा में, कहा जाता है कि उसने अपने सैनिकों को यह अनुमति दे दी कि उन्हें अन्यत्र कहीं आश्रय प्राप्त हो सकता हो तो वे उसका साथ छोड़ सकते हैं। किन्तु देशभक्त क्रांतिकारियों ने संकट की घड़ी में अपने नेता का साथ छोड़ने से इन्कार कर दिया। अपने सिपाहियों के अभूतपूर्व उत्साह से प्रेरित होकर ही, कहा जाता है कि तात्या ने असीरगढ़ पर आक्रमण किया था, किन्तु जब उसने देखा कि असीरगढ़ की रक्षा व्यवस्था काफी सुदृढ़ है तो वह अपने साथियों सहित खण्डवा लौटा। उन्होंने खण्डवा की सिविल डिस्पेंसरी व ट्रेव्हलर्स बंगले में आग लगा दी। खण्डवा से रवाना होकर यह दल पिपलौदा गाँव, गंदवाना, सिंधवास तथा मोकुलगाँव होता हुआ आगे बढ़ा। दल ने मार्ग में पड़ने वाले अंग्रेज पुलिस थानों में आग लगा दी थी।

तात्या टोपे ने खरगोन के कमाविसदार को पत्र लिखकर अपनी सेना के लिए आवश्यक रसद और सुविधाएँ उपलब्ध कराने को कहा था। इस पत्र में तात्या ने स्पष्ट कर दिया था कि उसका उद्देश्य गाँव या शहर के लोगों को परेशान करना कदापि नहीं है।

तात्या टोपे व उसके साथी जब खरगोन पहुँचे तो खरगोन और उसके आगे की गतिविधियों का उल्लेख दो प्रत्यक्षदर्शियों ने

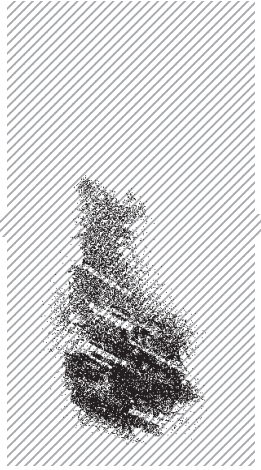

किया है। ये हैं बख्शी खुमानसिंह जो होलकर फौज के सेनापति थे और लेफ्टीनेंट कर्नल नवाब दिलशेर खान। आप दोनों ने एक रिपोर्ट 6 जनवरी, 1859 को होलकर सरकार को प्रस्तुत की थी। उस रिपोर्ट का सारांश इस प्रकार है-

'विद्रोही फौज ने 21 नवम्बर 1858 के दिन खरगोन में प्रवेश किया। नदी के पास वे एक गोलाकार रूप में ठहरे जिससे कि गढ़ी घेर ली गई। उन्होंने शहर के प्रमुख बिंदुओं पर टुकड़ियाँ तैनात कर दी। रात में उन्होंने गढ़ी को घेर लिया। होलकर फौज गढ़ी में थी। लेफ्टीनेंट कर्नल दिलशेरखान को विद्रोहियों ने गिरफ्तार कर लिया। बागियों ने स्पष्टीकरण माँगा कि क्रांतिकारियों को सरकारी फौज ने क्यों मारा है। और इस प्रकार का क्रूर हत्या काण्ड क्यों किया गया। तात्या टोपे ने स्वयं दो बार पूछा कि विद्रोहियों को इतनी गंभीर सजाएँ दिए जाने के क्या कारण हैं? वह यह भी जानना चाहता था कि नाना जगताप व अन्य लोगों को क्यों खरगोन में फाँसी पर टांगा गया? तात्या टोपे ने पहले तो निश्चय किया कि वह नवाब दिलशेर खान को भी उसी स्थान पर फाँसी पर लटकाएगा जहाँ क्रांतिकारी नाना जगताप को फाँसी दी गई थी, किन्तु कुछ विचार करके और नगर के दिलशेर खान के मित्रों के आग्रह को ध्यान में रखते हुए जो विद्रोहियों के साथी हो गए थे, तात्या ने दिलशेर खान को जीवनदान दे दिया। तात्या टोपे ने उसे क्रांतिकारियों की सहायता के लिए सहमत हो जाने पर अच्छे पद का प्रस्ताव भी किया। गढ़ी के घोड़ों व दो तोपों पर विद्रोहियों ने कब्जा करने के बाद वहाँ के होलकर सैनिकों को बंदी बना लिया। अगले दिन (22 नवम्बर, 58) की दोपहर उन्होंने खरगोन छोड़ा और ऊन में जाकर शिविर लगाया।'

सारी घटना का आँखों देखा हाल खरगोन स्थित फील्ड आर्टलरी के केप्टन शेख शमीर ने अपने 24 नवम्बर, 1858 के पत्र में इन्दौर लिख भेजा था। वह लिखता है- 'रविवार (21 नवम्बर) की संध्या को दिलशेरखान को रिसाला में बुलाया। उसका घोड़ा और शस्त्र उससे छीन लिए तथा उसे गिरफ्तार कर लिया। पल्टन के सैनिकों और अधिकारियों के भी शस्त्र छीन लिए गए हैं और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। तोपें-झण्डे आदि विद्रोहियों के कब्जे में हैं। उन लोगों के साथ 6000 लोग थे। उन्होंने दो दिनों तक (खरगोन पर) कब्जा रखा व बाजार को लूटने के बाद वे तोपों, झण्डे, सैनिकों व अधिकारियों को भी ले गए। वे ऊन के लिए कल रवाना हुए हैं। हमारे पास तोप, गोला बारूद, सिपाही और कुछ भी शेष नहीं बचा है।' इस पत्र से स्पष्ट है कि तात्या टोपे के दल ने मुख्यत: सैनिक उपयोग की वस्तुओं पर ही कब्जा किया था। आम नागरिकों को उन्होंने किसी प्रकार की कठिनाई में नहीं डाला।

बक्षी खुमानसिंह और नवाब दिलशेरखान ने अपनी रिपोर्ट में आगे लिखा है कि यह दल ऊन से जुलवानिया होता हुआ गुरुवार 25 नवम्बर को राजपुर पहुँचा। रास्ते में उन्होंने टेलीग्राफ के तारों को काट दिया। केप्टन हचकीसन लिखता है कि विद्रोही 25 नवम्बर को राजपुर के महत्त्वपूर्ण केन्द्र पर पहुँचे और उन्होंने राजपुर के थानेदार को गिरफ्तार कर लिया। यहाँ से यह दल चलकर तात्या के नेतृत्व में 25 नवम्बर की शाम को ही बड़वानी जा पहुँचा। इन क्रांतिकारियों के पहुँचने का समाचार पाकर बड़वानी का राजा पर्वतीय क्षेत्र में भाग गया। बाद में तात्या टोपे के दल के विषय में लिखा है- '25 नवम्बर की शाम 500-600 विद्रोहियों का एक समूह आया और उसने राजा को कैद कर लिया। राजा को विद्रोहियों के शिविर में लाया गया, जहाँ उसे मध्य रात्रि तक रखा गया। राजा से उन्होंने पर्वतीय क्षेत्र से जाने वाले रास्तों और नर्मदा के घाटों के विषय में पूछा। राजा ने उन्हें बताया कि पर्वतों में ऐसा कोई रास्ता नहीं है और पिछले तीन महिनों से किसी ने नर्मदा नदी को पैदल पार नहीं किया है। इस पर मध्य रात्रि में राजा को मुक्त कर दिया गया। राजा अपने महल में लौट आया और उसने ब्रिटिश शिविर तक यह समाचार पहुँचाने का प्रयास किया, किन्तु उस समय गाँव का कोई भी व्यक्ति जाने के लिए तैयार न था। किसी तरह राजा ने दो भृत्यों के हाथ कागज-पत्र भेजे किन्तु विद्रोहियों ने उन्हें पकड़ लिया। अगले दिन विद्रोहियों ने नगर को ध्वस्त करने की योजना बनाई किन्तु इसी बीच उन्हें यह समाचार मिला कि ब्रिटिश फौज उनके विरुद्ध राजपुर से कूच कर गई है। उन्होंने बड़वानी से अपना शिविर उठा लिया और भीलखेड़ा दुर्ग के पास से नर्मदा नदी पार की। चिखल्दा स्थित ब्रिटिश दस्ते द्वारा 9 या 10 विद्रोहियों को मार डाला गया जबकि शेष लोगों ने चिखल्दा ग्राम को ध्वस्त कर दिया। भोपावर के

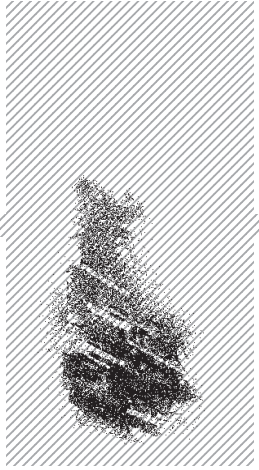

सवारों ने (जो पहले बड़वानी थाने में ड्यूटी पर थे) बागियों का मार्गदर्शन किया। 26 नवम्बर की प्रातः केप्टन हेलबर्ट अपनी फौज के साथ भीलखेड़ा जा पहुँचा। नदी के दूसरे किनारे पर विद्रोहियों का शिविर था। 28 नवम्बर को कम्पनी फौज ने नर्मदा पार की। विद्रोहियों ने कुक्षी होते हुए अलिराजपुर की ओर मार्च कर दिया। वे अपने साथ राजा के कुछ घोड़े भी ले गए।'

अलिराजपुर के शासक ने बताया कि शनिवार 27 नवम्बर को तात्या टोपे के नेतृत्व में लगभग 15000 विद्रोहियों का दल मानपुर में आकर रुका। यह दल बड़वानी चिखल्दा होते हुए आया था। उन्होंने निवासियों को लूटा और राजा के घोड़े भी छीन लिए। जैसे ही राजा को रात 10 बजे यह समाचार मिला उन्होंने दो हरकारों के माध्यम से मेजर वालेस तथा केप्टन हचकीसन को समाचार लिख भेजा। हरकारे विद्रोहियों द्वारा पकड़ लिए गए। राजा ने विद्रोहियों को रोकने का पूरा प्रयास किया, किन्तु उनकी संख्या काफी अधिक थी। रविवार 28 नवम्बर को वे अलिराजपुर पहुँचे। अगले दिन उन्होंने दरबार के 5 घोड़े जब्त कर लिए। नागरिकों के भी कुछ घोड़े व खच्चर छीन लिए। उन्होंने लगभग 40,000/- रू. भी लूट लिये, जब उन्होंने अलिराजपुर छोड़ा उसके पूर्व डाक बंगले और पुलिस चौकी में आग लगा दी।

यह दल अलिराजपुर से कुशलगढ़ होते हुए 10 दिसम्बर को बांसवाड़ा पहुँचा। 24 दिसम्बर को यह दल मार्ग में ब्रिटिश फौजों से संघर्ष करता हुआ प्रतापगढ़ जा पहुँचा। वहाँ से वे होलकरों के जीरापुर और माछलपुर जिलों में गए, जहाँ वे तीन टुकड़ियों में बंट गए और जंगलों में जा छिपे।

इस प्रकार तात्या टोपे की फौज, कम्पनी की टुकड़ियों से संघर्ष करती हुई निमाड़ का क्षेत्र आसानी से पार कर गई। इस फौज में निमाड़ के भील सिपाही बड़ी संख्या में सम्मिलित हो गए थे।

खरगोन से प्रतापगढ़ तक इस सैनिक अभियान में होलकर के लेफ्टीनेंट कर्नल नवाब दिलशेरखान विद्रोहियों के साथ थे। मंदसौर के समीप अवसर पाकर वह जावरा और वहाँ से अपने स्वामी होलकर महाराजा के पास भाग आया था। उसने होलकर सरकार को अपनी एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें तात्या टोपे व उसके साथियों की गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। उसकी रिपोर्ट के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को यहाँ उद्धृत करना उपयोगी होगा।

उसकी विद्रोही फौज में पैदल व अश्वारोही सैनिकों को मिलाकर कुल 10 हजार सैनिक थे। उनके पास बड़ी तोपें नहीं थी, किन्तु तोपची उसके साथ थे। वे अश्वारोही के रूप में कार्य करते थे, जिनकी संख्या 1500 से 2000 के बीच थी। बागी पूरी वर्दी में रहते थे। उनके पास छोटी कई किस्म की बंदूकें व पिस्तौलें थीं। विद्रोहियों के साथ 500 से 1000 के बीच महिलाएँ भी थी।

फुरसत में विद्रोही आनन्द करते थे। आक्रमण होने पर जंगल में छुप जाते थे, उस समय वे अपने साथ कोई सामान नहीं ले जाते थे। लेकिन पर्याप्त पैसा रखते थे। जब वे गाँव शहर से गुजरते थे तो उनमें कुछ लोग घी-शक्कर की चीजें खाते थे और कुछ लोग जवार-बाजरे से अपना पेट भरते थे। कोई भी भूखा नहीं रहता था। कुछ स्थानों पर वे खाद्य सामग्री खरीदते थे, तो कहीं लूटपाट करके प्राप्त कर लेते थे।

विद्रोहियों का प्रमुख नेता राव साहब था। तात्या टोपे उसका प्रमुख दीवान या परामर्शदाता था। अधिकारियों में नवाब रहमत अली खान कामनीवाला, सत्तार खान जावरा वाला, राधोपंत, दामोदर पंत, बसंतराव शास्त्री तथा लालपुरी वाला बाबा मुख्य थे। बागियों की फौज में बहुत से सेनानायक थे। उनमें कुछ एकता थी, लेकिन इस दल के अभियान के मुख्य ध्येय को लेकर उनमें मतभेद थे। राव साहब उत्तर भारत में जाना चाहते थे जबकि तात्या टोपे दक्षिण में जाना चाहते थे।

अभियान की योजनाएँ बहुत ही गोपनीय रखी जाती थी और केवल तात्या टोपे तथा राव साहब को उनकी खबर होती थी। वे कम्पनी की सेना से भिड़ंत नहीं चाहते थे, बल्कि उसके आगे-आगे चलना चाहते थे। वे 24 से 40 मील प्रतिदिन चलते थे। तात्या टोपे अंग्रेजों के लिए 'दलदल में जगमगाता हुआ प्रकाश' बन गया था। यद्यपि वह कुछ युद्धों में हारा किन्तु उसने अंग्रेजों के

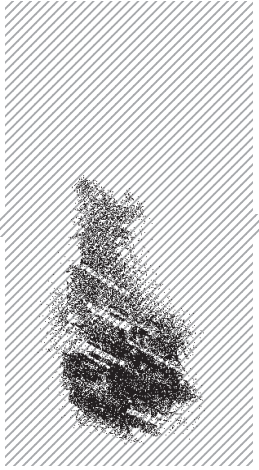

विरुद्ध लड़ते रहने की इच्छा कभी नही हारी।

तात्या टोपे के निमाड़ से चले जाने के बाद सैकड़ों भील सिपाही भीमा नायक के दल में जा मिले थे और वह धीरे-धीरे निमाड़ में क्रांतिकारियों का प्रभावशाली नेता बनता जा रहा था। उसने प्रचारित करना प्रारम्भ कर दिया था कि वह बड़वानी के महाराजा जसवन्तसिंह की ओर से लड़ रहा था जैसा कि उसने बड़ोद के वाहिवटदार को अपने 27 सितम्बर 1857 के पत्र में लिखा था- 'दतवाड़ा मौजा में लूटपाट करने में अपनी मर्जी से नहीं गया था जैसा कि आपको संदेह है। मुझे बड़वानी के महाराजा जसवंतसिंह, बूधा गिरबाबा तथा दौलतसिंह मामा ने कहा था कि मैं बड़वानी रियासत का इलाका छोड़कर अन्यत्र निकटवर्ती क्षेत्रों में लूटपाट करूँ, मुझे यह भी कहा गया था कि मौजा दतवाड़ा पर मैं अधिकार कर लूँ क्योंकि यह गाँव बड़वानी राज्य का है। 50/- रू. व सम्मान सूचक वेशभूषा मुझे निर्देशित कार्य पूरा करने के लिए भेंट किए गए। राजा ने बाद में मेरा साथ नहीं दिया और इसलिए अब मैंने निश्चय किया है कि मैं उसकी सीमा में भी धावे बोलूँगा।..... मैं राजा का पुराना नौकर हूँ और उनकी आज्ञानुसार मैंने कार्य किया है। अब क्षतिपूर्ति की माँग मुझसे नहीं अपितु राजा से करें। मैं आपके इलाकों पर हमला करूँगा अन्यथा मेरे भुगतान की व्यवस्था कर देवें।'

बड़वानी नरेश ने भी ग्रामीण क्षेत्रों की लूटपाट के समाचार की पुष्टि तो की किन्तु इन क्रांतिकारियों पर किसी भी प्रकार से नियंत्रण करने में अपने आपको असमर्थ पाया।

भीमा नायक और उसके दल को विनष्ट करने के लिए काफी बड़ी संख्या में ब्रिटिश फौज निमाड़ भेजी गई थी। आर.एच. किटिंग ने इस अभियान का नेतृत्व सम्हाला। वह इतना भयभीत था कि 30 जनवरी, 1859 को उसने उत्तरी खानदेश के ब्रिटिश सेनापति कर्नल वारे को पत्र लिखकर अतिरिक्त सैनिक सहायता चाही थी। उक्त पत्र में वह लिखता है कि 'गत रात मुझे गोपनीय सूचना मिली है कि भीमा एक हजार साथियों के साथ धाबा (धोली) बावड़ी पर है। इस समाचार पर विश्वास न करके मैंने एक विश्वसनीय स्थानीय व्यक्ति को जुलवानिया की ओर भेजा और मि. हेमिल्टन, मि. मेन्सफिल्ड व मुझे सूचना देने का निर्देश किया। उसने सूचना दी है कि समाचार सत्य है केवल संख्या में अतिशयोक्ति है।'

मुझे खलघाट जाना चाहिए जहाँ बम्बई-आगरा मार्ग है। मेरे साथ 15-20 सवार व 50 रायफलधारी होंगे। यदि आपके पास अतिरिक्त सैनिक टुकड़ी हो तो मैं चाहूँगा कि आप पैदल सेना की एक कम्पनी व अश्वारोही दल सेंधवा या जुलवानिया भिजवा दें।

'मैंने इस पत्र की प्रति मेजर जनरल ह्यू रोज तथा सर राबर्ट हेमिल्टन को भिजवा दी है।' भीमा नायक के विरुद्ध अपने सैनिक अभियान का विस्तृत विवरण किटिंग ने सेंट्रल इण्डिया के ए.जी.जी. को इस प्रकार लिखा- 'मैं एक (फरवरी, 1859) को राजपुर पहुँचा व दो तथा तीन को वहाँ रुककर अभियान के लिए रसद व गाड़ियाँ इकट्ठी की। मेरे साथ रिसालेदार कोलसिंह व तीस अश्वारोही वहाँ आ मिले जो आपके दल के हैं। इन्होंने तीस मील प्रतिदिन चलकर यह दूरी तीन दिन में पूरी की है।

चार की प्रात: काफी जल्दी हमने मार्च किया और दोपहर को धोली- बावड़ी जा पहुँचे। दर्रे पर लगभग 60 भील तैनात थे। जिन्होंने चुनौती दी किन्तु जब हम आगे बढ़े तो वे फायर करते हुए भाग गए। ढाई घण्टे में हम अपनी रसद व गाड़ियाँ सम्हालकर आगे बढ़े और गोई नदी के किनारे सिलावद में शिविर लगाया। रास्ते में कुछ लोगों ने संघर्ष किया, जिसमें एक व्यक्ति मारा गया।

अगले पूरे दिन हम शत्रु की टोह लेते रहे लेकिन कोई न मिला। शाम को मण्डलेश्वर से भील पल्टन रसद लेकर हमसे आ मिली। अगली सुबह पंचनाला नामक स्थान पर हमें शत्रु के चिन्ह दिखाई दिए जहाँ उन्होंने हमारे पहुँचने के पूर्व शिविर लगाया था। 8 तारीख को हम शत्रु के पदचिन्ह देखकर चलते रहे, इस सैनिक टुकड़ी ने इतने पर्वतीय क्षेत्र की यात्रा पहले कभी नहीं की थी। बंजारों की गाड़ियों पर लदी रसद उतारनी पड़ी। शाम को हमने रामगढ़ के उत्तर में पंचबावली नामक स्थान पर शिविर लगाया। क्षेत्र पश्चिम की ओर था जबकि गाइड का अनुमान था कि दल तोरणमाल के रास्ते पर था। मैंने अपने दल के कुछ लोगों को मैदानी इलाके में चार दिन की रसद लाने के लिए भेजा। अगले दिन की यात्रा और भी घने जंगलों की थी लेकिन 9 बजे प्रात:

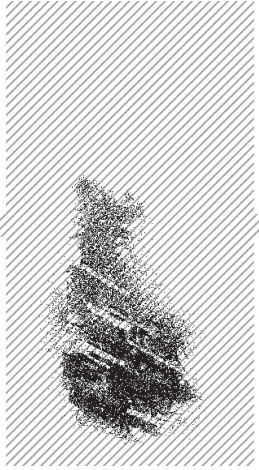

गाइड यह समाचार लाये कि उन्होंने कुत्तों के भौंकने की आवाज व मानव स्वर आगे की तरफ सुने हैं।

ए.जी.जी. एसकार्ट के 45 सवार रिसालेदार कोलसिंह के नेतृत्व में भोपावर इन्फ्रेन्ट्री के 53 रायफल मेन हवलदार देवीसिंह के नेतृत्व में, मालवा भील कार्प्स के 120 सिपाही सूबेदार थावरिया के नेतृत्व में मेरी सेना में सम्मिलित थे। 80 भीलों के साथ मैं आगे की पहाड़ी घर बढ़ा और वहाँ हमने पोजीशन ली।

नाला लगभग 40 फुट गहरा था और दूसरी ओर नदी थी, दूसरी ओर बाँस की झाड़ियाँ थीं, जिसमें विद्रोही शिविर लगा था। रिसालेदार कोलसिंह अपने साथियों के साथ तेजी से उनकी ओर झपटा तभी उसके सिर में गंभीर चोट शत्रु ने पहुँचाई। भील लोग एक या दो-दो के समूह बनाकर पहाड़ी जंगल की ओर भागे जो झाड़ियों से घिरे हुए थे, जिनका बंदूक सहित सिपाही पीछा न कर पाये। अश्वारोही दल का वहाँ पहुँचना असम्भव था। वे लोग 59 घोड़े व खच्चर, 21 जोड़ी बैल, एक ऊँट तथा उनकी सारी सम्पत्ति व खाद्यान्न छोड़कर भाग गए। वे लोग घने जंगलों में खाली हाथ भागे थे। निकटतम बस्ती वहाँ से तीस से पचास मील दूर थी, जहाँ कोई सड़क नहीं जाती। 10 विद्रोही भील मारे गए हैं, 4 पकड़े गए हैं जिनमें- भीमा नायक की माँ भी है।

9 व 10 को आसपास के क्षेत्र में तलाश की गई किन्तु कोई विद्रोही न मिला। वे अपने साथियों को उनके हाल पर छोड़कर जंगलों में भाग गए। ये लोग 200 थे जो तात्या टोपे की सेना में थे किन्तु तात्या टोपे जब निमाड़ से गुजरे और उन्हें नर्मदा के तट पर कर्नल बेस्टन की सेना से सामना करना पड़ा तो ये लोग भागकर भीमा नायक के दल में जो पहाड़ियों में था, जा मिले।

मैं 13 को अंजड़ पहुँचा व वहाँ केप्टन हचकिशन से साक्षात्कार किया। वहाँ से हम 15 को खुरमपुरा पहुँचे, जहाँ मैंने केप्टन वाटरमेन को चार्ज दिया और मैं मण्डलेश्वर वापस लौट आया। बड़वानी राज्य शांति विरोधी लगता है। गत बीस माह का अनुभव कहता है कि कुछ प्रतिबंधात्मक उपाय यदि नहीं किए गए तो शांति अधिक समय तक टिक नहीं सकती।

सतपुड़ा पर्वत श्रेणियाँ लगभग दो समानान्तर पंक्तियों में फैली हैं और उसके बीच की विस्तृत घाटी से गोई व उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। यह पर्वतीय क्षेत्र बड़वानी राज्य के अन्तर्गत आता है। गत बीस माहों से यह घाटी अशांत रही है इस घाटी के मध्य काफी अच्छा मैदानी भाग है, जहाँ पशुओं के लिए खूब चारा है तथा असीमित मात्रा में पानी है लेकिन इस घाटी में कोई गाँव, पुलिस थाना या मिलेट्री सेन्टर नहीं है।

भील व नायक लोग जो वंशानुगत रूप से इस घाटी के स्वामी रहे हैं, गत वर्ष विद्रोही हो गए हैं। भीमा नायक के साथियों और उसकी माँ सुरसी को मण्डलेश्वर के किले में ले जाकर कैद कर दिया गया। इन लोगों को तरह-तरह की यातनाएँ दी गई। वृद्धा सुरसी को यातनाएँ दे-देकर भीमा नायक की गतिविधियों के विषय में पूछा जाता रहा किन्तु उसने कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया। इन यातनाओं के फलस्वरूप 15 दिन बाद ही 28 फरवरी, 1859 के दिन उस वृद्धा के प्राण-पखेरू उड़ गए।

क्रांतिकारी नेता भीमा नायक की वृद्धा माँ की मृत्यु का समाचार पाकर मण्डलेश्वर दुर्ग में कैद अन्य लोग भड़क उठे। वे जेल से भाग जाने का निरन्तर प्रयास करते रहे। अन्ततः 22 अगस्त 1859 की रात को उन्हें सफलता मिल गई, उस रात 1 बजे के करीब क्रांतिकारियों ने विद्रोह कर दिया, इस सम्बन्ध में एस.जे. नाहर ने 23 अगस्त 1859 को ब्रिगेडियर जनरल आर. सेक्सपीयर ए.जी.जी. को एक विस्तृत पत्र लिखा। वह लिखता है- 'मुझे मण्डलेश्वर से कैदियों के भाग जाने व केप्टन होम्स कार्यवाहक पॉलिटिकल एजेण्ट की हत्या का समाचार खेद सहित देना पड़ रहा है।'

22 अगस्त को लगभग 1 बजे आजन्म कारावास भुगत रहे कैदी एकदम झपटे और उन्होंने गार्ड से शस्त्र छीनकर उस पूरे दुर्ग पर अधिकार कर लिया जिसमें वे कैद थे। मैं व केप्टन होम्स वहाँ तुरन्त पहुँचे और शीघ्र ही 19वीं बम्बई नेटिव्ह इंफ्रेंट्री भी लेफ्टीनेंट डब्ल्यू. स्कॉट के नेतृत्व में वहाँ आ पहुँची। फुर्तीला फायरिंग प्रारम्भ किया गया जिसके जवाब में कैदियों ने भी फायर किए जो पूरे गोला-बारूद पर अधिकार किए हुए थे।

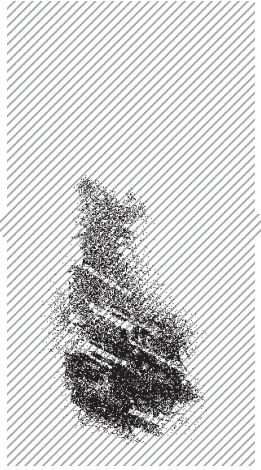

लगभग 2 बजे अपरान्ह केप्टन होम्स ने जो मामूली रूप से घायल हो गए थे, निश्चय किया कि वह महाराजा तुकोजीराव होलकर से जाकर तोपें मांगेगे जो इस समय महेश्वर में हैं। उनमें से दो तोपें 5 बजे यहाँ पहुँची। उन्हें तत्काल दो में से एक गेट को उड़ाने के आदेश दिए। किन्तु उनकी योग्यता की कमी और गेट के अंदर से सुरक्षित कर दिए जाने के करण गोलाबारी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किले की आग इतनी तेज थी कि आर्टिलरी को एक कुँए की आड़ में शरण लेनी पड़ी। 19वीं नेटिव्ह इन्फ्रेन्ट्री तोपों के साथ थी और केप्टन होम्स भी उनके साथ थे तभी उन्हें गोली लगी और वे अपने कुछ 100 गज दूरी स्थित उनके बंगले तक भी न पहुँच पाये और वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

यह देखकर कि किले के द्वार को उड़ाने का यदि और प्रयास किया गया तो हमें ही हानि होगी अत: मैंने फायर न करने का आदेश दिया और 19 वीं नेटिव्ह इन्फ्रेन्ट्री ने बरकुन्दाज को किले को चारों ओर से घेर लेने का आदेश दिया ताकि महू से मंगाई गई तोपें जब तक मण्डलेश्वर न पहुँचे, तब तक उन्हें घेरे रखा जा सके। लगभग रात्रि के 10 बजे किले के नीचे नाले में तैनात गार्ड ने फायर किया। कैदी पिछले दरवाजे से निकलकर अंधकार में भाग गए। उस रात भारी वर्षा हो रही थी ऐसी स्थिति में उनका पीछा करने के स्थान पर किले पर कब्जा कर लेना ही उपयुक्त था। अगली सुबह होलकर महाराजा द्वारा प्रदत्त 100 सवारों के साथ मैं पहाड़ियों में उन्हें खोजने निकला। 19वीं नेटिव्ह इन्फ्रेन्ट्री को आदेश दिया कि नदी के कछार में यदि कोई कैदी उन्हें मिले तो उसे मार दें।

कैदी किले में रखे ब्रिटिश कोष में से 7396/- रू. दो आने व 9 पैसे भी लूटकर अपने साथ ले गए।

मण्डलेश्वर के दुर्ग में न केवल क्रांतिकारियों को कैद रखा जाता था। अपितु अनेक क्रांतिकारियों को यहाँ सार्वजनिक रूप से फाँसी पर लटकाया जा चुका था। 23 सितम्बर, 1857 को मंदार बख्श के दो पुत्रों छीटू और दुर्गू को फाँसी दी गई थी। इसी तरह 12 जनवरी, 1858 को भीमखान और मोहम्मद सलीम को भी विद्रोह करने के अपराध में फाँसी पर लटकाया गया था।

मण्डलेश्वर दुर्ग से भागने वाले क्रांतिकारी पकड़े जाने का अंजाम भलीभाँति समझते थे फिर भी उन्होंने यह साहसपूर्ण कार्य किया था। जैसी की आशंका थी इनमें से कुछ लोगों को अंग्रेज सैनिक पकड़ने में सफल हो गए। उन पर निमाड़ के कार्यवाहक पॉलिटिकल असिस्टेंट केप्टन ई. थामसन ने मुकदमा चलाया और दण्डित किया। कोई भी क्रांतिकारी सजा पाने से बचा नहीं। सबको पृथक सजाएँ दी गई थी इस कार्य हेतु सात लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया था।

इन्हें सार्वजनिक रूप से फाँसी पर लटकाया गया। इन वीर देशभक्तों ने बिना किसी विरोध के मृत्यु का वरण किया। इन क्रांतिकारियों में से मायाराम नामक व्यक्ति को बेड़ियों में रखकर आजीवन सश्रम कारवास की सजा दी गई थी व उसे काले पानी (पोर्ट ब्लेयर) की जेल में रखा जाने का आदेश दिया गया था। उसके साथ 10 अन्य क्रांतिकारियों को भी आजीवन कारावास की सजा देकर काला पानी भेजा गया था।

अंग्रेजों का मुख्य ध्येय निमाड़ के इस पर्वतीय अंचल के भील क्रांतिकारियों को फाँसी पर लटकाकर या देश से निष्कासित कर आदिवासियों का मनोबल तोड़ना था इसीलिए उक्त क्रांतिकारियों को या तो फाँसी की सजा दी गई या उन्हें काले पानी की जेल भेजा गया।

इस दमन चक्र के बावजूद एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरकर सामने आता है कि जब सम्पूर्ण उत्तर भारत में विद्रोह को कुचल दिया गया था तब दिसम्बर 1861 तक भी निमाड़ में यह लड़ाई जारी थी। अंग्रेज चाहते तो उत्तर-भारत की अंग्रेजी फौजों को अब निमाड़ की भूमि पर पूरी तरह सक्रिय कर सकते थे किन्तु व्यवस्थावश वे ऐसा नहीं कर पा रहे थे, इसके लिए दो बातें मुख्य रूप से उत्तरदायी थी- पहली यह कि ब्रिटिश फौजों को मैदानी युद्धों का अनुभव था- पहाड़ी क्षेत्रों में वे कुशलता से युद्ध करने में सक्षम न थी और दूसरा यह कि भील क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश फौज से कभी आमने-सामने का युद्ध नहीं किया, वे गोरिल्ला युद्ध प्रणाली अपना रहे थे। पर्वतीय क्षेत्र के दुर्गम मार्ग, नदियाँ व घने वन आदिवासियों के लिए संरक्षण स्थल थे। इन मार्गों का उपयोग अंग्रेज सैनिकों के लिए कठिन था। सबसे बड़ी समस्या तो यह

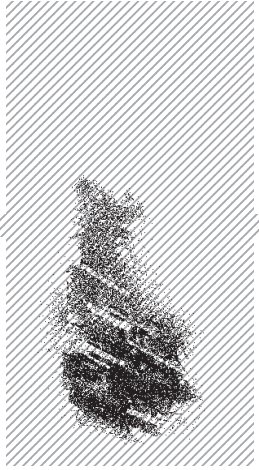

थी कि आदिवासियों के मध्य ब्रिटिश विरोध ने एक जन-आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया था।

मालवा व निमाड़ के भीलों के शौर्य, निष्ठा व स्वामी भक्ति से सर जॉन मॉलकम भी बड़ा प्रभावित हुआ था और उसने इन भीलों का उपयोग सिपाहियों के रूप में करने की भी बात कही है। भीलों के उक्त गुणों का शोषण अपने पक्ष में करने के लिए ही 'मालवा भील कार्प्स' का गठन किया गया था। जब निमाड़ में सारे प्रयास असफल होते दिखाई देने लगे तो मालवा भील पल्टन को ही अधिक शक्तिशाली बनाकर निमाड़ के सैनिक अभियान को तेज किया गया। भीलों के विरूद्ध कूसबिया नामक स्थान पर बड़ा शिविर लगाया गया था। निमला, बिसराम और खुमान के नेतृत्व में भीलों ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध झण्डा उठाया और 16 दिसम्बर 1861 के दिन उक्त अंग्रेज शिविर पर ही आक्रमण कर दिया। दोनों पक्षों के मध्य काफी लड़ाई हुई, जिसमें तीन भील सिपाही मारे गए और 13 बुरी तरह घायल हो गए।

इस आक्रमण के 11 क्रांतिकारी भील बाद में पकड़ लिए गए, जिनमें उनके नेता भी थे। जिन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध खुली बगावत करने का आव्हान जारी किया था इनके विषय में सेन्ट्रल इण्डिया के ए.जी.जी. ने भारत सरकार के तत्कालीन सचिव कर्नल एच.एम. ड्युरेण्ड को 9 जून, 1862 को पत्र भेजा जिसके साथ निमाड़ के पॉलिटिकल एजेण्ट का पत्र भी संलग्न भेजा गया था। पॉलिटिकल एजेण्ट ने क्रांतिकारियों पर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया था।

अपने पत्र में पॉलिटिकल एजेण्ट ने लिखा- यह मुकदमा बड़वानी के भीलों द्वारा गत दिसम्बर में कुसबिया के सैनिक शिविर पर किए गए हमले के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। इस शिविर में मालवा भील कार्प्स की टुकड़ी थी जिसके तीन सिपाही मारे गए व 13 घायल हो गए थे। इस मुकदमे के मुख्य अपराधी तुलसीराम व नीलमा नायक हैं। जिन्होंने भीलों को विद्रोह के लिए भड़काया व कुसबिया पर हुए आक्रमण का नेतृत्व भी किया, जबकि शेष कैदियों को उनका अनुयायी कहा जा सकता है।

तुलसीराम ने पेशवा के रूप में और सूरतगिर ने उसके प्रमुख सहायक के रूप में खानदेश में विद्रोहियों को उत्तेजित किया था तथा खेतिया के भील प्रमुख मावसा भील और उसके भाइयों को युद्ध लड़ने के लिए भड़काया था, तथा पुरस्कृत करने का वचन दिया था। केप्टन वुड ने सभी बंदियों को अपराधी घोषित किया है तथा सभी को सजा-ए-मौत दी है। वह (तुलसीराम) एक पंजाबी है, तथा 1857-58 के मुख्य विद्रोह में यदि उसने सीधा भाग न लिया हो तब भी वह विद्रोहियों के साथ जुड़ा अवश्य होगा। उसने भीलों को विद्रोह के लिए भड़काया तथा कुसबिया के आक्रमण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह अपने हाथ में तलवार लिए घोड़े की पीठ पर सवार था, व नेतृत्व कर रहा था। सूरतगिर ने सक्रिय रूप से हिस्सा लिया और तुलसीराम को सहायता की।

इन क्रांतिकारियों की ही तरह निमाड़ के क्षेत्र में क्रांतिकारियों के नेता भीमा नायक को भी उसके साथियों के विश्वासघात के कारण गिरफ्तार किया गया। उसकी गिरफ्तारी व उसकी सजा के विषय में अभी तक कोई प्रामाणिक अभिलेख उपलब्ध न था। संयोग से धर्मयुग में प्रकाशित एक लेख में उन क्रांतिकारियों की सूची दी गई थी जिन्हें विद्रोह के दण्डस्वरूप काला पानी की सजा दी गई थी। इस सूची में भीमा नायक (निमाड़) का नाम भी अंकित है। इससे स्पष्ट हो गया है कि भीमा नायक को फाँसी नहीं दी गई थी किन्तु उस वीर योद्धा ने व उसके समान सैकड़ों क्रांतिकारियों ने अपनी मातृभूमि से दूर समुद्र की खामोशियों के बीच अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। देश की आजादी पर कुर्बान हो जाने वाले इन आदिवासी देश भक्तों को क्या कोई आज याद करेगा?

ऐसो जोगी न देखो

डॉ. हरीमोहन पुरवार

इतिहास साक्षी है कि शाहजहाँ ने अंग्रेजों को इस देश में व्यापार की अनुमति देकर, इस शस्य श्यामला भारत भूमि पर अनाचार, अत्याचार, बर्बरता का बीजारोपण किया था। देशवासियों के हँसते खिलखिलाते चेहरों का उदासी, प्रताड़ना, निर्लज्जता के साथ व्यापार किया था। अंग्रेज आये और उन्होंने अपने नापाक मंसूबों से इस पवित्र माटी को अपवित्र करने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया। यहाँ पर शासक बन उन्होंने यहाँ की सांस्कृतिक चेतना को विक्षिप्तता की कगार पर पहुँचाने का प्रयास किया। परन्तु यह भारत भूमि तो निर्मल भूमि है। यहाँ पर भगवान श्रीराम ने जन्म लेकर अपने क्रियाकलापों द्वारा मर्यादाओं का पाठ पढ़ाया है। यहाँ पर श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन का मोह भंग करके महाभारत का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का संदेश दिया है फिर भारतीय जनमानस को दिग्भ्रमित कर पाना मुश्किल था। यहाँ के जनजीवन को ज्ञात था कि उसका शासक कैसा हो, महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है–

भयार्तानां भयात् त्राता दीनानुग्रहकारणात्।
कार्याकार्य विशेषज्ञों नित्यं राष्ट्रहिते रतः॥

शासक, भयातुर मनुष्यों की भय से रक्षा करें, दीन दुखियों पर अनुग्रह करें, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को विशेष रूप से समझें और सदा राष्ट्र के हित में संलग्न रहें।

इस देश में अंग्रेजी हुकूमत के अत्याचार बढ़ने लगे। भारत की अस्मिता रौंदी जाने लगी। यहाँ के आनन्द और उल्लास से तनी छाती झुकने लगी और पीठ कोड़ों की मार से छलनी-छलनी होने लगी। तभी इस देश की चेतना ने अंगड़ाई ली और अथर्ववेद

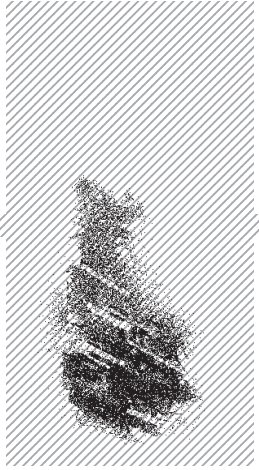

(बीसवाँ काण्ड) सं. 136 मं. 3 में वर्णित आदेश को हृदयंगम किया–

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पघते।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति॥

जब निम्नतर प्रजा वर्ग अग्नि के तीक्ष्ण ताप से तापित के समान दुखित होता है तथा विद्वज्जन कष्ट में होते हैं तब वीर जन इनका दुख मिटाने हेतु वसन्त के समान नई स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। अंग्रेजों की तपती लपलपाती लपटों से आहत हुआ पूरा भारत देश ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में स्वाधीनता की अलख जगाने वाला मोहनदास करमचन्द्र गाँधी उठ खड़ा हुआ। बुन्देलखण्ड भी गाँधी के प्रेरक धारा के साथ हिलोरें लेने लगा। वहाँ का जनजीवन गाने लगा–

गाँधी बाबा तोर बंसुरिया बाजे कौने कौने ओर
अफ्रीका नैटाल में बाजी, विपदा होइगे थोर
चम्पारन खेडे में बाजी, कस्टाकस्ट घनघोर
सो बंशी अब बाज रही है, भारत में चहुंओर

सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों के अत्याचार पूर्ण वेगवती होकर यहाँ की जनता को त्रस्त कर रहे थे और गुलामी की जंजीरों में जकड़े होकर भारतवासी पराधीनता का नर्क भोग रहे थे, क्योंकि मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है–

सर्व परवंश दुःख सर्वमात्मवंश सुखम्।
एतद्विघात्समासेन लक्षणं सुखदुखयोः॥

जो कुछ पराधीन है, दुखप्रद है और जो कुछ स्वाधीन है, वही सुखप्रद है। यही सुख-दुख का संक्षिप्त लक्षण है, ऐसा जानना चाहिये।

भारतवासी भी दुःख झेलते-झेलते गाँधी जैसे गुनियाँ की प्रतीक्षा में थे, तभी तो बुन्देलखण्ड का जनमानस कहता था–

भारतवासी सोय रये सब, सिगरी दुनिया जागै री
हिन्दू मुसलमान दोउ सो रए, गाँधी गुनियाँ जागै री
माते और महाजन सो रए, खितहर रिनियाँ जागै री
बूढ़े घर सो रए पै उनकी, नई दुलहानियां जागै री
घर के सो रए पै खटका में, घर कौ मुखिया जागै री
कहें जसोदा सधवां सो रई, विधवा दुखिया जागै री

ऐसी विकट परिस्थिति में इस देश के विचारकों, मुनियों ने अपने प्राचीनतम् साहित्य से प्रेरणा ली और तदनुसार-अथर्ववेद उन्नीसवाँ काण्ड सू. 49 मं. 9 में उल्लिखित वाक्यों को अनुसरण का मार्ग बनाया–

यो अघस्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः।
रात्री तस्य प्रतीत्यं प्रग्रीवाः प्रशिरो हनत्॥

आज ही जो पाप का विचार लेकर चोर तथा अन्य दुष्टजन रात्रि समझकर नगर में प्रजा को सताने हेतु आये, उनके गले और सिर को सर्वथा तोड़ डालें।

और इस देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के महाअभियान का सूत्रपात हुआ, जिसे 1857 की प्रथम क्रान्ति से 1947 की स्वतंत्रता तक न जाने कितने ही आजादी के मतवालों ने अपने प्राणों को होम करके स्वतंत्रता का चिरप्रतीक्षित फल आने वाली पीढ़ियों के लिये प्राप्त कराया। इस लम्बे स्वतंत्रता समर में महात्मा गाँधी ने सामूहिक एकता के सूत्र में समस्त भारतीयों को बाँधकर जो अविचलित नेतृत्व प्रदान किया है, वह इतिहास के पृष्ठों पर जगमगाते स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता की जंग दो पहियों के रथ पर चढ़कर लड़ी थी। रथ का एक पहिया जहाँ अंग्रेज हुक्मरानों को भारत छोड़ने के लिये विवश कर रहा था। वहीं रथ का दूसरा पहिया देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिये स्वदेशी का अपने चरखे के माध्यम से प्रचार-प्रसार कर रहा था। महात्मा गाँधी का प्रत्यक्ष प्रभाव था बुन्देली जनमानस पर, जो यहाँ के लोक गीतों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

महात्मा गाँधी ने समाज की कलुषित जाति प्रथा को तोड़ते हुये, सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुये अंग्रेजों को इस देश से बाहर खदेड़ने का कार्य किया था। तभी तो यहाँ पर गाया जाता है–

जात पांत तोड़ भर देसी बना दव
डरखों भगाई सरकारी

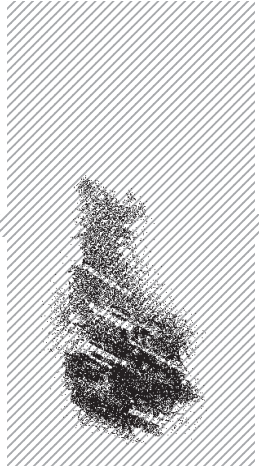

कर कर सत्याग्रह लड़ी रे लड़ाई
राजपाट छीनो दे तारी।
गाँधी को मानौ औतार
जे है सत्य अहिंसा के पुजारी।

गाँधी जी महाराज महात्मा मेरा बनरा मोह लिया
मोहलिया भरमाय लिया खादी पहना सजवाइ लिया
पुलिस कचेरी डंडा गोली का डर सबई भगाइ दिया
जेल भिजा कैदी बनवाया देश का पाठ पढ़ाइ दिया।

एक ओर जहाँ अंग्रेजों की फौजों का लाव लश्कर था, वहीं दूसरी ओर गाँधी की बगैर अस्त्र-शस्त्रों की उच्च मनोबल से प्रेरित फौज थी, जिसके विषय में कहा जाता है-

वारे का बूढ़े बना दए सिपइआ
औरत संग मरद सजाये देसी गाँधी ने
तोपें चली न लागी बन्दूके
सत्याग्रह से जीती लड़ाई देसी गाँधी ने।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन, दांडी यात्रा आदि चले। सभी आन्दोलन हिंसा से परे थे। अहिंसा की शक्ति ने गाँधी को अवतारी बना दिया। बुन्देलखण्ड में गाँधी के गीत गाये जाने लगे-

गांधी एक महात्मा उपजै, कलयुग में अवतारी रे
तिनकी तिरिया पतिबरता भई, कस्तूरी जग जाने रे
चरखा संग रमाई धूनी, दोई मानस उपकारी रे
सांची बात धरम की जानी, और अहिंसा ठानी रे
मरद लुगाई लड़ी लड़ाई, सत्याग्रह सो जानी रे
अंगरेजन सो जबर जोर भई, हार उनइ ने मानी रे।

गाँधी प्रेरणा पुन्ज थे। यहाँ के जनमानस पर उनकी इतनी गहरी छाप थी कि लोग उन्हें महात्मा कहने लगे। वे एक कर्मयोगी के रूप में याद किये जाने लगे।

ऐसो जोगी न देखो यार
जैसो भयो कलयुग में गाँधी
अंगरेजन के राजपाट सब उड़ा दये
ऐसी हती गांधी की आंधी

गाँधी का प्रभाव तो चारों ओर था। एक युवक का विवाह होने जा रहा है, घर में स्त्रियाँ बन्ना गाती हैं-

वधूपक्ष भी गाँधी से कम प्रभावित न था। उसके यहाँ भी स्त्रियाँ मिल बैठकर वधू को गाँधी की बातों का अनुसरण करने की शिक्षा देते हुये गाती हैं-

हुकुम गांधी का निबाओ प्यारी बन्नी
मेरी बन्नी पहनो सुदेसी साड़ियाँ
विदेसी को वापिस करो प्यारी बन्नी
ले लो तिरंगा झंडा हात सुराजी बन्नी
खादी पियारी सब जात सुदेसी बन्नी
चरखा चलाओ दिन रात, सुराजी बन्नी

गाँधी का तो इतना प्रभाव था कि लोग रास्ते चलते गुणगान करते थे। एक चना बेचने वाला अपने चने में मसाला मिलाकर चने बेचते हुये कहता था-

चना जोर गरम बाबू, मैं लाया मजेदार चना जोर गरम
चना को गाँधी जी ने खाया
जाके डंडी नमक बनाया
सत्याग्रह संग्राम चलाया चना जोर गरम
तुम भी चना चबेना खाओ, खाके गाँधी जी बन जाओ
अंग्रेजों को मार भगाओ, चना जोर गरम

देश को स्वावलम्बी बनाने हेतु गाँधी का जो स्वदेशी अपनाओ कार्यक्रम चला, वह भी अत्यन्त प्रभावशाली था। लोगों ने विदेशी वस्तुओं की सार्वजनिक होली जलाई और स्वदेशी को अपनाकर अपने आपको गौरवान्वित किया। महात्मा गाँधी ने इस स्वदेशी की प्रेरणा अपनी भारतीय संस्कृति से पायी थी।

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषत:
भूषिकोत्कीर्ण जीर्णेन कर्म कुर्याद्विचक्षण:॥

सिले हुये, जले हुये, खासकर विदेशों में बने हुये वस्त्र, चूहे के कुतरे हुये अथवा पुराने वस्त्र के द्वारा बुद्धिमान पुरुष वैद्य

कर्मों को न करें।

इसी स्वदेशी को गाँधी ने आधार दिया अपने यन्त्र चरखे से। पूरे भारत में चरखा चलने लगा। चरखा स्वतंत्रता का पर्याय बन गया था। सभी मातायें-बहिनें स्वयं चरखा काततीं तथा दूसरों को भी चरखा कातने हेतु प्रेरित करते हुये कहतीं-

चरखा कातौ मेरी भैना प्रेम से जी,
एजी कोई जल्दी से होय सुधार
बढ़िया बढ़िया कातो मेरी भैना सूत खों जी
एजी कोई पहने सब परिवार
माल विदेसी भैना मेरी त्याग दो जी
ऐसी कोई देसी खौं करो प्रचार
भारत माँ को चरखा लाड़लो जी,
एजी जासे भयो हरिजन उद्धार

स्वदेशी के कार्यक्रम में कोई ढिलाई न आये और अंग्रेजों को भी बाहर भगाना है। दोनों कार्यक्रम एक साथ एक वेग से इस देश में चल रहे थे, जिनका प्रभाव निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है-

मेरे चरखे का टूटे न तार, चरखा चालू रहे
गाँधी महात्मा दूल्हा बने हैं दुल्हिन बनी है सरकार
चरखा चालू रहे।
सारे कांग्रेसी बने हैं बराती पुलिस बनी है कहार
नेहरू जवाहर बने हैं नेगारे नऊआ बनो थानेदार
लांई लिनलिथगो दौर दौर मनावै, जीजा गौने में देहै सुराज
चरखा चालू रहे।

महात्मा गाँधी का आत्मबल ऐसा था जिसके सामने अंग्रेजों की बड़ी-बड़ी तोपें भी झुक गयीं। शरीर पर एक लंगोटी लगाये गाँधी ने पूरे विश्व को अहिंसा का चिन्तन दिया और समाज में परस्वार्थी बनने की सीख दी-

बापू भले हते बलधारी, जिनको जानत दुनिया सारी
पर स्वारथ के लाने जिनने, छोड़े महल अटारी
देस विदेसन लगा लंगोटी, घूमें खादी धारी
बिन हथयारन लड़ी लड़ाई, कर गये देस सुखारी

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। अंग्रेजों ने भारतवासियों को सत्ता सौंपी। जहाँ गाँधी जी ने परतन्त्रता की अन्धेरी रात काटी, वहीं नेहरू ने आजादी का सुनहरा सबेरा लाया-

अब सारो पलट गयो राज देस में आजादी आई बहना
मिटगई कारी रात सबेरो हंसत दिखा रओ है बहना
नेहरू सबेरो लायो मोरी बहना, गाँधी ने मेटी रात
देस में आजादी आई बहना

आजादी तो मिली परन्तु यह देश खण्डित हो गया और हमारा एक भाई हमसे अलग होकर रूठ गया। मन में दरार पड़ गयी और पाकिस्तान-हिन्दुस्तान की सीमा रेखा खिंच गई। नाथूराम गोडसे से यह बर्दाश्त न हुआ और उसने जन-जन के बापू पर गोली चला दी। बापू अपनी कथनी करनी करके अमर हो गये-

करनी मोहन मोहनी हो कथनी कहां लो होई
मोहन भये कलिकाल में, इधर गाँधी अवतार रे
गाँधी हते सो मर गये, देस विदेसन नाम
हत्यारों मराठा गोडसे, जीने जीतेऊ लै लये प्रान रे।

समूचे राष्ट्र ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने बापू को अन्तिम विदाई दी और उन्हें राष्ट्रपिता मानते हुये उनके बतलाये मार्ग पर चलने की कसम खाई।

गाँधी जी के हो गये नाम, जैसे भये रामकृष्ण के।
गाँधी को दओ सम्मान राष्ट्र ने, राष्ट्रपिता कहके॥

देश स्वतंत्र हो गया। अब सब लोग आपस में बगैर लड़े हिल-मिलकर रहें, यही सबका धर्म है, यही अब हमारा कर्त्तव्य है, तभी हम अपने बापू को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकेंगे।

अब पूरी हो गई आस देसखों आजादी मिल गई है
अब न लड़ाई करियों रसिया, आने धरम की खोई
हिल मिल रहियो अब तो रसिया सबको गले लगाई।

अमर शहीद महाराज बख्तावर सिंह

राधाकृष्ण बावनिया

कभी-कभी प्रमुख घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों में अंकित होने से वंचित रह जाती हैं। मालव अंचल की ऐसी ही एक घटना है इतिहास में जिसे प्रमुखता नहीं मिली अनेक देशभक्तों और वीरों ने प्रथम स्वतंत्रता समर रूपी महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुतियाँ और बलिदान देकर इसे सफल बनाने की भरपूर कोशिश की, किन्तु इस क्षेत्र का दुर्भाग्य ही रहा है कि महाराजा बख्तावर सिंह राठौर जैसे प्रसिद्ध शूरवीर और स्वतंत्रता सेनानी का नाम इतिहास में अंकित होने से रह गया।

महाराजा बख्तावर सिंह राठौड़ बहुत बलशाली, बहादुर, उदार, स्पष्टवादी और न्यायप्रिय शासक थे। जब अंग्रेजों के अत्याचार अत्यधिक बढ़ने लगे, तब जनता के दुखों को दूर करने का इन्होंने बीड़ा उठाया एवं मंत्री परिषद में विचार कर ये क्रांतिकारी तात्याटोपे और अपने राजगुरु राधोबाचार्य से मिलने कुक्षी गये। जहाँ अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति के संचालन की योजना बनाई गई। उस समय सारे देश में अंग्रेजों के प्रति असंतोष और आक्रोश की ज्वाला धधकने लगी थी। दिल्ली, झाँसी, मेरठ के साथ-साथ मालवा का यह राज्य भी स्वतंत्रता समर के यज्ञ में शामिल हो गया।

महाराजा बख्तावर सिंह ने पहले अपनी प्रजा को विश्वास में लिया। यही कारण था कि इनकी सेना में हिन्दू और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों से लोहा लिया। इतना ही नहीं इन्होंने भीलों (आदिवासियों) को भी सेना में भर्ती किया। मैं सोचता हूँ यहीं से अंग्रेजों के मन में भील पल्टन की कल्पना आई होगी। तभी उन्होंने भील पल्टन का गठन किया।

2 जुलाई सन् 1857 को योजना बनी, 3 जुलाई को गुलाबराय, भवानीसिंह और मोहन कामदार को भोपावर एजेन्सी से अंग्रेजों को बाहर करने भेजा। भोपावर का पॉलिटिकल एजेन्ट हेचिन्सन को अचानक हमले ने आश्चर्यचकित कर दिया और वह अपने परिवार

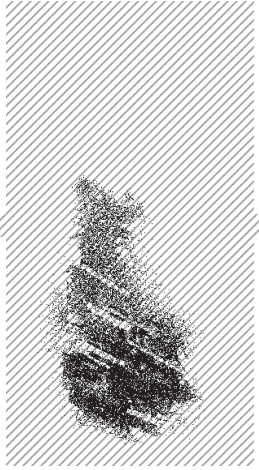

के साथ झाबुआ निकल भागा। भोपावर की संपत्ति अमझेरा लाई गई।

10 अक्टूबर 1857 को सरदारपुर छावनी पर धावा बोलकर उसे नष्ट कर दिया किन्तु इसमें शाह रसूल शहीद हो गया। महाराजा ने इस जीत की खुशी में अतामोहम्मद और गुल खाँ का सार्वजनिक स्वागत कर उनका हौंसला बढ़ाया।

दो स्थानों पर सफलता मिलने पर विश्वास बढ़ा। 16 अक्टूबर 1857 को महाराजा ने मानपुर पर अपना कब्जा जमाया। मानपुर लड़ाई में वहाँ का एजेन्ट यूनियन जैक मारा गया। मानपुर के बाद बख्तावर सिंह की नजर मंडलेश्वर पर थी किन्तु अंग्रेजों को इसकी भनक लग गई। महाराजा वापस अमझेरा लौट आए।

हेमिल्टन ए.जी.जी. महू ने कर्नल ड्यूरन्ड और कैप्टन हैचिन्सन को अमझेरा, धार की क्रांति दबाने भेजा। महाराजा ने अमझेरा छोड़ा और लालगढ़ को अपना गढ़ बनाया। जब कर्नल ड्यूरन्ड, कैप्टन हेचिन्सन और जनरल क्लार्क की वहाँ एक न चली तब उन्होंने छल-बल से 11 नवम्बर 1857 को बख्तावर सिंह को पकड़ लिया। महाराजा को कहाँ और किसने पकड़वाया यह अभी भी संदिग्ध है।

जो भी हो बख्तावर सिंह को हैदराबाद कान्टिन्जेन्ट कैव्हैलरी के पहरे में महू लाया गया। इनके साथ पकड़े गये सलूकराय, गुलाबराय और भवानीसिंह को पहले फाँसी दे दी गई। अंग्रेज इस क्रांतिवीर बख्तावरसिंह पर कई दिनों तक मुकदमा चलाने का बहाना करते रहे। जिससे जनता में विद्रोह न भड़के और अन्ततः 10 फरवरी 1858 को इन्हें इन्दौर में फाँसी दे दी।

महाराजा बख्तावरसिंह का नाम शायद इसलिए भी प्रचारित नहीं हुआ होगा, कि अमझेरा मालवा के दूरस्थ आदिवासी अंचल में स्थित है। आवागमन और दूरसंचार के साधनों का अभाव तो रहा ही होगा, साथ ही इस अंचल की गतिविधियों पर न तो इतिहासकारों और न ही किसी साहित्यकार की दृष्टि पड़ी।

संसार में जब-जब एक जैसी घटनाएँ एक साथ घटती हैं तब-तब बड़े या नामी नगरों को प्रमुखता दी गई है और छोटे स्थानों की हमेशा उपेक्षा हुई है। इसी कारण अमझेरा भी इसी क्रम में रहा होगा। इसलिए वह प्रकाश में नहीं आया।

जो भी हो, अमझेरा के इस वीर ने मालवा में स्वतंत्रता का बिगुल बजाया, वह इसके प्रणेता बने। आज का अमझेरा मध्यप्रदेश के जिला धार की तहसील सरदारपुर का कस्बा है। लेकिन सन् 1857 में एक स्वतंत्र रियासत और महाराजा बख्तावर सिंह राठौड़ की कर्मभूमि थी।

गीत

धूल धूसरित, थी जो प्रतिभा
उसकी चमक दिखाता हूँ
महाराज बख्तावरसिंह की
लो मैं कथा सुनाता हूँ

आदिवासी, मालव अंचल में
अमझेरा था राज
प्रजाहित में सदा अनेकों
किये थे जिसने काज

स्वातंत्र समर, सन् सत्तावन में
जिसने बिगुल, बजाया था
मालव की, इस पुण्य धरा का
जिसने मान बढ़ाया था

अंग्रेजों के, असीम सैन्य को
जमकर टक्कर मारी थी
और अपनी, सारी प्रभुता को
जनहित ही में, वारी थी

हम जिसका, गुणगान कर रहे
देश उसे, अब तो पहचाने
समय आ गया, है भैया
जन-जन भी, उसको सनमाने

जन-जन भी, उसको सनमाने
जन-जन भी, उसको सनमाने।

कालजयी बिरसा मुंडा

डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा

छोटा नागपुर का यह प्रागैतिहासिक वनाच्छादित प्रदेश विभिन्न काल खंडों के रूपान्तरों से गुजरता हुआ अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्षरत रहा है। वेदकाल से लेकर आधुनिक काल तक की इसकी यात्रा कथा की विभिन्न कड़ियाँ भारतीय मनीषियों के ग्रन्थों एवं क्षेत्रीय लोक कथाओं में सुरक्षित हैं। छोटा नागपुर और संथाल परगना का यह झारखण्ड प्रदेश कभी पौंड् और अंग प्रदेश का सम्मिलित क्षेत्र था। यह क्षेत्र कभी अर्कखण्ड, कर्कखण्ड, कोकरा क्षेत्र आदि के नाम से प्रख्यात था। आईने अकबरी में इसको (छोटा नागपुर को) कोकरा नाम से संबोधित किया गया है जबकि उड़ीसा में प्राप्त 12वीं शताब्दी के 'ताम्रपत्र लेख' में इस क्षेत्र का नाम 'झारखण्ड' अंकित है। इस क्षेत्र का विस्तार बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश तक था। फ्रांसिस बुकानन (1816 ई.) के मतानुसार काशी से लेकर बीरभूम (बंगाल) तक सुविस्तृत पहाड़ी क्षेत्र 'झारखण्ड' कहा जाता था। 'झारखण्ड' सामान्य अर्थों में वन्य या वनाच्छादित प्रदेश का बोध कराता है। इस क्षेत्र या प्रदेश में विभिन्न जनजातियों का आगमन विभिन्न कालखण्डों में सिंधु घाटी से विस्थापित होकर हुआ। इसी क्रम में मुण्डा, हो और उरांव छोटा नागपुर क्षेत्र में आकर विभिन्न नदी घाटियों एवं सघन वन प्रदेश में बस गये, जंगल काटकर अपने आवास क्षेत्र को आबाद किया और कृषि युग में प्रवेश कर गये। संथाल दामोदर घाटी से होकर संथाल परगना (अंगप्रदेश) के राजमहल पहाड़ियों और गंगा की घाटी के आस-पास अपना वास स्थल बनाया।

इस सुविस्तृत एवं सघन वन्य प्रदेश में उन्मुक्त और प्राकृतिक जीवन जीते हुए अपने सिंगबोगा, नगेएरा, बुरू बोंगा, जहेर एरा आदि की अराधना में लगे लोगों के बीच अंग्रेज शासकों की दखलअन्दाजी, जमीन्दारों की बेठबेगारी, ठेकेदारों द्वारा शोषण और धार्मिक संस्थाओं द्वारा बहला-फुसलाकर धर्मान्तरण ने उन्हें समय-समय पर विद्रोह करने के लिए विवश किया था।

इस संबंध में उल्लेखनीय है कि अपनी आजादी के लिए इस प्रदेश में विभिन्न जनजातीय समुदायों द्वारा विभिन्न कालखण्डों में

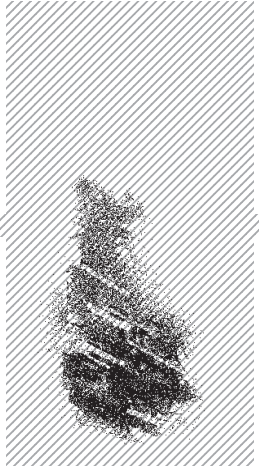

विद्रोह किया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में 1772 से 1778 के बीच पहाड़िया विद्रोह (सं.प.), 1771 से 1800 में भूमि विद्रोह (सिंहभूम, मानभूम) 1831 से 1833 में कोल विद्रोह (राँची, सिंहभूम), 1855 से 1857 में संथालहूम (सं.प.), 1880 से 1881 में सरदार विद्रोह (छोटा नागपुर में) और 1811 में मुंडा विद्रोह उल्लेखनीय घटनाएँ हैं। छोटा नागपुर की इस प्रागैतिहासिक धरती पर रांची जिला के उलीहातु में डोमबारी पहाड़ी की गोद में कालजयी बीर बिरसा का अवतरण 15 नवम्बर 1857 में हुआ था। बिरसा के पिता सुगना मुंडा एक विपन्न किसान थे और बाद में वे 'ईसाई' धर्म स्वीकार कर 'मसीहदास मुंडा' बन गए थे। बिरसा का बचपन अपने ननिहाल चलकद में ही बीता था। गरीब माँ-बाप की दयनीय स्थिति का प्रभाव बिरसा के व्यक्तिगत जीवन पर पड़ा जिसने उसको बचपन से ही संघर्षशील बना दिया। प्रारम्भ में मिशनरी के प्रभाव से अधिक प्रभावित थे क्योंकि शिक्षा-दीक्षा मिशन स्कूलों में ही हुई थी परन्तु वैष्णव धर्मावलम्बी शिक्षक आनन्द स्वांसी के सम्पर्क में आकर उन्हें धर्म का एक नया क्षितिज मिला। रामायण, महाभारत , तंत्र-मंत्र, आयुर्वेद आदि का अध्ययन तथा श्रवण करते-करते वे अपने समाज में 'सोखा' और 'गुणी' समझे जाने लगे। संघर्ष में पले-बढ़े बिरसा का हृदय दुख-दर्द को दूर करने में अपना सर्वस्व होम करने को तत्पर रहता था। वे 'चुटुपूर्ति' गोत्र के थे, जिसके पूर्वजों का राज चुटियानगर में था और यह उनके लिए गर्व का विषय था। वे कभी हीन भावना का शिकार नहीं हुए। उनके मन में राम, कृष्ण और ईसामसीह के उपदेश गूँजते रहते थे और वे एक सुधारवादी एवं समाजवादी धर्म गुरू के रूप में अपने को विकसित करते रहे। उनकी वाणी में एक अद्‌भुत शक्ति भी थी और अनुयायी उनके बताये मार्ग पर चलने को संकल्पित थे। अब बिरसा का अधिकांश समय चलकद ग्राम में ही बीतता था, जहाँ उनके अनुयायियों की भीड़ लगी रहती थी। किशोर बिरसा का भावुक मन प्रौढ़ता की दिशा में अग्रसर था और समाज को बदलने का संकल्प उत्प्रेरित कर रहा था। उन्होंने जमीन और जंगल पर जनता का अधिकार मानते हुए जमीन्दारों के हक में बने कानून और मालगुजारी की वसूली को गैर कानूनी माना और अपने अनुयायियों से मालगुजारी न देने की अपील की। फलस्वरूप रांची और सिंहभूम के अनेक रैयतों ने मालगुजारी देना बन्द कर दिया। यह घटना 1894-95 के बीच घटी। इस पर 22 अगस्त 1895 में बिरसा सरकारी काम में बाधा डालने के आरोप में गिरफ्तार कर लिये गए। परन्तु बाद में निर्दोष पाये गये और कारागार से मुक्त कर दिये गये। उनका सुधारवादी व्यक्तित्व अब राजनीति से पूरी तरह जुड़ गया था। अपने आन्दोलनों को वे सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चला रहे थे, अब वे 'धरती आबा' बन चुके थे और उनका आन्दोलन 'बिरसैत आन्दोलन' के नाम से प्रख्यात हो गया था। मुंडा समाज की बुराईयों-हड़िया, शराब पीना, डायन-ओझा का अंध विश्वास, अपना धर्म छोड़कर ईसाई धर्म मानना आदि को दूर करने में वे जुट गए थे। उनका सुधारवादी आन्दोलन राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द और चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन की तरह प्रगतिशील एवं उदारवादी सिद्धांतों पर आधारित था। उनके उपदेश एवं आन्दोलनों के मुख्य बिन्दु थे-

(क) प्रेतात्माओं की बहुलता और उनके नाम पर सोखा, ओझा, मति आदि द्वारा फैलाये गए भ्रम से दूर रहना।

(ख) सिंग बोंगा ही एक मात्र परमेश्वर है।

(ग) बलि देना अर्थहीन और व्यर्थ की जीव हत्या है।

(घ) सभी जीवों पर दया और उनपर प्रेम करना चाहिए।

(च) हड़िया और शराब पीना नहीं चाहिए।

(छ) सादा जीवन और उच्च विचार जीवन का आदर्श बने।

(ज) एकता में ही बल है, अत: संगठित रहें।

(झ) पवित्र जनेऊ धारण करो और एक दिन काम छोड़कर 'सिंगबोंगा' के चिन्तन में बिताओ।

(ट) जूठा, अखाद्य भोजन और दूसरे धर्मावलम्बी से विवाह मत करो।

बाँसुरीवादन और भजन के माध्यम से वे 'संङ्बोंगा' के यशोगान करते थे। उन्होंने अपने प्रवचन से चुटिया, नवरत्न गढ़, ठाकुर दास, जगरनाथपुर, नागफेनी, रोगोद, डोम्बारी पहाड़ी तथा चलकद आदि को तीर्थस्थल में बदल दिया।

बिरसा की दृष्टि में जनजातीय समाज की अस्मिता और संस्कृति को नष्ट करने के चार एजेंट थे, जो उस क्षेत्र में अपने षड्यंत्र से अंग्रेजी शान को सुदृढ़ बनाने के लिए फैला रहे थे-

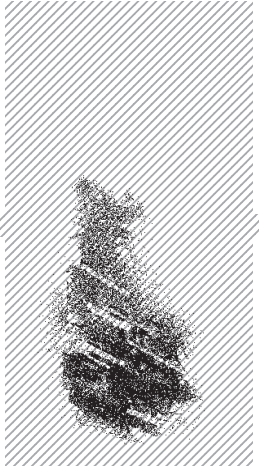

(क) अंग्रेज शासन तथा उनके देशी दलाल
(ख) धार्मिक संस्थाएँ
(ग) जमीन्दार और राजा
(घ) जंगल आदि से जुड़े ठेकेदार।

अत: ऐसे तत्त्वों को जड़ से उखाड़ कर सिंगबोंगा की इस पवित्र धरती को स्वतंत्र कराने का संकल्प 'धरती आबा' का जीवन लक्ष्य था। इस मंजिल को पाने के लिए युवा अनुयायी परम्परागत हथियारों को सहारा लेने को कृतसंकल्प थे। वे लगान देना और बेठबेगारी करना नहीं चाहते थे। इसी बीच 1897 में भयंकर अकाल पड़ा। 1898 में चेचक और हैजा से तबाही हुई और 1899 का सूखा इस क्षेत्र में 'प्रलय' झेलने को विवश कर गया। परन्तु प्रशासन (अंग्रेजी शासक, राजा और जमीन्दार) मूक दर्शक बने रहे, 22 दिसम्बर 1899 को कोटगढ़ में बिरसैतों की महती सभा हुई। जिसमें 24 दिसम्बर 1899 को आततायियों के खिलाफ मोर्चा लेने का संकल्प लिया गया। बिरसा इस आन्दोलन को संचालित करने हेतु अज्ञातवास में चले गए थे। 24 दिसम्बर 1899 की मध्य रात्रि में सरवदा, बुण्डू, मुरहू आदि स्थानों पर एक साथ हमला हुआ और बहुत से अंग्रेज पादरी और उनके समर्थक मारे गये तथा घायल हुए। फादर जॉन हॉफमैन के अनुसार 8 लोग मारे गए, 19 घायल हुए और 21 घर जला दिये गये थे। सशस्त्र क्रान्ति की यह पहली चिनगारी थी। इस घटना के बाद अथवा 8 जनवरी 1900 को 10 बजे रांची से आयुक्त और उपायुक्त फौज की एक टुकड़ी लेकर खूँटी पहुँच गए। कैप्टन रॉक की सेना ने सरवदा मिशन के पास बिरसैतों को भागने को मजबूर किया और वे डोम्बारी 'शौलरकब' पर एकत्रित होने लगे। वहाँ हजारों बिरसैत अपने नायक (बिरसा) के सन्देश की प्रतीक्षा में थे। उपायुक्त ने अपने परम्परागत हथियार डालने और आत्मसमर्पण करने का आदेश कई बार दिया। परन्तु वहाँ उपस्थित बिरसैत के नायक ने कड़कती आवाज में क्रोधित होकर कहा–

'तुम लोग सफेद चमड़ी वाले 'दीकू' हमारे देश को छोड़कर अपने देश को वापस चले जाओ। हम हथियार नहीं डालेंगे।' इस पर उपायुक्त द्वारा गोलीबारी का आदेश दिया गया और देखते-देखते देशभक्त बिरसैतों के गर्म खून से 'डोम्बारी पहाड़ी' की हरी-भरी धरती लहुलुहान हो गयी। सैकड़ों युवा, बाल, वृद्ध अपने 'धरती आबा' के आह्वान पर शहीद हो गए। उपायुक्त की पत्नी को निरीह बच्चों और महिलाओं की हत्या नहीं देखी गयी और उसने अपने पति (उपायुक्त) को फौरन गोलीबारी बन्द कर देने को कहा था। डोम्बारी पर्वत पर हुए इस जघन्य हत्याकांड पर संवेदनशील महिला के रूप में उपायुक्त की पत्नी की आन्तरिक वेदना को 'हो' कवि श्री अनन्त कुमार पिंगुआ ने व्यक्त किया है–

नेलतन टोनाए मेमीन
दूरबीन यंत्र ते।
नेलकिया आए गोजोकन एंगा
तोवानु-तन बाले: होन

× × ×

एंगा जीवोन लोहाड जना
चिड लेका मेम
एअ: केएते कजिकेहा
होकाएपे-लड़ाई मेन्ते

अर्थात्-'अपनी दूरबीन से उपायुक्त की पत्नी ने ऐसी माताओं के मृत शरीर को देखा जिनसे दुग्धपान करता नवजात शिशु लिपटा हुआ था। भला एक माँ इस दृश्य को कैसे झेल सकती थी। अन्तत: गोलीबारी बन्द हो गयी।'

अंग्रेज एस.पी. और उपायुक्त को 'बिरसा' कहीं नहीं मिले। उन्हें पकड़ने के लिए 500/- इनाम की घोषणा की गई थी। उनका दाहिना हाथ- गया मुंडा इटके ग्राम में पुलिस मुठभेड़ में दो सिपाहियों को मारकर शहीद हो चुका था। बिरसा रोगोद से 30 कि.मी. दूर सघन वन में अपने सहयोगियों के साथ अज्ञातवास में थे। यह किसी को पता नहीं था। परन्तु बन्दगाँव राजा का दलाल बीर सिंह महली छोटा नागपुर के इतिहास का जयचन्द और मीर जाफर बन गया। पुरस्कार की लालच में उसने 'धरती आबा' को गिरफ्तार कराकर अंग्रेज शासकों के हवाले करने का जघन्य अपराध कर दिया। बिरसा 03 मार्च 1900 की रात में गिरफ्तार हुए और गुप्त रूप से पालकी में रखकर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था में उन्हें जंगल मार्ग से रांची केन्द्रीय कारागार लाया गया। उनके विरुद्ध यथेष्ट साक्ष्य या परिस्थितिजन्य साक्ष्य राजद्रोह के लिए

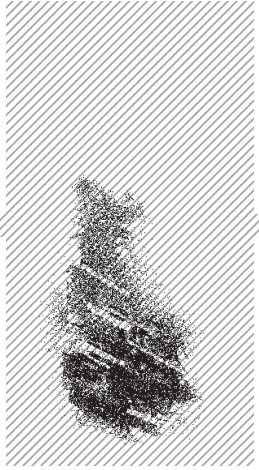

उपायुक्त के पास उपलब्ध नहीं था। फिर भी उनके विरुद्ध न्यायाधीश डब्लू.एस. काउट्स् द्वारा संज्ञान लेकर 'राजद्रोह का मुकदमा शुरू किया गया। परन्तु विधिना को कुछ और ही मंजूर था।' 'सिंडबोंगा का परम पुत्र' 'धरती आबा' केन्द्रीय कारागार के कक्ष में 9 जून 1900 को काल कवलित हो गए। 'धरती आबा' का पार्थिव शरीर 'धरती एंगा' की गोद में समाहित हो गया। परन्तु उस युग पुरुष की पवित्र आत्मा दीप शिखा बनकर 'बिरसैतों' का मार्गदर्शन करने को शेष रह गई। 'बिरसा भगवान' द्वारा अत्याचार और अनाचार के विरुद्ध चलाये गये आन्दोलनों का प्रथम चरण पूरा हुआ था।

बिरसा का जीवन भी गाँधी, राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषों की तरह समाज सुधार, देशोद्धार और आजादी पाने के लिए समाहित हो गया। स्मरणीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही ब्रह्म समाज, प्रार्थना सभा, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, आदि सुधारवादी संगठनों का सूत्रपात हुआ। उसकी एक कड़ी के रूप में बिरसा द्वारा 'बिरसैत आन्दोलन' इस झारखण्ड में प्रस्तुत किया गया। उनका लक्ष्य भी सत्य, अहिंसा और असहयोग आन्दोलन द्वारा इस जनजातीय क्षेत्र और समाज को गुलामी की लौह शृँखलाओं से मुक्त कराना था।

बिरसा बलिदान एवं 'बिरसैत आन्दोलन' की उग्रता ने अंग्रेजी शासन को इस विद्रोह के कारणों पर गंभीर रूप से विचार करने को बाध्य किया। फलस्वरूप सरकार द्वारा मुंडा खुटकटी अधिकार को मान्यता मिल गयी और जमीन्दारों द्वारा स्थापित 'बेठबेगारी' जैसे काले कानून एवं व्यवस्था समाप्त हो गयी। मुंडा-मानकी की स्थानीय राजस्व स्वशासन व्यवस्था को कायम किया गया। इस क्षेत्र की समस्याओं को गहन रूप से जाँच कर प्रतिवेदन देने हेतु लिस्टर (आई.सी.एस.) तथा रीडर नियुक्त किये गये। इन लोगों ने विगत 100 वर्षों के आन्दोलन और विद्रोह का अध्ययन एवं सिंहावलोकन कर इसका मूल कारण- जमीन्दारों द्वारा जनजातियों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण, बाहरी लोगों का जनजातीय रीति-संस्कृति के प्रति अनभिज्ञता, भूमि संबंध उचित अभिलेखों का अभाव और धार्मिक संस्थाओं की उपस्थिति बताया। फलस्वरूप 1908 में छोटा नागपुर रैयती एवं कास्तकारी अधिनियम बना जो कुछ संशोधनों के बाद 11 नवम्बर 1908 में लागू हुआ। इस अधिनियम को बनाने में जनजातीय परम्परा, प्रचलित रीति-रिवाज तथा पारम्परिक सामाजिक नियमों को भी ध्यान में रखा गया था।

बिरसा ने सुधारवादी क्रान्ति की जो मशाल जलाई, उसने परवर्ती काल में झारखण्ड प्रदेश के विभिन्न आन्दोलनों का मार्गदर्शन किया। इसी की एक कड़ी के रूप में 1915 में 'टानाभगत' आन्दोलन शुरू हुआ, जो 1917 में महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलनों से जुड़ गया। बिरसा का पार्थिव शरीर पंचभूतों में विलीन हो गया, परन्तु 'बिरसा धर्म' और 'बिरसैत आन्दोलन' चलता रहा और आज भी जनजातीय जीवन में वह रच-बस गया है। बिरसैतों में यह धारणा आज भी प्रबल है कि 'बिरसा भगवान का अवतरण पुनः इस धरती पर होगा और तब वह इस क्षेत्र एवं जनजातीय समुदाय को एक नवीन और प्रकाशमय आलोक धन्वा से आलोकित कर देंगे। तब 'अबुआ राज' की परिकल्पना साकार होगी। बिरसा का अमर संदेश आज भी विचारणीय और अनुकरणीय है।'

सारांशतः बिरसा भगवान धार्मिक पुनर्जागरण का संदेश लेकर आये थे और उसे स्वतंत्रता आन्दोलन से जोड़कर चले गये। ऐसा लगता है कि वे जिस आन्दोलन गाथा के कथाकार थे, उस कथायात्रा को बीच में ही छोड़ कर चले गए-

बड़े मौज से सुन रहा था जमाना,
तुम्हीं सो गए दासताँ कहते-कहते।

अमरत्व को प्राप्त भगवान बिरसा की जन्म भूमि और कर्म भूमि उलीहातु, डोम्बारी, शैलरकब, चलकद आदि के कण-कण में उनकी जीवनगाथा व्याप्त है। सरकार द्वारा उनके स्मृति चिह्नों को संरक्षित रखने और विकसित करने की दिशा में कई योजनाएँ बनाई गईं, जिनकी मूर्तता भविष्य के कोहरे में छिपी हुई है। उनकी पूण्य भूमि पर मेले लगते हैं और लगते रहेंगे। हर शहीद की तरह उनके बलिदान का भी यही अंजाम परिलक्षित है-

शहीदों के मजारों पे लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पे मरने वालों का यही अंतिम निशां होगा॥

श्रम गीत बिलवारी

गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

बुन्देलखण्ड जहाँ प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न क्षेत्र है, वहीं यहाँ पर कृषि की प्रधानता भी है। यहाँ पर क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े सभी किसी न किसी रूप में कृषि के कार्यों में संलग्न बने रहते हैं। मेहनतकश जीवन जीने की परम्परा यहाँ पर सदियों से कायम है। ग्रामीण जीवन में इसीलिये उत्साह, उमंग और आनंद हिलोरें लेता रहता है। यहाँ का लोक जीवन, कर्म की इस भूमि में व्यस्त बना रहता है। जिसके श्रम सीकरों की चमक लोक को आलोकित करती रहती है। इस श्रम साध्य लोक जीवन में श्रम की विश्रान्ति उनके कंठों से निःसृत गीतों से होती रहती है। इनका सृजन भी काम करते-करते ही होता है। ऐसे गीतों में सहजता, सरलता और सरसता का घाल-मेल रहता है। काम की अधिकता और परिश्रम की थकान दोनों का संतुलन बनाये रखने में लोक गीतों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। ऐसे ही गीत गा-गाकर स्त्री पुरुष अपना कार्य दूने उत्साह के साथ सम्पन्न करने में सक्षम रहते हैं।

खेतों में काम करते हुए मजदूर, किसान, स्त्री, पुरुष पसीने से तर-बतर होकर भी लोकगीतों के स्वरों में इतने तन्मय हो जाते हैं कि इन्हें किसी का भी भान नहीं रहता। ऐसे स्वरों के छिड़ने पर सम्पूर्ण वातावरण भी प्राणवान हो उठता है। थकावट कोसों दूर भाग जाती है। आलस्य तिरोहित हो जाता है। लोकगीतों के गायन से स्फूर्ति आती है। यही लोकगीत उनमें एक नई ऊर्जा भर देते हैं और कार्य दूनी गति के साथ होने लगता है।

डॉ. विनोद तिवारी के अनुसार कृषि कार्य में खाद की तरह उपयोगी ये गीत बुन्देलखण्ड के कर्मण्य स्त्री-पुरुषों के जीते जागते चित्र हैं। बुन्देली कृषक हृदय के क्षेत्र में दुख-सुख के बीज की भाँति इनका वपन करता है। परिश्रम के जल से इन्हें सींचता है। बुन्देली नारी इनका भावनामय रक्षण करती है और तब फिर परिवार के कर्म स्थल पर हरित धान से लहलहा उठते हैं ये श्रम गीत। बुन्देली नर-नारियों के अमिट आत्म विश्वास एवं कर्मण्यता के प्रतीक श्रमगीत विस्मरण की वस्तु नहीं है। इन गीतों में समस्त बुन्देली जीवन

बोलता प्रतीत होता है।

श्रमगीतों में लोक जीवन के सुख-दुख, विरह-करुणा और विविध भावों का मिश्रण अपनी मधुरता और भावों के चित्रों को उजागर रूप में दर्शाता है। ये लोकगीत श्रम की थकान को सोख लेते हैं। जीवन में एक रसपूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं। चिन्ताओं को भुला देते हैं। व्यस्त मन और थकी काया में ये लोकगीत ही उत्साह, उमंग तथा आनन्द की पैठ जमाते हैं। रवानी उपजती है, इन्द्रधनुषी छटा बिखरती है और सम्पूर्ण वातावरण आच्छादित हो जाता है इन लोकगीतों से। कल्पना और यथार्थ का समन्वय श्रम के इन लोकगीतों की खासियत होती है। बिलवारी एक ऐसा लोकगीत है, जो फसल की कटाई के बीच जीवन में घटित घटनाओं और मन पर असर डालती विभिन्न परिस्थितियों को अपने में समेटे है। स्मृति और विस्मृति की लुका-छुपी खेलती कल्पना साकार रूप ग्रहण करती है और जीवन के खेत में उपजाती है बिलवारी लोकगीत।

बुन्देली लोकगीत बिलवारी को कहीं-कहीं 'बिलवाई' के नाम से भी जाना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मूल शब्द 'बिरवाई' हो। बिर-वाई बुन्देली शब्द है। यह खेत, खलिहान की सुरक्षा का कवच है। इस शब्द में कालान्तर में र के ल में परिवर्तन होने से बिलवाई या बिलवारी की तरह प्रचलित हो गया। 'बिरवारी' का आशय बाड़ या आड़ से है। लोगों को एकत्र करके समूह में रोके रखने की सार्थक अभिव्यंजना इस नाम से ध्वनित होती है। या फिर 'बिरवा' याने कि पौधा रोपने से भी बिलवाई का या बिरवाई का कृषि से संबंध स्पष्ट होता है। यहाँ पर कुछ बिलवारी लोकगीतों की बानगी प्रस्तुत है, जिससे बुन्देली जीवन और वहाँ की लोक दशा और दिशा पर व्यापक रूप से सोचने समझने में मदद मिल सकेगी-

मोरौ चिलम भरत दिन जाय लंगुरिया,
बड़ौ पिबैया गांजे कौ
अरे हाँ हो लंगुरिया कै बीघा गांजौ बओ
उर कै बीघा बै दइ भांग लंगुरिया,
बड़ो पिबैया गांजे कौ
अरे हाँ हो लंगुरिया नौ बीघा गांजौ बओ
उर दस बीघा बै दइ भांग लंगुरिया,
बड़ौ पिबैया गांजे कौ

अरे लंगुरिया! मेरा तो पूरा दिन ही चिलम भरने में निकल जाता है, गांजे का बड़ा ही पीने वाला है। अरे लंगुरिया! कितने बीघा में गांजा बोया है और कितने बीघा में भांग बोई है। अरे लंगुरिया! नौ बीघा में तो गांजा बोया है और दस बीघा में भांग बोई है। लांगुरिया! गांजे का बड़ा पीने वाला है।

एक अन्य बिलवारी लोकगीत में बिरहुलिया के बरा जो गाढ़े थे, अब ढीले हो गये हैं, जिन्हें देखते हुए कहा गया है-

अरे हां बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये
अरे हां बिरहुलिया की कै घर सास दुसायंती
उर कै ननदी के बोल कुबोल,
बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये
अरे हां हो बिरहुलिया की ना घर घास दुसायंती
उर ना ननदी के बोल कुबोल,
बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये
अरे हां बिरहुलिया के घरै तनक से बालमा
सोइ वाही कौ भारी सोच,
बिरहुलिया के गाढ़े बरा ढीले भये

अरे! बिरहुलिया के बरा (हाथ का गहना) जो नाप का था अब उसके हाथों में ढीला हो गया है। अरे! बिरहुलिया के घर में या तो सास को कुछ होने वाला है अथवा उसे ननद की बातें चुभ रही हैं जिसके कारण उसके बरा अब ढीले हो गये हैं, उसी की चिन्ता में। अरे! बिरहुलिया के घर में तो न सास को कुछ होना जाना है और न ही उसकी ननद कुछ खरे खोटे वचन कहती है पता नहीं क्यों बरा ढीले हो गये। अरे! बिरहुलिया के घर में उसके बालम छोटे से हैं, बस यही सोच उसे खा गई, जिससे उसके हाथ के बरा ढीले हो गये।

उपरोक्त बिलवारी लोकगीतों में अन्तरमन की कसक और पीड़ा अपनी सहजता के साथ उभरी है। ऐसे ही लोकजीवन के अनेक पक्षों में रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-व्यवहार की वे

तमाम घटनाएँ हैं, जो भावनात्मक होने के साथ-साथ यथार्थ की चित्राभिव्यक्ति इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से सामने लातीं हैं, उजागर करती हैं। बुन्देली जमीन की सांस्कृतिक छटा कृष्ण लीला संस्कृति के अधिक समीप है। ऐसे में यहाँ के लोक गीतों में शृँगार रस अपनी पराकाष्ठा पर होता है। फिर चाहे वह श्रमगीतों के अन्तर्गत बिलवारी लोकगीत ही क्यों न हो। यहाँ जीवन की श्रम साध्य कठिनता को बड़े रंजक और ललित ढंग से लोकगीतों का कलेवर प्राप्त होता है। इंगित इशारों में जीवन का यथार्थ विविध रंगों के साथ मुखर होता है। रोजमर्रा के हर पहलू का चित्रण जहाँ बिलवारी में मिलता है, वहीं रस की मधुरता और अभिव्यक्ति भी अपनी छाप विशिष्टता के साथ उकेरती है।

हिल मिल कें बिछुड़ जिन जाव रे कनैया प्यारे
दिन-दिन लगत सुहावनें

और भी-

मची-मची रे अबीरा की मार बिरज में,
भूलो फिरै मोरौ सांवरौ
कै मन केसर घोरियौ
कै मन उड़त गुलाल बिरज में,
भूलो फिरै मोरौ सांवरौ
नौ मन केसर घोरियौ
दस मन उड़त गुलाल बिरज में,
भूलो फिरै मोरौ सांवरौ
कौन की भींजै रंग चूनरी
कौना की पचरंग पाग बिरज में,
भूलो फिरै मोरौ सांवरौ
राधे की भींजै रंग चूनरी
श्याम की पचरंग पाग बिरज में,
भूलो फिरै मोरौ सांवरौ

अरे! बिरज में तो अबीर की मार चल रही है जिसके कारण मेरा साँवला भटक रहा है। कितने मन केशर घोली गई और कितने मन गुलाल ब्रज में उड़ रहा है। नौ मन केशर घोली गई है और दस मन गुलाल उड़ रहा है, जिसके कारण मेरा साँवला भटक रहा है। किसकी चूनर रंग में भीगी हुई है तथा किसकी पचरंगी पाग भीगी हुई है। राधा जी की चूनर रंग में भीगी हुई है और श्याम सलोने की पचरंगी पाग भीगी हुई है। मेरा साँवला भटक रहा है।

नायिका की भावाभिव्यक्ति तो देखिये जहाँ एक ओर वह बेसर पहनने हेतु अपनी शिकायत को बिलवारी के माध्यम से कहती है कि इसकी तो गूँज ही नहीं मुड़ती-

अरे मैं हारी नवाय नवाय नवल रस,
बेसर गूँज नवे ना
अरे सोने की बेसर बनी
मोरी सखी मोतन जड़े हैं जड़ाव,
नवल रस बेसर गूँज नवे ना

शिकायती दौर इतने में ही खत्म नहीं होता। एक बिलवारी में हाथ के कंगन को माध्यम बनाया गया है कि हीरालाल जब मेरी बाँह पर सो गए तो मेरा कंगन ही मुड़ गया-

मोरी बहियां पै सो गये हीरा लाल,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
काहे की तोरी बनी ककनियाँ रे
काहे की धरी है रबार,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
सोने की जा बनी ककनियाँ रे
रूपे की धरी रे रबार,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
कौना शहर की बनी ककनियाँ रे
कहना की धरी है रबार,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
झांसी शहर की बनी ककनियाँ रे
पन्ना की धरी है रबार,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
कौना बिसा दयी जा रस ककनियाँ
कौना नें चुका दये जाके दाम,
ककनियाँ मोरी मुरक गयी
सैयां बिसा दयी जा रस ककनियाँ

बारे देवरा चुका दये जाके दाम
ककनियाँ मोरी मुरक गयी

मेरी बाँह पर हीरालाल सो गए, जिसके कारण मेरा कंगन मुड़ गया। तेरा कंगन काहे का बना है और उस पर काहे की रबार रखी हुई है। मेरा कंगन सोने का है और चाँदी की उस पर रबार रखी हुई है। मेरा कंगन मुड़ गया। किस शहर में तेरा कंगन बना है और उस पर किस शहर से रबार रखवाई है। झाँसी शहर से मेरा कंगन बना हुआ है और पन्ना शहर की रबार रखी हुई है। मेरा कंगन मुड़ गया है। यह रसीला कंगन भला किसने खरीद दिया और इसके कितने दाम चुकाये हैं। मेरे साजन ने कंगन खरीद दिया है और छोटे से देवर ने उसके दाम चुकाये हैं। मेरा कंगन मुड़ गया।

आगे नायिका अपने शरीर के कोमलांगी होने वाले भाव बुन्देली लोकगीत बिलवारी के माध्यम से व्यक्त करती है, जो अपनी विशिष्टता को दर्शाता है। नायिका कहती है कि मेरी बांह तो लौंग की डाली के समान नाजुक है–

मोरी बहियां लौंग की डार,
ककनवाँ तैनें रस लै लये
कौन शहर के बनें ककनवाँ रे
कौन की धरी है रबार,
ककनवाँ तैनें रस लै लये
झाँसी शहर के बनें ककनवाँ रे
पन्ना की धरी है रबार
ककनवाँ तैनें रस लै लये
कौना बिसा दये रस ककना रे
कौन नें चुका दये दाम
ककनवाँ तैनें रस लै लये
सैयां बिसा दये जे रस ककना रे
बारे देवरा चुका दये दाम
ककनवाँ तैनें रस लै लये बहियाँ के

मेरी बाँह तो लौंग की डाल है। अरे कंगन! तूने तो उसका रस ले लिया। किस शहर का कंगन बना और उस पर किस शहर की रबार रखी है। झाँसी शहर का कंगन बना है और पन्ना शहर की रबार रखी हुई है। कंगन को किसने ले दिया और उसके दाम किसने चुकाये हैं। मेरे साजन ने कंगन ले दिया और छोटे देवर ने उसके दाम चुकाये हैं। अरे कंगन! तूने तो रस ले लिया मेरी बाँह का।

साज–सिंगार की चाह में चूनर रंगाने का भाव तो देखो नायिका का। एक ओर तो वह कहती हैं कि 'जामें झिलमिल बदन दिखाय लंगुरिया, ऐसी रंगवाय दे चूनरी।' तो दूसरी ओर उसकी मंसा है कि चूनर ऐसे रंग में रंगी जाय जो कभी मैली न हो सके–

फिर कबहूं न मैली होय लंगुरिया,
ऐसी रंग, रंग दे चूनरी
अरे हाँ रे लंगुरिया कौन घाट चुनरी धुई
उर कौना रंग दई बोर लंगुरिया
ऐसी रंग, रंग दे चूनरी
अरे हाँ रे लंगुरिया राम घाट चुनरी धुई
उर श्याम रंग दई बोर लंगुरिया
ऐसी रंग, रंग–चूनरी
अरे हाँ रे लंगुरिया काहे कौ कलफ लगायौ
उर रंगी कौन बिध बोर लंगुरिया
ऐसी रंग, रंग दे चूनरी
अरे हाँ रे लंगुरिया नेह कौ कलफ लगायौ
उर खूब रंगी झकझोर लंगुरिया
ऐसी रंग, रंग दे चूनरी

फिर कभी भी मेरी चूनर मैली न हो, अत: ऐसे रंग में रंगा दे लांगुरिया। तेरी चूनर किस घाट पर धोई गयी है और कौन से रंग में रंगी और डुबोई गई है। मेरी चूनर राम घाट में धोई गई है और श्याम रंग में डुबोई गई है। ऐसे रंग में रंग दे चूनरी, जो कभी मैली न हो पाये। अरे! तेरी चूनर पर काहे का कलफ लगाया गया है और किस प्रकार से रंग में डुबोई गई है। मेरी चूनर में नेह का कलफ लगाया गया है और अच्छी तरह से फटकार कर उसे रंगा गया है। ऐसे रंग में रंग दे चूनर को ताकि वह फिर मैली न हो सके।

पालना झुलाने के लिए नायिका का भाव जहाँ वह स्पष्ट

रूप से कहती है–

आ गई आ गई रे नींद रइ है सोय,
हमारे धीरे से झुला दो बालम पालना
अरे काहे के पलना बनें
और काहौ लागी डोर
हमारे धीरे से झुला दो बालम पालना
अरे चंदन के पलना बनें
और रेशम की लागी डोर
हमारे धीरे से झूला दो बालम पालना

नींद आ गई है, बालम हमारे पालना को धीरे से झुला दो। पालना भला काहे का बना हुआ है और उसमें काहे की डोर लगी हुई है। पालना धीरे से झुला दो। पालना चंदन का बना हुआ है और रेशम की डोरी लगी हुई है। पालना धीरे से झुला दो बालम जी।

नाते–रिस्तों में जहाँ प्रीतम के प्रति गहरा लगाव होता है, वहाँ नायिका का मन शांत नहीं रह पाता, वह कह उठता है–

बखरी में लगा गए आम,
अपन परदेसै निकर गए बालमा
सो मोरी सखी जब अम्मा बौरन लागे
सो मोरी सखी परदेसी बिलम रहे छांय
अपन परदेसै निकर गए बालमा
सो मोरी सखी जब अम्मा गादर गए
सो मोरी सखी को टोंरै को खाय
अपन परदेसै निकर गए बालमा
सो मोरी सखी जब अम्मा सांयन भए
सो मोरी सखी परदेसी चोंख रस लेय
अपन परदेसै निकर गए बालमा

अरी सखी! बखरी में आम लगाकर बालम तो परदेस को निकल गये। अरे सखी! आम में जब बोर आई तो उसकी छाया में परदेसी विश्राम पा रहे हैं, अपने पिया तो परदेस को निकल गये। अरे सखी! जब आम गादर हुए तो भला उन्हें कौन तोड़े और कौन खायें! अपने प्रीतम तो परदेस निकल गये। अरी सखी! जब आम पक गये तो उसे परदेसी ही (चोंख कर) चूसकर रस ले रहे हैं। अपने बालम तो परदेस में रह गये। वे परदेस को निकल गये।

परन्तु उसका मन शांत अभी भी नहीं रहा, वह उनकी बाट निहार रहा है। दूर कहीं पर कोई दो व्यक्ति उसे आते हुए दिख गये, तो वह अपनी ननद से कहती है–

मैंने दूरई सें लये पैचान ननदिया
आवें डगर में दो जनें
देखौ आगें के हैं ननदेउआ
पीछे के हैं बीरन तुमार ननदिया
आवें डगर में दो जनें
देखौ संमर जीत कें आ गये
राखी चुरियन की लाज ननदिया
आवें डगर में दो जनें
चलौ राई नोंन उतारिये
राखो उन धरती कौ मान ननदिया
आवें डगर में दो जनें।

अरे ननद बाई! मैंने तो दूर से ही पहचान लिया है, वे दो जन रास्ते से चले आ रहे हैं। देखो तो आगे ननदेऊ हैं और पीछे जो हैं वे तुम्हारे भाई हैं। अरे ननद बाई! मैंने तो रास्ते में आते हुए ही पहचान लिया। देखो! युद्ध जीत कर आ गये हैं वे, उन्होंने तो मेरी चूड़ियों की लाज रख ली। देखो! वे दोनों रास्ते से चले आ रहे हैं। ननद बाई! चलो, अब उनको किसी की नजर न लगे इसलिए राई नमक लेकर उतारा करें, उन्होंने अपनी जननी की मान मर्यादा रखी है। ननद बाई दो जन रास्ते से आ रहे हैं।

ननद के प्रति भौजी का लाड़–प्यार बुन्देली में कितना गहरा है, इसकी बानगी का अवलोकन करें–

दूर खिलन जिन जाव ननद बाई,
नैना लगाय कोउ लै जैहै
अरे हाँ हो ननद बाई सुबरन सी तोरी देइया
उर गाँव बसत बटमार ननद बाई
नैना लगाय कोऊ लै जैहै
अरे हाँ हो ननद बाई मोय डर कुल की लाज कौ

कऊं होय न सूनी सार ननद बाई
नैना लगाय कोउ लै जैहै
अरे हाँ हो ननद बाई सुरंग चुनरिया जिन ओड़ौ
जिन ओढ़ कुअल पै जाव ननद बाई
नैना लगाय कोउ लै जैहै
अरे हाँ हो ननद बाई नजर कटरिया काऊ छैल की
लग जैहै पुरैं नइं घाव ननद बाई
नैना लगाय कोउ लै जैहै
अरे हाँ हो ननद बाई बरकीं रइयौ उमर बारी
को देय उनखों ज्वाब ननद बाई
नैना लगाय कोउ लै जैहै

अरे ननद बाई! तुम दूर खेलने के लिए नहीं जाओ वर्ना कोई आँख लड़ा करके तुम्हें ले जायेगा। अरे ननद बाई! तुम्हारी देह सोने के समान है और गाँव में तो चोर बटमार बसते हैं, कोई भी आँख लड़ा कर ले जायेगा। अरे ननद बाई! मुझे तो अपने कुल की लाज का डर है, कहीं ऐसे में घर सूना न हो जाये। ननद बाई! कोई भी आँख लड़ाकर ले जायेगा। अरे ननद बाई! चटक रंग की चूनर को नहीं पहनों और न ही उसे ओढ़कर तुम कुँए पर जाओ, कोई भी आँख लड़ाकर ले जायेगा। अरे ननद बाई! कोई भी छैल-छबीला जो होगा तो उसकी नजर कटार सी लग जायेगी, जिसका कभी घाव नहीं भर पायेगा। कोई आँख लड़ाकर तुम्हें ले जायेगा। अरे ननद बाई! अभी तुम उमर की छोटी हो। सुनों! भला उन्हें कौन जवाब देगा? ननद बाई! कोई आँख लड़ाकर तुम्हें ले जायेगा।

आगे वह अपने ननदोई को भी नहीं छोड़ती। वह उन्हें छेड़ते हुए कहती है कि-

तुमें कैसे परत हूहै चैन
ननदिया मोरी रस की भरी
चार महिना गरमी के लागे
भये उसनींदे नैन,
ननदिया मोरी रस की भरी
चार महिना बसकारे के लागे
दादुर बोलें बैन,
ननदिया मोरी रस की भरी
चार महिना जड़कारे के लागे
कैसें कटत हूहै रैन
ननदिया मोरी रस की भरी
जिनके घर में कंता नैयां
उनके दिल बेचैन
ननदिया मोरी रस की भरी

अरे ननदोई जी! भला तुमको कैसे चैन पड़ता होगा, मेरी ननद तो बड़ी ही रसीली है। चार महीना गरमी के लगे हुए हैं, तुम्हारी आँखें उसनींदीं हैं। मेरी ननद तो रसीली है। चार महीना बरसात के लगे हैं, मेंढक बोल रहे हैं। मेरी ननद बड़ी रसीली है। चार महीना ठंड के लगे हैं। भला ऐसे में रात्रि किस प्रकार से कट रही होगी। मेरी ननद तो बड़ी रसीली है। जिनके घर में प्रीतम नहीं हैं उनके दिल में बेचैनी हो रही होगी, मेरी ननद तो रसीली है।

हास्य रस में बिलवारी का जवाब नहीं। सास-बहू का वार्तालाप कुछ इस प्रकार से होता है-

अनबोले रहो नई जाय सास मोरी,
लरका तौ तुमाये अनबोलना
बहू रूच रूच पूरी पकाइयौ
ओई में रेंता दइयौ री मिलाय बहू मोरी
लरका तौ मोरे तबई बोलें
बे तौ मोंगे मोंगें जें गए हैं
अनबोले रहो नई जाय सास मोरी
लरका तुमाये अनबोलना
बहू रूच रूच झारीं भराइयौ
ओइ में राख तौ दइयौ री मिलाय बहू मोरी
लरका तौ मोरे तबई बोलें
बे तौ मोंगें मोंगे पी गये हैं
अनबोले रहो नई जाय सास मोरी
लरका तौ तुमायै अनबोलना
बहू रूच रूच बीरा लगाइयौ
ओई में चूना तौ दइयौ री मिलाय बहू मोरी
लरका तौ मोरे तबई बोलें
बे तो मोंगें मोंगें रच गए हैं

अनबोले रहो नईं जाय सास मोरी
लरका तौ तुमाये अनबोलना

अरे सासु जी! मुझसे तो बिना बोले रहा नहीं जाता है, पर तुम्हारा लड़का तो बोलता ही नहीं है। अरे बहू रानी! तुम अच्छी तरह से पूड़ी पकाओ और उसमें रेत को मिला देना तभी मेरा लड़का बोलेगा। अरे सासु जी! वे तो चुपचाप ही खाकर चले गये। मुझसे बिना बोले रहा नहीं जाता और तुम्हारा लड़का बोलता ही नहीं है। अरे बहू रानी! तुम अच्छी तरह से जल को लोटे में भर कर रखना और उसमें राख मिला देना, तभी मेरा लड़का बोलेगा। अरे सासु जी! वे तो चुपचाप ही पीकर चले गये। मुझसे तो बिना बोले रहा नहीं जाता और तुम्हारा लड़का है कि बोलता ही नहीं है। अरी बहू! तू तो अच्छी तरह से पान का बीड़ा लगाना और उसमें चूना मिला देना, तभी मेरा लड़का बोलेगा। सासू जी! वे तो चुपचाप ही बीड़ा रचा कर चले गये। मुझसे तो बिना बोले रहा नहीं जाता और तुम्हारा लड़का है कि कुछ बोलता ही नहीं है।

चकिया (जांते) को चलाते हुए एक नायिका का भाव तो देखिये, वह कहती है कि–

मोरी चकिया के गेरऊं गेर चुखरवा,
काये रे फिरत अंधियारे में
अरे हाँ रे चुखरवा मोरे जेठा घरै नैयां
जेठानी को उठाय लयें जाय रे चुखरवा,
काये रे फिरत अंधियारे में
अरे हाँ रे चुखरवा मोरे देवरा घरै नैयां
देवरानी को उठाय लयें जाय रे चुखरवा
काये रे फिरत अंधियारे में

अरे चूहे! मेरी चक्की के चारों ओर भला क्यों फिर रहा है, अंधेरे में। अरे चूहे! तू सुन, मेरे जेठ जी घर में नहीं हैं जा जिठानी को उठा ले जा, अंधेरे में क्यों फिर रहा है? अरे चूहे! सुन, मेरे देवर जी घर में नहीं है। जा देवरानी को उठा ले जा, अंधेरे में भला क्यों फिर रहा है? मेरी चक्की के चारों ओर।

खेती किसानी के काम को भी नायिका विस्मृत नहीं कर पाती। वह उसे करते हुए अपने भावों को व्यक्त कर देती है। बुन्देली नायिका का यह भाव–

परे चैत चरेरे घाम महतिया
मांगें चौड़ी भरा दयी
अरे हाँ रे महतिया सूदी किरनें सूरज की
सोइ घाम सहो नहिं जाय महतिया
मांगें चौड़ी भरा दयी
अरे हाँ रे महतिया आओ पसीना तन भर में
सो पानी सौ निचरत जाय महतिया,
मांगें चौड़ी भरा दयी
अरे हाँ रे महतिया भींज गई तन की चोली
सो मनुआं रओ कुमलाय महतिया
मांगें चौड़ी भरा दयी
अरे हाँ रे महतिया हम गरीब की हैं नारी
सो जासें जुलम रहे तुम ढाय महतिया
मांगें चौड़ी भरा दयी
अरे हाँ रे महतिया अमरदान कै रये समझा
सो तुम धीर धरौ मन मांय महतिया
माँगें चौड़ी भरा दयी

अरे महतो! चैत माह की तेज धूप पड़ रही है और तूने कटाई के लिए चौड़ी मांग रखवा दी है। अरे महतो! सूरज की सीधी किरण पड़ रही है, मुझसे अब धूप सहन नहीं हो पाती है। तूने चौड़ी मांग रखवा दी है काटने के लिए। अरे महतो! पसीने से मेरा पूरा शरीर लथपथ हो रहा है। पानी सरीखा पसीना बह रहा है। तूने तो चौड़ी मांग रखवा दी है काटने के लिए। अरे महतो! मेरे तन की चोली गीली हो गई है, इससे मेरा मन कुम्हला रहा है। तूने तो चौड़ी मांग रखवा दी है। अरे महतो! हम तो गरीब की औरत हैं, इसलिए तुम जुल्म ढा रहे हो। काटने के लिए तुमने चौड़ी मांग रखवा दी है। अरे महतो! अमरदान समझाकर कह रहे हैं कि अब मन में तुम धीरज धारण करो। महतो! तुमने तो काटने के लिए चौड़ी मांग रखवा दी है।

राष्ट्रीय भाव धारा भी बिलवारी लोक गीतों में मिलती है–

मन समझ करौ उपकार देस में
दिया तौ जलाओ ऐजू खुसियन के

अरे हाँ हो देस में बाती करौ मेहनत बारी
तुम डारौ लगन कौ तेल देस में,
दिया तौ जलाओ ऐजू खुसियन के
अरे हाँ हो देस में करौ तरक्की हिलमिल कें
तुम पढ़ लिख बन हुसयार देस में
दिया तौ जलाओ ऐजू खुसियन के
अरे हाँ हो देस में बिरछ लगाओ खेती कर लो
उर कर छोटौ परिवार देस में
दिया तौ जलाओ ऐजू खुसियन के
अरे हाँ हो देस में बेकारी है चौतरफां
तुम खोलौ नये रूजगार देस में
दिया तौ जलासो ऐजू खुसियन के
अरे हाँ हो देस में फैली बेल दहेजों की
तुम जर सें चलौ उखार देस में
दिया तौ जलाओ ऐजू खुसियन के

अरे मन! तुम देश में उपकार करते हुए खुशियों के दीपक जलाओ, मेहनत की बाती बना और अपनी लगन का तेल डार कर खुशियों के दीपक जलाओ। मिल-जुलकर तरक्की के लिए पढ़ो-लिखो और होशियार बनो। देश में खुशियों के दीपक जलाओ। वृक्ष लगाओ और खेती करो, साथ में छोटा परिवार रखो। खुशियों के दीपक जलाओ। चारों ओर बेकारी है तुम नये-नये रोजगार खोलो और खुशियों के दीपक जलाओ। दहेज की बेल फैली हुई है, उसे तुम उखाड़ते हुए चलो, देश में खुशियों के दीपक जलाओ।

चेतावनी परक बिलवारी लोक को सजग और सचेत बने रहने का भाव व्यक्त करती है-

गोरी चलौ नें मरोरा की चाल
रिपटनूं हैं गलियां
इक तौ झुके मद भार सें नैना
गोरी लगो है सोलवां साल
रिपटनूं हैं गलियां
कमल पंखुरियों सें पांव तुमारे
गोरी माहुर सें कर लये लाल
रिपटनूँ हैं गलियां
बरयानी सी दमकै बिजुरिया
तोरी बिंदिया दमक रई भाल
रिपटनूं हैं गलियाँ
रिमझिम-रिमझिम बरसै बदरिया
गोरी भरे हैं तलैया ताल
रिपटनूं हैं गलियां
समुद सें निकरी जैसें लछमी
गोरी मुइयां पै घुंघटा डाल
रिपटनूं है गलियां

अरे गोरी! तुम अकड़कर न चलो, रास्ते में फिसलन है, उसमें फिसलकर गिर जाओगी। एक तो तुम्हारी आँखें मद की भरी हुई हैं, दूसरे अभी सोलवां साल लगा हुआ है। कमल की पंखरी के समान तुम्हारे पाँव हैं, उस पर तुमने माहुर लगाकर उन्हें और लाल कर लिया है। बरयानी हुई बिजली के समान तुम्हारे माथे की बेंदी दमक रही है। बादल झमाझम बरस रहे हैं, जिससे ताल-तलैया सभी भर गये हैं। जिस तरह से समुद्र से लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ उसी तरह से है। गोरी! तुम भी मर्यादित भाव से अपने मुखड़े के ऊपर घूँघट डाल लो। कबीरी भाव धारा के इस बिलवारी गीत में काया और माया को लेकर भाव व्यक्त किये गये हैं। इसी तरह से एक अन्य लोक गीत में आत्मा और परमात्मा के संबंध को ध्यान में रखते हुए शरीर से जब आत्मा निकलती है, तो वह कसक और पीड़ा कितनी गहरी हो जाती है, कुछ इसी तरह की एक बिलवारी है-

काये कड़ गईं तज कें मोय सजनियां,
जिया तौ तलफ रये मछरी से
अरे हाँ री सजनियां तोरे बिन कल नई रात दिना
सोई सूजीं अखियां रोय सजनियां
जिया तौ तलफ रये मछरी से
अरे हाँ री सजनियां पिघले नैंन से अंसुआ लगें
सोई आंसत तोखों खोय सजनियां
जिया तौ तलफ रये मछरी से
अरे हाँ री सजनियां भूंक प्यास सब बिसर गई
सोई जौ जी रईं का टटोय सजनियां
जिया तौ तलफ रये मछरी से

अरे सजनी! तुम मुझे त्याग कर क्यों चली गई। मेरे प्राण

मछली के समान तड़प रहे हैं। तेरे बिना तो मुझे चैन नहीं। रात-दिन आँखें सूज गई रोते-रोते। अरी सजनी! आँख के आँसू तो मुझे चुभ रहे हैं। अरी सजनी! मुझे तो भूख-प्यास सभी भूल गई। क्या तू मेरे जी को टटोल रही हो। मेरे प्राण तो मछली के समान तड़प रहे हैं। भक्ति रस से संपृक्त बिलवारी लोकगीतों की भी कमी नहीं है। राम-लक्ष्मण के विवाह का समय है और चित्र उभरता है-

धर राखौ धनुष उर बान सुनयना,
राम लखन ब्याहन आये
अरे हाँ रे सुनयना जब रघुबर ब्याहन आये
गलियन की गर्द उड़ाये सुनयना
राम लखन ब्याहन आये
अरे हाँ रे सुनयना जब रघुबर गेंवड़ें आये
सूखे रूख हरयाये सुनयना
राम लखन ब्याहन आये
अरे हाँ रे सुनयना जब रघुबर तालन आये
रीत ताल भर आये सुनयना
राम लखन ब्याहन आये
अरे हाँ रे सुनयना जब रघुबर द्वारें आये
मुतियन होंय उजयार सुनयना
राम लखन ब्याहन आये

अरे सुनयना! अब धनुष और बाण रख दो, क्योंकि श्री राम और लक्ष्मण जी विवाह के लिए आये हुए हैं। देखो सुनयना! जब राम-लक्ष्मण विवाह के लिए आये, तब रास्ते की धूल उड़ने लगी। जब राम-लक्ष्मण जी गाँव के नजदीक आये तो सूखे हुए वृक्ष हरे-भरे हो गये। जब राम-लक्ष्मण जी तालाब पर आये तो सूखे हुए ताल भी भर गये। जब राम-लक्ष्मण जी दरवाजे पर आये तो मोतियों का उजियाला हो गया। अरी सुनयना! श्री राम और लक्ष्मण विवाह के लिए आये हैं।

इसी तरह से बुन्देली धरा पर श्री गौरी-शंकर और श्री जुगलकिशोर जी की झाँकी का चित्रण भी अपनी मनोरम भाव भंगिमा को उजागर करता है-

पन्ना के जुगल किशोर, हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री एक के माथें मोर मुकट
उर दूजे चंद्र सुहाय हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी, री एक पिताम्बर पट धारें
उर दूजे मन मृगछाल हटा में झांकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री इक बैजयंती माल गरे
उर दूजे नाग लहरांय हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री इक तौ माखन चाखत हैं
उर दूजे भंगिया चढ़ांय हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री एक बजावें बांसुरिया
उर दूजे डमरू बजांय हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री एक संग लिए हैं ग्वाल सखा
उर दूजे प्रेत बेताल हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की
अरी हाँ री सखी री इक तो रास रचावत हैं
उर दूजे तांडव नाच नचांय हटा में झाँकी बनी गौरी शंकर की

इस प्रकार से बुन्देली श्रम गीत बिलवारी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाते हुए लोक का जहाँ मनोरंजन करता है, वहीं वह जीवन जीने की कला में सहयोगी भूमिका भी निभाता है। ऐसे लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक चेतना की ओर जहाँ हमें अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है, वहीं पर क्षेत्र विशेष ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन को परखने में सहयोग भी मिलता है।

छत्तीसगढ़ की नाट्य परम्परा

प्रो. अश्विनी केशरवानी

अभिनय मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। हर्ष, उल्लास और खुशी से झूमते, नाचते-गाते मनुष्य की सहज अभिव्यक्ति है अभिनय। छत्तीसगढ़ के लोक जीवन की झाँकी गाँवों, खेतों, खलिहानों, गली, चौराहों और घरों में स्पष्ट देखी जा सकती है। इस ग्रामीण अभिव्यक्ति को 'लोकनाट्य' कहा जाता है। छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य की प्राचीन परम्परा रही है। यही आगे चलकर नाटक के रूप में विकसित हुआ। 'नाट्य शास्त्र' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का प्रणयन दूसरी सदी में हुआ। भरत मुनि ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर इसकी रचना की। भरत मुनि के समक्ष लोकधर्म का आदर्श सर्वोपरि था। कदाचित् इसी कारण उन्होंने लोकधर्म के प्रति अपना अनुराग दर्शाया है। नाट्यशास्त्र में भी उल्लेख है-

तद्ध्यात्माभिसंभूतं छन्दः शब्द समन्वितम्।
लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्यं लोकात्मकंत्विदम्॥

छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य की प्राचीन परम्परा सरगुजा के रामगिरि और सीता बोंगरा गुफा में स्थित नाट्यशाला से सिद्ध होती है। यहाँ के शिलालेख में भी इसका उल्लेख है-

आदि पयंति हृदयां सभावगरूकवयों यं रातयंदुले।
अवसंतिया हांसानुभूते कुदस्पीसं एवं अलंगेति॥

इन गुफाओं में स्थित नाट्य शालाओं की तुलना प्राचीन ग्रीक थियेटर से की जाती है। रंगशाला यानी थियेटर और लोकनाट्य के

बारे में लोगों में अनावश्यक भ्रम होता है। थियेटर अपेक्षाकृत व्यापक शब्द है और यूनानी शब्द 'थिया' से लिया गया है। इसका अर्थ है 'दृश्य' और विशेषकर 'देखने' के अर्थ में यूनानी भाषा के 'थडमा' से साम्य रखता है। इसका अर्थ है- 'ऐसी वस्तु जो घूर-घूरकर देखने को बाध्य करे' दूसरी ओर 'ड्रामा' शब्द भी यूनानी शब्द 'ड्रान' से लिया गया है जिसका अर्थ है- 'अभिनय करना।' भारतीय परिवेश में 'थियेटर' शब्द को 'रंगभूमि' का और ड्रामा को नाट्य के नजदीक माना गया है।

अविक्य कियोपतेम तिसत्वातिभाषितम्।
लोलांगहारभियं नाट्य लक्ष्मण लक्षितम्॥
स्वरालंकार संयुक्तमस्वर्भूरूषाश्रयम्।
यदोधशं भवेन्नाट्यं नाट्यधर्मोतुसास्मृता॥

अर्थात् नाट्य प्रकृत स्थिति भिन्न कलात्मक और विशिष्ट उद्देश्य का अग्रणी होता है, जबकि लोकनाट्य प्राकृतजन की अभिव्यक्ति को लोकरंजन के लिए कृत्रिम रूप से प्रस्तुत करता है। कालिदास ने 'नाट्यं भिन्न स्वेजनिस्य बहुधात्येक समाराधनम्' कहकर नाटक को सभी के लिए ग्राह्य बताया है। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि और 'उत्तर राम चरित्र' के रचयिता भवभूति कहते हैं- 'कालोह्यं निरवधि विपुला च पृथ्वी:।'

लोकनाट्य के तीन प्रमुख अंग होते हैं- 1. बहिरंग- इसके अंतर्गत कथा का उद्याम आवेग, आंचलिक बोली, आंचलिक प्रतीकात्मक पात्र, आडम्बरहीन रंगमंच और सहज शृँगार प्रमुख होते हैं। 2. अंतरंग- इसमें गीत और नृत्य प्रमुख होते हैं। 3. अभिनय-इन तीनों अंगों की समवेत प्रस्तुति ही मूलत: लोकनाट्य है। गीत इसके प्राण हैं और अभिनय से यह सजीव हो उठता है।

श्री गोपाल शर्मा अपने लेख-'मध्यप्रदेश का हिन्दी नाट्य साहित्य' में लिखते हैं- 'जिस समाज में रंगमंच का अभाव हो, वहाँ नाट्य साहित्य का उचित विकास नहीं हो पाता। रंगमंच से केवल एक पर्दे से सजे हुए मंच का बोध नहीं होता। इसके अंतर्गत कई बातें आती हैं। जिस समाज की अभिनय की ओर रुचि न हो, अभिनय कला को संगीत और चित्रकला के समान सम्मान और श्रद्धा की भावना से न देखा जाता हो, नाटक के प्रति आकर्षण के साथ-साथ उसके तंत्र और साहित्य संबंधी बारीकियों का अर्थ समझकर आनंद लेने की वृति न उत्पन्न हुई हो उस समाज में रंगमंच का अभाव है, ऐसा समझना चाहिए।'

एक समय था जब नाट्य साहित्य मुख्यत: अभिनय के लिए लिखा जाता था। कालिदास, भवभूति और शूद्रक आदि अनेक नाटककारों की सारी रचनाएँ अभिनय सुलभ है। नाटक की सार्थकता उसकी अभिनेयता में है अन्यथा वह साहित्य की एक विशिष्ट लेखन शैली बनकर रह जाती है। नाटक वास्तव में लेखक, अभिनेता और दर्शकों की सम्मिलित सृष्टि है। यही कारण है कि नाटक लेखकों के कंधों पर विशेष उत्तरदायित्व होता है। रंगमंच के तंत्र का ज्ञान, पात्रों की सजीवता, घटनाओं का औत्सुक्य और आकर्षण तथा स्वाभाविक कथोपकथन नाटक के प्राण हैं। इन सबको ध्यान में रखकर नाटक यदि नहीं लिखा गया है तो वह केवल साहित्यिक पाठ्य सामग्री रह जाती है। भारतीय हिन्दी भाषी समाज में रामलीला और नौटंकी का प्रसार था। कभी-कभी रास मंडली भी आया करती थी, जो अष्टछाप के काव्य साहित्य के आधार पर राधा-कृष्ण के नृत्यों से परिपूर्ण संगीत प्रधान कथानक प्रस्तुत करती थी। रामलीला और रासलीला को लोग धार्मिक भावनाओं से देखते थे। गाँवों में जो नौटंकी हुआ करती थी, उसका प्रधान विषय वीरगाथा अथवा उस प्रादेशिक भाग में प्रचलित कोई प्रेम गाथा हुआ करती थी। ग्रामीणजन का मनोरंजन करने में इनका बहुत बड़ा हाथ होता था। पंडित हीराराम त्रिपाठी के पद्य रासलीला में अधिकतर गाये जाते थे। उनके गीत की एक बानगी-

चल वृन्दावन घनस्याम दृष्टि तबै आवै।
होगा पूरन काम जन्म फल पावै॥
द्रुम लता गुल्म तरु वृक्ष पत्र दल-दल में॥
जित देखे तित श्याम दिषत पल-पल में।
घर नेह सदा सुख गेह देषु जल थल में।
पावेगा प्रकट प्रभाव हिये निरमल में॥
तब पड़े सलोने स्याम मधुर रस गावै॥ 1॥
तट जमुना तरू वट मूल लसै घनस्यामैं।
तिरछी चितवन है चारू नैन अभिरामैं।

कटि कसै कांछनी चीर हीर मनि तामैं॥
मकराकृत कुण्डल लोल अमोल ललामैं॥
मन स्वच्छ होय दृग कोर ओर दरसावै॥ 2॥
सुष पुंज कुंज करताल बजत सहनाई।
अरु चंग उपंग मृदंग रंग सुखढाई॥
मन भरे रसिक स्याम सज्जन मन भाई।
जेहि ढूँढ़त ज्ञानी निकट कबहुं नहिं पाई॥
युग अंखियों में भरि नीर निरखि हुलसावै॥ 3॥
श्रीकृष्ण प्रीति के रीति हिये जब परसै।
अष्टांग योग के रीति आपु से बरसै।
द्विज हीरा करू विस्वास आस मन हरसै॥
अज्ञान तिमिर मिटि जाय नाम रवि कर से॥
तब तेरे में निज रूप प्रगट परसावै॥ 4॥
चल वृन्दावन घनश्याम दृष्टि तब आवै॥

मुगलों के आक्रमण के पूर्व भारत के सभी भागों में खासकर राज प्रसादों और मंदिरों में संस्कृत और पाली प्राकृत नाटकों के लेखन और मंथन की परम्परा रही है लेकिन उनका संबंध अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित था। ग्रामीणजन के बीच परम्परागत लोकनाट्य ही प्रचलित थे। मुगलों के आक्रमण से भारतीय परम्पराएँ छिन्न भिन्न हो गयी और यहाँ के प्रेक्षागृह भग्न हो गये। तब नाटकों ने दरबारों में भाण और प्रहसन का रूप ले लिया। लेकिन लोकनाट्य की परम्परा आज भी जीवित है.....चाहे ढोलामारू, चंदायन या लोरिकायन रूप में हो, आज भी प्रचलित है। आज हमारे बीच जो लोकनाट्य प्रचलित है उसका समुचित विकास मध्य युग के धार्मिक आंदोलन की छत्रछाया में हुआ। यही युग की सांस्कृतिक चेतना का वाहन बना। आचार्य रामचंद्र ने राम कथा को और आचार्य वल्लभाचार्य ने कृष्ण लीला को प्रोत्साहित किया। इनके शिष्यों में सूर और तुलसी ने क्रमशः रासलीला और रामलीला को विकसित किया। इसी समय बंगाल में महाप्रभु चैतन्य ने जात्रा के माध्यम से कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य दो रूपों में विकसित हुआ। एक तो निम्न वर्ग के देवार, नट, भाट आदि लोगों में आल्हा-ऊदल, ढोला-मारू जैसी परम्परा को तथा पंडु, कंवर और संवरा जाति में पंडवानी और पंथी को विकसित किया। छत्तीसगढ़ में इसका प्रचार-प्रसार लगभग 16वीं और 17वीं शताब्दी के मध्य हुआ। उत्तर भारत के रासलीला और रामलीला मथुरा, वृंदावन, काशी और इलाहाबाद से सतना, रीवा, अमरंकटक होते हुए पेंड्रा, रतनपुर, शिवरीनारायण, अकलतरा, सारंगढ़, किकिरदा, मल्दा, नरियरा, बलौदा, कवर्धा, कोसा और राजिम आदि में फैल गया। इसलिए छत्तीगसढ़ी भाषा में ब्रज और अवधी का पुट मिलता है। दूसरी ओर बंगाल की जात्रा, उड़ीसा की पाल्हा, जगन्नाथपुरी से सुंदरगढ़, संबलपुर, सारंगढ़, चंद्रपुर, पुसौर, रायगढ़ और तमनार आदि जगहों में फैल गया। यहाँ की नाट्य परम्पराओं में इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। पं. हीराराम के गाये गीत प्रचलित थे-

कृष्ण कृपा नहिं जापर होई दुई लोक सुख ताहिं न होई।
देव नदी तट प्यास मरै सो अमृत असन विष सम पलटोई॥
धनद होहि पै न पावै कौड़ी कल्पद्रुम तर छुधित सो होई।
ताको चन्द्र किरन अगनी सम रवि-कर ताको ठंठ करोई॥
द्विज हीरा हरि चरण शरण रहु तोकू त्रास देइ नहिं कोई॥

डॉ. बल्देव से मिली जानकारी के अनुसार रायगढ़ के राजा भूपदेवसिंह के शासनकाल में नगर दरोगा ठाकुर रामचरण सिंह जात्रा से प्रभावित रास के निष्णात कलाकार थे। उन्होंने इस क्षेत्र में रामलीला और रासलीला के विकास के लिए अविस्मरणीय प्रयास किया। गौद, मल्दा, नरियरा और अकलतरा रासलीला के लिए और शिवरीनारायण, किकिरदा, रतनपुर, सारंगढ़ और कवर्धा रामलीला के लिए सुप्रसिद्ध थे। नरियरा के रासलीला को इतनी प्रसिद्धि मिली कि उसे 'छत्तीसगढ़ का वृंदावन' कहा जाने लगा। ठाकुर छेदीलाल बैरिस्टर, उनके बहनोई कोसिरसिंह और भांजा विश्वेश्वर सिंह ने नरियरा और अकलतरा के रासलीला और रामलीला के लिए अथक प्रयास किया।

उस काल में जांजगीर क्षेत्रान्तर्गत अनेक गम्मतहार सुरमिनदास, धरमलाल, लक्ष्मणदास चिकरहा को नाचा पार्टी में रास का यथेष्ट प्रभाव देखने को मिलता था। उस समय दादूसिंह गौद और ननका रहस मंडली, रानीगाँव रासलीला के लिए प्रसिद्ध था। वे पं. हीराराम त्रिपाठी के श्री कृष्णचंद्र का पचरंग शृँगार गीत गाते थे-

पंच रंग पर मान कसें घनश्याम लाल यसुदा के।
वाके वह सींगार बीच सब रंग भरा बसुधा के॥
है लाल रंग सिर पेंच पाव सोहै,
अँखियों में लाल ज्यौं कंज निरखि द्रिग मोहै।
है लाल हृदै उर माल कसे जरदा के ॥ 1॥
पीले रंग तन पीत पिछौरा पीले।
पीले केचन कड़ा कसीले पीले॥
पीले बाजूबन्द कनक बसुदा के॥ पंचरंग..... ॥ 2॥
है हरे रंग द्रुम बेलि हरे मणि छज्जे।
हरि येरे वेणु मणि जड़ित अधर पर बज्जे॥
है हरित हृदय के हार भार प्रभुता के॥ पंचरंग.... ॥ 3॥
है नील निरज सम कोर श्याम मनहर के।
नीरज नील विसाल छटा जलधर के॥
है नील झलक मणि ललक वपुष वरता के॥ पंचरंग.. ॥4॥
यह श्वेत स्वच्छ वर बिसद वेद जस गावे।
कन स्वेत सर्वदा लहत हृदय तब आवे॥
द्विज हीरा पचरंग साज स्याम सुखदा के॥ पंचरंग... ॥ 5॥

इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में नाट्य लेखन की परम्परा रही है। भारतेन्दु युग में हिन्दी रंगमंच का निर्माण हुआ और अधिक से अधिक अभिनय, नाटक और प्रहसन आदि लिखे और प्रस्तुत किये गये। हालाँकि यह रंगमंच सामाजिक परिस्थितियों के कारण चिरस्थायी न रह सका और उसका स्थान पारसी थियेटिकल कम्पनियों ने ले लिया। इसके अवसान काल में सिनेमा का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बावजूद लोग सजीव व्यक्ति को अपने सम्मुख उनके और उनकी समस्याओं का अभिनय करते देखना चाहते थे। इस युग में अंग्रेजी और संस्कृत नाटकों के अनुवाद का प्रचलन था।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के बाल सखा, कवि और सुप्रसिद्ध आलोचक ठाकुर जगमोहन सिंह के प्रिय शिष्य और शिवरीनारायण के मालगुजार पंडित यदुनाथ भोगहा के सुपुत्र पं. मालिकराम भोगहा ने रामराज्यवियोग, प्रबोध चंद्रोदय और सती सुलोचना नाटक लिखा। इन नाटकों का शिवरीनारायण के अलावा कई स्थानों में सफलतापूर्वक मंचन किया गया। भोगहा जी ने शिवरीनारायण में एक नाटक मंडली बनायी थी। छत्तीसगढ़ के अनेक साहित्यकारों ने नाटक लिखा है। इनमें साहित्य वाचस्पति जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के पिता श्री बक्षीराम ने 'हनुमान' नाटक लिखा था। रायगढ़ के पं. अनंतराम पांडेय ने सन् 1903 में 'कपटि मुनि' नाटक लिखा था जिसे मंचित भी किया गया। द्विवेदी युगीन साहित्यकार पंडित शुकलाल पांडेय ने सन् 1930 में मातृमिलन नाटक लिखा था। पं. लोचन प्रसाद पांडेय ने सन् 1914 में 'साहित्य सेवा' प्रहसन लिखा था। डॉ. बल्देव प्रसाद मिश्र ने शंकर दिग्विजय, वासना वैभव, समाज सेवक, दानी सेठ, असत्य संकल्प और क्रांति आदि नाटक लिखा है। उनके नाटकों के कथोपकथन काव्यमय और चमत्कारपूर्ण हैं। उनके कुछ नाटकों की शैली पारसी नाट्य परम्परा पर आधारित है।

छत्तीसगढ़ी में व्यवस्थित नाट्य लेखन की शुरूआत डॉ. खूबचंद बघेल से होती है। उन्होंने सन् 1930 से 1950 के बीच अनेक नाटक लिखे जिसमें ऊँच-नीच, करम छटहा, जनरैल सिंह, बेटवा बिहाव, किसान के करलई और काली भाटों आदि प्रमुख है। वे अपने इन नाटकों का उपयोग छत्तीसगढ़ में जनजागरण के लिए करते थे। पंडित शुकलाल पांडेय ने छत्तीसगढ़ी में भूल भुलईया, गींया, छत्तीसगढ़ी ग्राम गीत, कलिकाल, उपसहा दामाद, सीख देवैया, केकरा धरैया आदि लिखा है। डॉ. प्यारेलाल गुप्त ने छत्तीसगढ़ नाटक 'दू सौत' लिखा है। इसी प्रकार श्रीरामगोपाल कश्यप ने 'माटी के मोल', डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा ने सोनहा बिहान, गुरु चेला, भोला बनाइले, महेत्तर साहू ने 'राजा बेटा', श्री नारायणलाल परमार ने 'भूल सुधार' और भुवनलाल मिश्र ने 'रतिहा मदरसा' नामक छत्तीसगढ़ी नाटक लिखकर नाट्य परम्परा को पुष्ट किया है।

छत्तीसगढ़ी नाटकों को लोकनाट्य के बजाय हिन्दी और एकांकी से प्रभावित समस्या मूलक नाटक कहा जाना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि इनमें सम सामयिक चेतना तो है लेकिन गाँव की अल्हड़ता नहीं है। इनमें सम सामयिक लोक भाषाओं का उद्दाम आवेग, लोकधर्मी प्रस्तुतियाँ नहीं होती और न ही इन्हें खुले मंच पर खेला जा सकता है। रंगकर्मी चाहें तो इन्हें आधार बनाकर लोकनाट्य के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। जैसे डॉ. खूबचंद बघेल ने काली माटी, श्रीरामचंद्र देशमुख ने सरग अऊ

नरक, जनम अऊ मरन, श्री हबीब तनवीर ने चरनदास चोर, मोर गाँव के नाम ससुराल मोर नाम दामाद और महासिंह चंद्राकार ने सोनहा बिहान को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है।

लोकनाट्य की स्वाभाविक भावधारा को श्री रामचंद्र देशमुख द्वारा निर्देशित 'चंदैनी गोंदा' ने आज के सिनेमाई युग में संबल प्रदान किया है। इनसे प्रभावित होकर अनेक कला मंडलियों, नाट्य संस्थाओं और कला पथकों का निर्माण हुआ, मगर सिनेमाई युग की मार, उसमें प्रदर्शित पश्चिमी अंग प्रदर्शन के दृश्य ने कुछ ही समयों में उसे धरासायी कर दिया। यह अत्यंत चिंता का विषय है कि हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगी है। इसके संरक्षण की दिशा में प्रयास किया जाना उचित होगा।

बहुत कम लोगों को मालूम है कि शिवरीनारायण का अभिनय संसार केवल छत्तीसगढ़ में ही नहीं वरन् देश के कोने में प्रसिद्ध था। हालाँकि हर गाँव में नाचा, गम्मत, रामलीला और रासलीला पार्टी होती थी लेकिन यहाँ की रामलीला और नाटक मंडली की बात ही कुछ और थी। 'छत्तीसगढ़ गौरव' में पंडित शुकलाल पांडेय ने लिखा है-

ब्रज की सी यदि रास देखना हो तो प्यारों
ले नरियर नरियरा ग्राम को शीघ्र सिधारों
यदि लखना हो सुहृद! आपको राघव लीला
अकलतरा को चलो, करो मत मन को ढीला
शिवरीनारायण को जाइये लखना हो नाटक सुघ्घर
बस यहीं कहीं मिल जायेंगे जग नाटक के सूत्रधार।

प्राचीन साहित्य में उल्लेख मिलता है कि पंडित मालिकराम भोगहा ने एक नाटक मंडली यहाँ बनायी थी। इस नाटक मंडली द्वारा अनेक धार्मिक और सामाजिक नाटकों का सफलतापूर्वक मंचन किया जाता था। भोगहा जी भी छत्तीसगढ़ के एक उत्कृष्ट नाटककार थे। उन्होंने अनेक नाटक लिखे जिसमें राम राज्य वियोग, प्रबोध चंद्रोदय और सती सुलोचना प्रमुख है। इन नाटकों का यहाँ सफलतापूर्वक मंचन भी किया गया था। भोगहा जी का एक मात्र प्रकाशित नाटक 'राम राज्य वियोग' में उन्होंने लिखा है- 'यहाँ भी कई वर्ष नित्य हरि कीर्तन, नाटक और रासलीला देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक समय मेरे छोटे भाई श्रीनिवास ने 'कंस वध उपाख्यान' का अभिनय दिखाकर सर्व सज्जनों को प्रसन्न किया। इस मंडली में हमारे मुकुटमणि श्रीमान् महंत गौतमदास जी भी सुशोभित थे। श्रीकृष्ण भगवान का अंतर्ध्यान और गोपियों का प्रलापना, उनके हृदय में चित्र की भाँति अंकित हो गया जिससे आपकी आनंद सरिता उमड़ी और प्रत्यंग को आप सोते में निमग्न कर अचल हो गये। अतएव नाटक कर्त्ता का उत्साह अकथनीय था और मुख्य कारण इनके निर्माण का हुआ।'

इस सदी के दूसरे दशक में महंत गौतमदास के संरक्षण में पंडित विश्वेश्वर तिवारी के कुशल निर्देशन में एक नाटक मंडली संचालित थी, जिसे उनके पुत्र श्री कौशलप्रसाद तिवारी ने 'महानद थियेटिकल कम्पनी' नाम से कुशलतापूर्वक संचालित और निर्देशित किया। इसी प्रकार श्री भुवनलाल शर्मा 'भोगहा' के निर्देशन में नवयुवक नाटक मंडली और श्री विद्याधर साव के निर्देशन में केशरवानी नाटक मंडली यहाँ संचालित थी। श्री कौशलप्रसाद तिवारी ने भी एक बाल महानद थियेटिकल कम्पनी का गठन किया था। आगे चलकर इस नाटक मंडली को उन्होंने महानद थियेटिकल कंपनी में मिला दिया। पंडित कौशल प्रसाद तिवारी पार्सी थियेटर के अच्छे जानकार थे। उनको नाटकों का बहुत अच्छा ज्ञान था। वे नाटक मंडली के केवल निर्देशक ही नहीं बल्कि एक अच्छे कलाकार भी थे। कलकत्ता के नाट्य मंडलियों और निर्देशकों से उनका सतत् सम्पर्क था। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी नाट्य कलाकार शिवरीनारायण में अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं। तिवारी जी सभी कलाकारों का बहुत ख्याल रखते थे। उनके आने-जाने, रहने और खाने-पीने की बहुत अच्छी व्यवस्था करते थे। चूँकि नाटकों के मंचन और उसकी तैयारी में बहुत खर्च होता था और यहाँ के लोगों के लिये ही नाटक एक मात्र मनोरंजन का साधन होता था। अतः मठ के महंत श्री गौतमदास और मठ के मुख्तियार श्री विश्वेश्वर प्रसाद तिवारी महानद थियेटिकल कम्पनी के कलाकारों को नाटक की तैयारी और मंचन के लिये आर्थिक मदद देने लगे। इससे यहाँ का नाटकों का मंचन बहुत अच्छा होता था। दशहरा-दीपावली के बाद से नाटकों का रिहर्सल शुरू होता था और गर्मी के मौसम में रात्रि में नाटकों

का मंचन होता है, जिसे देखने के लिये छत्तीसगढ़ के राजा, महाराजा और जमींदार तक यहाँ आते थे। नाटकों का मंचन पहले केशवनारायण मंदिर के प्रांगण में होता था। फिर मठ के गाँधी चौरा प्रांगण में और बाद में बाजार में कुआँ के बगल में नाटकों का मंचन होता था। महानद थियेटिकल कम्पनी के कलाकारों को कलकत्ता के डॉ. अब्दुल शकूर और खुदीराम बोस रिहर्सल कराने आते थे। तब उन्हें 'बाजा मास्टर' कहा जाता था। सबके प्रयास से नाटकों का मंचन प्रभावोत्पादक, मनोरंजनपूर्ण और आकर्षक होता था। इसमें नृत्य, संगीत और अभिनय का सुन्दर समन्वय होता था। श्री कौशलप्रसाद तिवारी, श्री रथांग पांडेय और श्री गुलजारीलाल शर्मा से मेरी इस सम्बन्ध में चर्चा होती थी। नाटकों के प्रति मेरी अभिरूचि देखकर वे उस काल की जानकारी दिया करते थे। उन्होंने मुझे बताया कि सन् 1944–45 के मेला में अंग्रेज सरकार के सहायतार्थ नाटकों का मंचन किया गया था। इसे देखने के लिये सारंगढ़ के राजा, भटगाँव, बिलाईगढ़, अकलतरा, पिथौरा के जमींदार और अनेक गाँव के मालगुजार और अंग्रेज अधिकारी और बिलासपुर जिले के कलेक्टर सहित बहुत लोग आये थे। सभी सिनेमा और सर्कस खाली और जैसे पूरी भीड़ नाटक देखने के लिये उमड़ पड़ी थी। नाटक के एक ट्रिक सीन को देखकर अंग्रेज अधिकारी बहुत उत्तेजित हो गये थे जिन्हें बड़ी मुश्किल से शांत किया जा सका था। एक जानकारी के अनुसार पंडित कौशलप्रसाद तिवारी ने महानद थियेटिकल कंपनी का निर्माण और नाटकों का पहला मंचन सन् 1925 में किया और अंतिम नाटक सन् 1952 में खेला गया था।

महानद थियेटिकल कम्पनी द्वारा मंचित नाटकों में प्रमुख रूप से धार्मिक और सामाजिक नाटक होते थे। धार्मिक नाटकों में सीता वनवास, सती सुलोचना, राजा हरिश्चंद्र, वीर अभिमन्यु, दानवीर कर्ण, सम्राट परीक्षित, कृष्ण और सुदामा, भक्त प्रहलाद, भक्त अम्बरीष आदि सामाजिक नाटकों में आदर्श नारी, दिल की प्यास, आँखों का नशा, नई जिंदगी, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी आदि प्रमुख थे।

श्री भुवनलाल शर्मा भोगहा द्वारा निर्देशित और संचालित 'नवयुवक नाटक मंडली' वास्तव में पंडित मालिकराम भोगहा के नाटक मंडली का नवीनतम रूप था। इस नाटक मंडली को कलाकारों के आपसी झगड़े के कारण बनाया गया था। इनके नाटकों का मंचन केशवनारायण मंदिर प्रांगण में और भोगहापारा में थाना चौंक के आसपास किया जाता था। इनमें धार्मिक, सामाजिक और हास्यप्रद नाटकों की बहुलता होती थी। आज भी भोगहा जी के घर और मंदिर प्रांगण में नाटक की सामग्री देखने को मिल जायेंगे।

छत्तीसगढ़ी और मैथिली गीत

श्रीमती शान्ति यदु

हमारा देश भारत विभिन्न संस्कृतियों, भाषा-बोलियों एवं जातियों-प्रजातियों के गुम्फन और मिश्रण से ओत-प्रोत देश है और इसकी विभिन्नता एवं विविधता में भी एक प्रकार की समरसता के दर्शन होते हैं। मनुष्य भिन्न-भिन्न स्थानों, प्रान्तों और ग्रामीण अंचलों के हो सकते हैं, किन्तु मानव-हृदय एक होता है। मनुष्य के जीवन की दुखात्मक-सुखात्मक अनुभूतियाँ प्रान्तों और क्षेत्रों में विभाजित नहीं होतीं, बल्कि वे हर मनुष्य के हृदय में समान रूप से विद्यमान रहती हैं। मनुष्य की भाषा-बोलियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, किन्तु मनुष्य के भीतर पैठे मनोभाव प्राय: एक से ही होते हैं। किसी भी भाषा-बोली का मनुष्य हो, उसमें मनोविकारों का अस्तित्व रहता ही है। यह बात अलग है कि मनुष्य अपने जीवन और जगत की अनुभूतियों को किस प्रकार व्यक्त करता है। इस लेख में छत्तीसगढ़ी एवं मैथिली गीतों का तुलनात्मक अध्ययन कुछ गीतों के आधार पर मैं करना चाहूँगी। यदि हम देखें तो मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी, इन दोनों ही भाषा बोलियों में शक्ति-पूजा से संबंधित गीत गाये जाने का प्रचलन है। जहाँ तक छत्तीसगढ़ी का प्रश्न है तो छत्तीसगढ़ी वाचिक परम्परा में लोक-गीतों के गान की परम्परा युगों-युगों से चली आ रही है और इनके रचनाकारों का कोई अता-पता नहीं है कि ये लोक गीत किसने रचे थे? बस इतना ही जानते हैं कि यहाँ ये लोक-गीत परम्परागत रूप से जन-मानस द्वारा अधिमान्य कर दिये गये हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरन्तर हस्तान्तरित होते चले आ रहे हैं और जन-मानस इन्हें अपने लोकगीतों के रूप में मान्यता देकर इन्हें गाता चला आ रहा है। वहीं दूसरी ओर मैथिली गीतों के सिद्धहस्त गायक जयदेव और विद्यापति के गीत इतने लोकप्रिय हुये कि इन्हें यहाँ का जन-मानस इतने चाव से गाने लगा कि वे वाचिक परम्परा के लोकगीतों की तरह लगने लगे और गायकों के नाम-पते उजागर होने के बावजूद भी लोक जन-मानस ने इन गीतों को अपना मान लिया और लोक-स्वीकृति पाकर आज विद्यापति के मैथिली गीत घर-घर में गाये जा रहे हैं।

यदि हम मैथिली व छत्तीसगढ़ी गीतों पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी दोनों ही भाषा-बोली के

गीतों में हमें शक्ति पूजा के दर्शन होते हैं और इनमें 'देवी' की महिमा अपने-अपने ढंग से मंडित है। मैथिली गीत देखिये-

जय भैरवि असर भयाउनि।
पसुपति भामिनी माया।
सहज समति बर दिआओ गोसाइनि।
अनुगति गति तुअ पाया॥
बासर रैनि सबासन सोभिन।
धरन चन्द्र मनि चूड़ा॥
कतओक दैत्य मारि मुँह झेलल।
कतओ उगत केल कूड़ा॥

एक अन्य पद है-

जय-जय भगवती भामा भवानी।
नारि वेद अवतरू बृम्हवादिनी॥
हरिहर ब्रम्ह पूछहति भये।
एकओ न जान तुम आदि मरमे॥

मैथिली गीतों में निहित 'देवी' सुमेरू पर्वत के शिखर पर वास करने वाली है। वह परसु, पाण, कृपाण, बाण, शंख और चक्र धारण करने वाली है। वह शत्रुओं का बल छीन कर पापों का उद्धार करने वाली है और विद्यापति उनकी जय-जयकार करते नहीं थकते। केवल इतना ही नहीं, बल्कि उनकी देवी चारों वेदों के रूप में अवतरित हुई है। हरि और ब्रह्मा तक देवी की विराट महिमा को नहीं जान पाते और वे देवी के मर्म को जानना चाहते हैं। इस तरह से मैथिली गीतों में 'देवी' का विराट और महान् स्वरूप व्यक्त हुआ है और कलात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट झाँकती है।

वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी गीतों में देवी की महिमा का मंडन उनके लिये भुवन बनाने में अभिव्यक्त हुई है। जो देवी इतनी विराट और महान हैं और जो दूध और पूत देने वाली है तथा असुरों का संहार कर उसका रक्त-पान करने वाली है, ऐसी शक्तिशाली 'देवी' के लिये उसके अनुरूप ही तो भुवन (भवन) बनाना होगा। देवी का भुवन बनाने के लिये श्रेष्ठतम खनिज पदार्थों का उपयोग किया जायेगा। विशालकाय पहाड़ खोदकर पत्थर एकत्र किये जायेंगे। इन कठोर पत्थरों से देवी के भुवन की नींव भरी जायेगी। भुवन के निर्माण में सोने की ईंटों का प्रयोग होगा। गारा चाँदी से बनाया जायेगा। भुवन की लिपाई-पुताई अबरक मिश्रित चन्दन के चूने से की जायेगी। अब जरा देवी के भुवन का आकार भी देखिये। भुवन दस कोस का बनेगा। बीस कोस की उसकी चौहद्दी होगी। इस संदर्भ में यह देवी गीत दृष्टव्य है-

मैया भुवन को अजब बनायौ
काहेन काट के भुवन बनाये मैया
काहेन काट दुआरे ओ माँय
पहिरी फोरिके भुवन बनाये मैया
पाहन फोरिके दुआरे ओ माँय
काहेन काटके ईंट बनाये मैंया
काहेन काटके गिलावा हो माँय
कै कोस के भुवन बनाये मैया
कै कोसन चहुँ फेर हो माँय
दस कोस के भुवन बनाये मैंया
बीस कोस के चहुँ फेर हो माँय।

यद्यपि उपरोक्त मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी गीतों में देवी के विराट स्वरूप और महिमा का वर्णन किया गया है और दोनों ही भाषा-बोली के गीतों में देवी की विराटता और महानता का मंडन किया गया है। मैथिली गीत में देवी की शक्ति को इंगित करने वाली गहन और गंभीर अभिव्यक्ति है, वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी गीत में देवी के विराट भुवन के निर्माण की भोली-भाली परिकल्पना की गई है। देवी का विराट भुवन कुछ ऐसा कि उसकी परिकल्पना से ही सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस देवी का भुवन इतना विशाल, विराट और भव्य होगा, तो उसमें निवास करने वाली 'देवी' कितनी महान और महिमामयी होगी? इस तरह से मैथिली गीत में देवी की महिमा का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से किया गया है और छत्तीसगढ़ी गीत में देवी की महानता का वर्णन परोक्ष रूप से भुवन की परिकल्पना कर किया गया है।

मनुष्य के जीवन में विरह-मिलन, संयोग-वियोग और

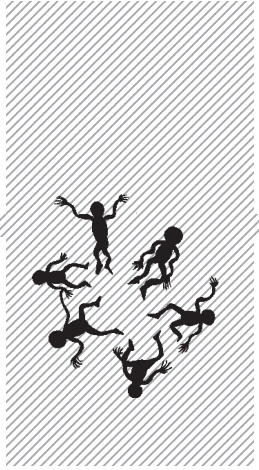

विरह-वेदना की परिस्थितियाँ स्वाभाविक और सहज रूप में आती ही रहती है और जिनकी अभिव्यक्ति मैथिली व छत्तीसगढ़ी गीतों में अपने-अपने ढंग से हुई है। मैथिली गीत की नायिका कुलकामिनी है और वह कुलशीला होने के कारण अपने मुख से अपने प्रियतम से कुछ नहीं कह पाती, क्योंकि उसे कुलशीला होने के कारण लज्जाशील गुणों को तो स्वयं में आत्मसात करना ही होगा। अत: वह अपने प्रियतम के पास अपना सन्देश अपनी सहेली के माध्यम से ही प्रेषित करना श्रेयस्कर और उचित समझती है। उसने अपने सन्देश में प्रियतम को कुछ समय और रुकने का आवाहन किया है। साथ ही यह भी कहला भेजा है कि यदि वे नहीं रूके तो समाज उसका उपहास करेगा और मखौल उड़ायेगा। उसके प्रेम का ऐसा मखौल उड़ाया जाय और लोग हँसे और टीका-टिप्पणी करें, ये उसे सहन नहीं होगा। उसने यह भी अपने संदेश में स्पष्ट कर दिया है कि जिस आस्था, निष्ठा, विश्वास और आत्मीयता से उसने अपने प्रियतम की सेवा और पूजा-आराधना की है, उसी प्रकार से वह उनके सान्निध्य और सुख का भी उपभोग करना चाहती है। साथ ही उसने धमकी भरा यह भी संकेत दे दिया है कि यदि उसके प्रियतम किसी अन्य स्त्री के प्रति आसक्त और आकर्षित होंगे तो वह अग्नि में कूद कर अपने प्राणों की आहुति दे देगी। विद्यापति की मैथिली नायिका कहती है-

सखि! हे बालम जितब विदेसे
हम कुलकामिनि कहइस अनुचित
तोह जू दे हुन्ही उपदेसे
इन विदेसक बोलि
दुरजन हमर दुखव अनुमायव
ते तो हे, पिया गेलि एलि
किछु दिन करथ निवासे
हमें पूजत जे सिन्हे पाय भंजब
राखचु पर उपहासे
होय तोहे किये वध भागी
जहि खन हुन्हि मने माधव चिन्तब
हमहु मरव घासि आगी
विद्यापति कवि मानें
राजा सिमे सिंध रूप नारायन
सखमा देई रमाने॥

वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी गीतों की नायिका को अपनी चिन्ता नहीं, बल्कि उसे तो अपने प्रियतम की चिन्ता है, उसे क्षोभ और दुख है तो इस बात का कि कौन उसे प्रियतम के हालचाल का सन्देश देगा? कौन करायेगा परिचय उसे उसके प्रियतम के दुख-सुख से? पता नहीं प्रियतम किस हाल में है? बस वह केवल इसी चिन्ता में डूबी है। पति के अभाव में उसे अपने जीवन से विरक्ति होने लगी है। उसने अपने हाथों में मेहंदी लगाना छोड़ दिया है। अब वह अपना केश-विन्यास भी नहीं करती। ठीक भी तो है कि जब उसके पति ही पास में नहीं है तो वह किसके लिये करे साज-शृँगार? अब उसे पकवान बनाना भी अच्छा नहीं लगता। उसके दुख और क्लेश इतने बढ़ गये हैं कि वे उससे नहीं सहे जाते। सास-ससुर के देश में उसे पिया बिन कुछ नहीं भाता। अब वह वैरागिन का वेश धारण कर स्वयं के पति की खोज में निकल पड़ेगी। परिवार में पिया के बिना उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जब चाहे तब ननद और जिठानी उसे जली-कटी सुनाकर टोंचती रहती हैं। उसका पक्ष लेने वाला भी तो कोई नहीं है। सभी तो विराने हो गये हैं। किससे कहे वह अपनी दुख-बीती? अब तो वह दुखों से ऊब चुकी है और माहुर (विष) खाकर मर जाना चाहती है। वह कहती है-

मोर पिया गे हे परदेस
मोर गुइयां पिया गयेन परदेस
न कोऊ आवै, न कोऊ जावय
न भेजय सन्देश
काबर मैं मेहंदी रचाऔं
काहे संवारौ केस
काकर बर पकवान बनावौं
कइसे सहौं कलेस
पिया बिन मोला एको न भावै
सास-ससुर के देस
खोजे बर उन ला मैं जाहौं
धर वैरागिन बेस

ठेवत रहिथे ननद जिठानी
लगिस करेजवा माँ ठेस
महुरा खा के मैं सुत जाहौं
मिटही मोर कलेस।

उपरोक्त छत्तीसगढ़ी गीत में नायिका का वासना रहित उदात्त प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। छत्तीसगढ़ी गीत की नायिका मैथिली गीत की नायिका की तरह प्रियतम को कोई सन्देश किसी सखी के माध्यम से नहीं भेजती, बल्कि वह स्वयं ही वैरागिन का वेश धारण कर उसकी खोज-खबर लेने निकल पड़ती है। उसे पति के भोग की चाह नहीं। उसका प्रेम वासना रहित प्रेम है। उसे अपने पति पर इतना विश्वास है कि वह किसी प्रकार की आशंका में नहीं डूबती और न पति को उपालम्भ ही देती है। यदि हम मैथिली व छत्तीसगढ़ी गीत का सूक्ष्म अध्ययन करें तो हमें मैथिली गीत से अधिक भाव-प्रवणता छत्तीसगढ़ी गीत में परिलक्षित होती है। छत्तीसगढ़ी गीत में प्रेम के लिये प्रेम है। छत्तीसगढ़ी नायिका को न कोई चाह है और न अपना कोई स्वार्थ ही है, उसे तो केवल पति का सान्निध्य और आत्मीय स्नेह चाहिये। उसके मन में बस यही चाह है कि उसका पति जहाँ भी हो, कुशलतापूर्वक हो और निष्कंटक जीवन व्यतीत कर रहा हो। इस तरह से उसे केवल अपने पति की कुशल-क्षेम की ही चिन्ता है। वहीं दूसरी ओर विद्यापति की मैथिली नायिका बहुत चतुर-सुजान और कुलशीला है। वह अपने कुलशील धर्म का निवर्हन करते हुये अपनी सखी के माध्यम से ही अपने पति को सन्देश भेजती है और स्वयं अपने मुख से लज्जाशीलता में डूबकर कुछ नहीं कहना चाहती। वह अपनी सेवा-भावना के बदले में अपने प्रियतम से रसोभोग भी चाहती है। विद्यापति की मैथिली नायिका मानिनी है और अपने प्रियतम के हृदय की थाह लेना चाहती है। वह चतुर, बुद्धिमती और दूरदर्शिनी है। वह अपने एवं अपने प्रियतम के बीच के संबंधों में निश्चिन्तता चाहती है और वह अपने प्रेम-संबंधों को सुरक्षित और सुदृढ़ रखना चाहती है।

मैथिली व छत्तीसगढ़ी गीतों में सुआ की भी परिकल्पना की गई है। यह एक प्राचीन परिपाटी है। सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी ने भी अपने काव्य में सुग्गा को अपनाया था। सुआ को सन्देश वाहक एवं प्रेम-सन्देश वाहक के रूप में लोक गीतों में सदा से ही स्वीकृति मिलती आई है। छत्तीसगढ़ी व मैथिली इन दोनों गीतों में सुआ के प्रयोग का प्रचलन है। सुआ गीत प्रायः प्रश्नोत्तर रूप में गाये जाते हैं। एक मैथिली सुआ गीत देखिये-

कहौ सो सुग्गा आएल नेह लाएल
कहाँ लेल बसेरा अमृत फल भींजना
(फलाँ) ग्राम सो सुग्गा आएल नेह लाएल
(फलाँ) ग्राम लेल बसेरा अमृत फल भोजन
के ये पिंजरा गढ़ाओल सुग्गा पोसल
के ताहि देत अहार अमृत फल भोजन
(फलाँ) बाबा पिंजरा गढ़ाओल सुग्गा पोसल
(फलाँ) सासु देति अहार अमृत फल भोजन
एहन सुग्गा नहिं पोसिय
नेह लगाविय सुगवा हेत
उड़िआत अपन गृह आयेत
मनहिं विद्यापति गाओल।

उपरोक्त गीत में सुआ से नेह लगाने के संबंध में प्रश्न है। साथ ही उसके दुख-सुख और साधन-सुविधाओं से भी संबंधित प्रश्न किये गये हैं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि नेह लगाने के बाद सुग्गे के उड़ जाने की भी आशंका व्यक्त की गई है।

छत्तीसगढ़ी सुआ गीतों में भी प्रश्नोत्तर चलते हैं, किन्तु ये प्रश्नोत्तर मैथिली गीतों से भिन्न होते हैं। एक छत्तीसगढ़ी सुआ गीत प्रस्तुत है-

जाओ रे सुअना चन्दन वन
चन्दन वन आमा गोंद लइ आब
नारे सुअना हो आमा गोंद लइ आब
जाये बर जहिहों आमा गोंद बर
कइसे के लहिहों टोर
गोड़िन रेंगहा पंखन उड़िहा
मुँह मा लइहा टोर
लाये बर लहिहों आमा गोंद ला
काला मैं दहिहों धराय
गुड़ी मा बइठे मोर बंधोरैया

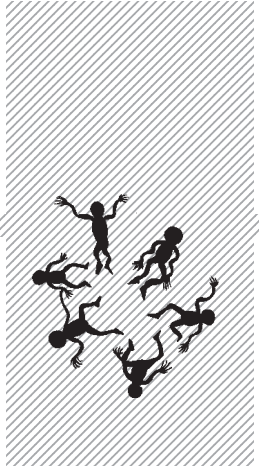

पगड़िन देहा अरूझाय
अंग ओखर पातर मुँह
ढुरढुरिया भू है मेंछन के रेख

मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी गीतों में बारहमासी गीतों के गायन का भी प्रचलन है। मैथिली में प्राय: एक माह का वर्णन ही किसी एक गीत में किया जाता है और अलग-अलग महीनों के लिये अलग-अलग गीत होते हैं, किन्तु छत्तीसगढ़ी में ऐसे भी बारहमासी गीत हैं, जिनमें एक ही गीत में साल के बारह महीनों का वर्णन मिल जाता है। मैथिली गीतों में महीनों को किसी संदर्भ विशेष से जोड़ दिया जाता है। एक मैथिली गीत प्रस्तुत है-

मोर पिया सखि! गेल दूर देस
जीवन दए गेल साल सने
मास अषाढ़ उनत नव मेघ
पिया विसलेख रहओ निरथेष
कौन पुरुष सखि! की से दुख
करय मोय तहाँ जोगिनी भेस
साओन मास बरसि घर बारि
पंथ न सुझै निसि अंधियारी
चाँदसी देखिये बिजुरी रेह
ए सखि कामिनी जीवन सन्देह

उपरोक्त गीत में नायिका की विरह-विदग्ध भावनायें आषाढ़ और सावन जैसे महीनों के प्राकृतिक वातावरण को समेट कर व्यक्त की गई है। वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ी बारहमासा गीत में छत्तीसगढ़ के तीज-त्यौहारों, महीनों की विशेषताओं और ऋतु परिवर्तन के बदलते स्वरूपों का उल्लेख व वर्णन मिलता है। एक छत्तीसगढ़ी बारहमासा गीत है-

सावन भादों बुंदिया रिमझिम बरसै
भादों गहिर गंभीर हो माय
कारी-कारी निसि अंधियारी
बिजुरी चमक रहि जाय ओ माय
क्वाँर महीना नवमीं दसहरा
घर-घर मानत हे तिहार हो माय
कार्तिक के महीना धरम के हो मैया
तुलसा मा दियना जलाय हो माय
अगहन मास अगम के हो मैया
पूस मा लागत हो दुसाला हो माय
माघ महीना बौरे अंबुआ के डारी
फागुन रंग गुलाल हो माय
चैत मास दिन टेसू फूलै मैया
बैसाख मा जुही निवारी हो माय
जेठ मासे धन पतिया पठोये
जावत लागे अषाढ़ हो माय

इस तरह से छत्तीसगढ़ी एवं मैथिली गीतों की अपनी-अपनी विशेषताएँ और गुण-धर्म हैं। दोनों ही प्रान्तों के गीतों में मधुर मिठास, लयात्मकता और हृदय को स्पर्श कर लेने वाली गीतात्मकता है। मैथिली गीत कला पक्ष की दृष्टि से परिमार्जित काव्य की धरोहर हैं, जब कि छत्तीसगढ़ी गीतों में साहित्यिकता भले ही न हो, किन्तु इनमें भाव-प्रवणता, समरसता और जीवन का सहज सौन्दर्य बिना किसी आडम्बर के साथ स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विद्यापति के गीत जयदेव के गीतों से प्रभावित हैं किन्तु छत्तीसगढ़ी गीतों में निज की भोली मौलिकता है। मैथिली गीतों को सुनकर प्राय: विद्यापति का स्मरण हो आता है, किन्तु छत्तीसगढ़ी लोक गीतों के संबंध में नहीं कहा जा सकता कि इसके सर्जनहार कौन थे? ये तो बस पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर जन-मानस के द्वारा हस्तान्तरित होते चले आ रहे हैं। यद्यपि मैथिली गीतों के प्रणेता विद्यापति हैं, किन्तु इनके मैथिली गीत जन-मानस के बीच इतने लोकप्रिय हुये कि इन्हें मैथिल के जन-मानस के लोक-गीतों की तरह हृदय से स्वीकार कर लिया और वे आज मिथिला में जन-जन के मुख से मुखरित और गुंजित हो रहे हैं। इस तरह से मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी गीत आज खेतों-चौपालों, नदियों-तरियों, पर्वत-घाटियों और वृक्षों-वनों के बीच सामूहिक स्वरों में प्रतिध्वनित हो रहे हैं।

कानड़ा एवं रावला नृत्य गीत

डॉ. आशा खरे

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर के तत्वावधान में सन् 1983 में आयोजित 'बुन्देली लोक संगीत कार्यक्रम में कान्हड़ा या कानड़ा के वयोवृद्ध कलाकार श्री गंगाराम घनघौरिया एवं इस नृत्य के शीर्षस्थ कलाकार श्री लक्ष्मीनारायण रजक, जिन्हें सन् 1988-89 के लोक प्रदर्शनकारी शिखर सम्मान से विभूषित किया जा चुका है, द्वारा प्रस्तुत कान्हड़ा नृत्य का अति आकर्षक एवं गरिमायुक्त प्रदर्शन देखने का सुअवसर मिला। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के आत्मीय सहयोग से इन वरिष्ठ कलाकारों से साक्षात्कार कर कान्हड़ा नृत्य गीतों का ध्वन्यांकन किया गया तथा कान्हड़ा व रावला लोकनृत्यों से संबंधित विशिष्ट जानकारी प्राप्त हुई, जो प्रस्तुत है।

कान्हड़ा का अर्थ है 'कान्हा'। 'कान्हा' से कानड़ा या कान्हड़ा शब्द निर्मित हुआ है। कान्हड़ा बुन्देलखण्ड की रजक जाति का जातीय लोकनृत्य है। अतः परम्परागत रूप से इस नृत्य के कलाकार रजक जाति के ही होते हैं। इस जाति की यह सामाजिक मान्यता है। 'कान्हा' जैसी वेश-भूषा एवं कान्हड़ा नृत्य गीतों में श्रीकृष्ण विषयक विशद वर्णन निहित होने के कारण, इस नृत्य का नाम 'कान्हड़ा या कानड़ा पड़ा। प्राचीन कान्हड़ा नृत्य शैली में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के विवाह-वर्णन संबंधित गीतों से ही कान्हड़ा नृत्य का आरम्भ होता था।'

कान्हड़ा नृत्य का सीधा संबंध रजक जातीय शादी-विवाह से स्थापित होता है। इसके अतिरिक्त अन्य इतर जातियों जैसे ढीमर, कोरी, कुम्हार, रैदास द्वारा शादी-विवाह पर कान्हड़ा के कलाकारों को विधिवत् आमंत्रित किया जाता है। धोबी समाज में तो विवाह के समय कान्हड़ा नृत्य अनिवार्य रूप से किया जाता था, इसके बिना इस समाज में विवाह सम्पन्न नहीं हो सकता था किंतु वर्तमान में यह प्रथा धूमिल होने लगी है। कान्हड़ा नृत्य ने वर्तमान में मंचीय कला का स्वरूप ग्रहण कर लिया है किंतु ग्रामीण परिवेशीय धोबी समाज में आज भी कान्हड़ा नृत्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

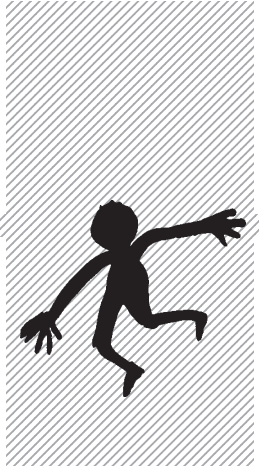

रजक समाज के शादी-विवाह के अवसर पर जब महिलायें मेहर का जल भरने जाती हैं, कान्हड़ा नर्तक उनके आगे-आगे नृत्य करते हुए चलते हैं। स्त्रियाँ जब मेहर का जल कलशों में भरती हैं, तब कानड़ा नर्तक पास में खड़े होकर नाचते गाते हैं-

पनघट पे झोंका खाय रई गौरा
महादेव की नारी

स्त्रियाँ जब मेहर का जल भरकर लौटने लगती हैं तो श्रीकृष्ण संबंधित लोकगीत गाते तथा नाचते हुए कान्हड़ा कलाकार आगे-आगे चलते हैं-

जल भरन जइयो
अरी प्यारी किशन दुलइया

विवाह के अवसर पर बारात प्रस्थान से पूर्व राज या रास फिरती हैं। दूल्हा घोड़े पर बैठकर अपने रिश्ते नातेदारों व इष्टमित्रों के यहाँ जाता है, जहाँ उसका तिलक किया जाता है। इस अवसर पर कान्हड़ा नर्तक विभिन्न बनरे गाते हुये नृत्य करते हैं। जब बारात कन्या पक्ष के यहाँ पहुँचती है, द्वारचार के कान्हड़ा नर्तक शिव-विवाह का वर्णन गाते हुये नृत्य करते हैं। इसके अतिरिक्त चढ़ावा चढ़ने, भाँवर पड़ने तथा बेटी की विदा के समय भी कान्हड़ा नृत्य होता है।

बुन्देलखण्ड में कान्हड़ा के दो रूप हैं, प्रथम प्राचीन दूसरा अर्वाचीन। पहले मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल में कान्हड़ा का प्राचीन रूप ही प्रचलित था। तत्पश्चात् कान्हड़ा का ही एक परिवर्तित रूप आया 'रावला'। शनैः-शनैः इस नृत्य के प्रति लोक का रूझान कम होता गया और कालांतर में रावला नृत्य काल कवलित हो गया तथा पुनः एक अलग पहचान के साथ कान्हड़ा नृत्य प्रचलित तथा स्थापित हुआ जो आज भी प्रचार में है, जिसे कान्हड़ा की आधुनिक या अर्वाचीन शैली कहा जा सकता है।

प्राचीन कान्हड़ा का प्रमुख वाद्य मृदंग था। केकड़िया नामक तंत्री लोकवाद्य जिसे बुन्देलखण्ड में रेकड़िया, रूंडू, सारंगी आदि अनेक संबोधन प्राप्त हैं, का वादन पहले भी कान्हड़ा नर्तक स्वयं करता था तथा आज प्रचलित कान्हड़ा नृत्य में भी नर्तक स्वयं केकड़िया बजाते हुए नृत्य करता तथा गाता है। इस प्रकार 'कान्हड़ा' का कलाकार गायन, वादन तथा नर्तन, तीनों भूमिकाओं का निर्वाह इस नृत्य में करता है। पहले मृदंग तथा केकड़िया के अतिरिक्त कसौरिया (कांसे का थालीनुमा लोकवाद्य) मंजीरा तथा किन्हीं क्षेत्र में टिमकी का वादन भी प्रचलित था।

वर्तमान में प्रचलित कान्हड़ा नृत्य में मृदंग, ढोलक, टिमकी, लोटा, कसौरिया, मंजीरा, खंजड़ी, घुंघरू आदि अनेक लोकवाद्यों का उपयोग किया जाता है।

प्राचीन कान्हड़ा तथा आधुनिक कान्हड़ा की वेशभूषा में भी पर्याप्त अंतर दिखाई देता है। आज की पोशाक तथा साज-सज्जा पहले की अपेक्षा अधिक भव्य तथा कीमती है। पहले कान्हड़ा नर्तक चूड़ीदार पैजामा, उसके ऊपर छतरीनुमा लंबा कुर्ता, सिर पर तूस अथवा तात का फेंटा या साफा धारण करता था। फेंटा में कलगी तथा मोरपंख लगा रहता था। पगड़ी में दो-तीन फुंदना लगे रहते थे, जो नृत्य करते समय नर्तक के माथे पर झूमते रहते थे। इस प्रकार पगड़ी में कलगी तथा मोरपंख और घुँघरू का प्रयोग नर्तक पहिले भी करता था तथा वर्तमान में भी किया जाता है।

आजकल कान्हड़ा नर्तक तूसिया रंग का गोटा किनारी तथा जरी के काम वाला बागा, जिसे बुन्देली में झागा भी कहा जाता है, सीने पर कंदिया, सीने से कमर तक सेली, बाँहों में बाजूबंद, कमर में फेंटा, सिर पर साफा या पगड़ी जिसमें कलात्मक पगड़ी तथा मोरपंख लगा रहता है, धारण करता है। इस वेशभूशा से सुसज्जित होने को 'कान्हा' का वेश धारण करना कहा जाता है। परम्परागत रूप से रजक समाज से परे अन्य कोई व्यक्ति कान्हड़ा की यह वेशभूषा से सज्जित नहीं हो सकता। कान्हड़ा नृत्य की इस वेशभूषा को बाना कहा जाता है।

अब कान्हड़ा की परंपरागत बजौटी समाप्त हो चुकी है। आज के कान्हड़ा नर्तक प्राचीन लय-ताल व चाल सब विस्मृत कर चुके हैं। नई पीढ़ी ने कुछ सीखने का प्रयास ही नहीं किया। मृदंग की पुरानी बजौटी बजाने वाला अब बचा ही नहीं है।

प्राचीन कान्हड़ा नृत्य की पुरानी धुनें जो अपनी निजी विशेषताओं के साथ प्रचलित थी, वे सब भी कालकवलित हो चुकी हैं। पहले कान्हड़ा नृत्य में भजन, कीर्तन व वीरगाथा का गायन होता था। हरदौल (दतिया) राजा अमान सिंह (पन्ना) आदि का यशोगान तथा आल्हा के रोचक प्रसंग आदि भी कान्हड़ा नर्तक गाता था। पहले सुमरनी के पश्चात् श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह का वर्णन अवश्य गाया जाता था। इसी से कान्हड़ा नृत्य आरंभ होता था, तत्पश्चात् शिव-पार्वती, राम-सीता आदि देवी-देवताओं के विवाह से संबंधित भजन गाये जाते थे, जिनमें बारात आगमन से लेकर बेटी की विदा तक का वर्णन निहित होता था। आज भी कान्हड़ा नृत्य में सुमरनी के पश्चात् श्रीकृष्ण-रुक्मिणी, राम-सीता तथा शिव-पार्वती के विवाह से संबंधित लोकगीतों के साथ कान्हड़ा नृत्य होता है किंतु कान्हड़ा गायक अब यशस्वी राजाओं तथा वीर पुरुषों से संबंधित गीतों को नहीं गाते हैं। अति श्रृँगारिक तथा फूहड़ता से भरे लोकगीतों का गायन अधिक होता दिखाई देता है। सागर-दमोह तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित कान्हड़ा नृत्य गीतों में इस प्रकार का हल्कापन नहीं है।

प्राचीन कान्हड़ा नृत्य में रजक समाज की स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं तथा खुलकर नृत्य प्रदर्शन करती थीं। किंतु वर्तमान में रजक समाज द्वारा सामाजिक नियम के अंतर्गत इस नृत्य में महिलाओं की भागीदारी समाप्त कर दी गई है। श्री लक्ष्मीनारायण ने विशेष रूप से यह बताया कि इस प्रकार की पाबन्दी सागर, दमोह तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में ही लागू है। टीकमगढ़ व झाँसी आदि में आज भी धोबी जाति की स्त्रियाँ कान्हड़ा नृत्य में बेझिझक होकर खुलकर नृत्य करती हैं। इन कान्हड़ा नृत्य गीतों में अभद्रता तथा सस्तापन स्पष्ट दिखाई देता है। सागर के श्री लक्ष्मीनारायण रजक ने बड़े गर्व के साथ कहा कि रजक जाति अथवा समाज के नैतिक मूल्यों की सुरक्षा हेतु सागर, दमोह, हटा तथा उसके आसपास के ग्रामीण अंचलों में प्रचलित कान्हड़ा नृत्य व गीतों में सामाजिक मर्यादा, भव्यता और शालीनता दिखाई देती है।

वर्तमान में धोबी समाज के विवाह अनुष्ठान से सम्बद्ध कान्हड़ा नृत्य मंच से जुड़ गया है। जब कोई लोक कला मंच पर आ जाती है तो यह सुनिश्चित है कि उसके परम्परागत प्रदर्शन में परिवर्तन हो ही जाता है। मंचीय प्रदर्शन में सर्वप्रथम कान्हड़ा नर्तक अपने समस्त वादक कलाकारों के साथ मंच पर उपस्थित होकर दर्शकों का अभिवादन करता है। अभिवादन करने के पश्चात् मंच पर केवल कान्हड़ा नर्तक तथा मृदंग वादक ही खड़े रहते हैं, शेष वादक कलाकार अपने-अपने पूर्वनियोजित स्थान में आसीन होकर वाद्य वादन करने लगते हैं। कान्हड़ा नर्तक केकड़िया वादन आरंभ करता है, मृदंग तथा वाद्य भी प्रखर ध्वनि में बजने लगते हैं। मृदंग व ढोलक वादक कुछ तोड़े तथा तिहाई के साथ जोरदार थाप देते हुए थम जाते हैं। इसके साथ समस्त लोकवाद्य वादन रूक जाता है। नर्तक केकड़िया पर सुमरनी की धुन बजाते हुए सुमरनी का गायन आरंभ करता है। वादक कलाकार उसे दोहराते जाते हैं। केकड़िया का स्वतंत्र वादन प्रायः गायन से पूर्व तथा गायन के पश्चात् होता है। गाते समय केकड़िया पर गीत की धुन ही वादित होती है। नृत्य के समय कभी नर्तक केकड़िया बजाता है तथा कभी केवल हाथों में थामे रहता है।

कान्हड़ा नर्तक ठुमके लेकर अत्यंत आकर्षक ढंग से चक्राकार घूमता हुआ फिरकियाँ लेता है। कभी-कभी नर्तक नीचे से ऊपर की ओर धीरे-धीरे उठता हुआ गोलाकार में घूमता है। कभी केकड़िया बजाते हुए मंच में चारों ओर घूमता है तो कभी एक स्थान पर खड़े होकर लयात्मक पद-संचालन अथवा ततकार करता है। जब नर्तक लगातार घूमता है तो उसका घेर-घुमेर बागा छतरी की तरह फैल जाता है। नर्तक के हाथ में केकड़िया वाद्य होने से वह हस्त मुद्रायें नहीं बना पाता है। उसके नृत्य में लयात्मकता सर्वोपरि होती है।

कान्हड़ा के नृत्य गीत गायन में पुनरावृत्ति अधिक होती है जिसे सहगायक अथवा वादक कलाकार नर्तक का गायन समाप्त होने के पूर्व ही दोहराने लगते हैं। इससे गायन में निरंतरता बनी रहती है। इसी क्रम में कान्हड़ा नृत्य विराम पाता है।

श्री लक्ष्मी नारायण रजक द्वारा कान्हड़ा नृत्य में गाया गया 'शिव विवाह प्रसंग' प्रस्तुत है।

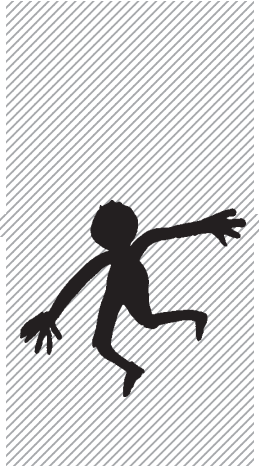

सुमरनी– *अरे सदा भुवानी दाहिनी*
और सन्मुख रैत गनेस।
तीन देव रक्षा करें,
बिरम्हा बिस्नु महेस।
विद्या देवें विंध्यवासिनी, धौलागढ़ वारी
धन देवें,

अन्नपूर्णा माँ धन देवे, सरसुती माँ सुर देवें।
सबरवों मोरी बंदगी, और विप्ररन को पिरनाम,
का छोटे और का बड़े, कें सबरवों सीता राम।
भूल चूक जो हो परे, भूल चूक कहुँ तो परे,
ताखों दइयो बिसार
महज जहाज चढ़ाय कें, कर दो पैले पार।

भजन– *शिव समान दाता नहीं, विपत निबारनहार,*
लज्जा मोरी राखियो, अरे बरधा के असवार।
सदा तुमाई पूजा करें, पूजें चरण हमेस,
आज सभा के बीच में, राखो लाज गनेस।

ठेका आरंभ– *धन धन भोला नाथ हमारे,*
गौरी नंद गजानन।
तीन लोक सब तुमने बसाये,
अपन बसे बीराने में।
जटा जूट को मुकट बिराजे,
गले में मुन्डन की माला।
माथे पै ऊगो सो चन्द्रमा,
कपाल को कर में प्याला।
कौन तीसरे नेत्र में तुमरे,
कहँना से निकरी है ज्वाला।
जी खों देख कें मोखों डर लगरओ,
गरे नांग लिपटो काला।
दीन्हें भोजन भांत भांत के
खुद भांग धतूरा खाने लै।
तीन लोक भोला तुमने बसाये,
अपन बसे बीराने में।
नाम तुमारे हैं मुतके पै,
सबसे उत्तम है बिरम्हा।
ये ही से सोभा है तुमारी,
रच दई तुमने जा दुनियां।
तीन लोक के दाता होकें,
काय बने तुम भिखमंगा।
भोले बब्बा मोये बताओ,
का मिलरओ अलख जगाने में।
तीन लोक भोला तुमने बसाये,
अपन बसे बीराने में।
..... सेर को वस्त्र पुरानो,
बूढ़ो सो बैल सवारी को।
ना जाने का देखी उनने,
बिल्कुल ने गुन, घरवारों ने।
कौना राजा की जा बिटिया,
ब्याही जात भिखारी खों।
धन री तुमाई सेवा कररई,
धन धन गौरा प्यारी कों।
तुमने सुन लई बिआह की लीला
भिखमंगों के गाने में।

शिव बारात आगमन पर स्त्रियाँ गारी गा रही हैं–

सतजतिया सजना आ गये री,
जे बिना बाप के जाये।
चढ़ छतिया सजना आये री,
जे बिना बाप के जाये
.....बाप कुटुंब नईं जिनके,
कौंने नाम धराये इनके,
बिना बाप के जाये री।
आजी दाई माई नइंया जिनके
कौन ने दूध पियाये री।
जे बिना बाप के जाये।
बैन, फुआ, कोऊ न जिनके,
कौंने तेल चढ़ाये।
सिर पै मौर बंधें न जिनके,
गरे नाग लिपटाये।
शिव शंकर ब्याहन आ गये री,

तेंने अच्छे सजन लजाये।
आजे बाजे जुड़े न जिनको
डमरू लै के आ गये री।
शंकर ब्याहन आ गये री
जे बिना बाप के जाये।

धीरे-धीरे इसका प्रचलन कम होता गया और आखिरकार विलुप्त हो गया। तत्पश्चात् कान्हड़ा का वर्तमान में प्रचलित स्वरूप विकसित हुआ। अत: 'रावला' कोई पृथक नृत्य न होकर प्राचीन तथा वर्तमान में प्रचलित कान्हड़ा के बीच की एक कड़ी है जिसे कान्हड़ा का परिवर्तित रूप भी कहा जाता है।

रावला

कान्हड़ा के प्रचीन स्वरूप तथा आधुनिक स्वरूप के बीच की कड़ी है 'रावला' नृत्य। रावला प्राचीन कान्हड़ा का ही एक परिवर्तित रूप है जिसमें पुरुष की वेशभूषा हट गई और उसका स्थान लहँगा-ओढ़नी ने लिया। रावला में नर्तक स्त्री का वेश धारण कर केकड़िया बजाकर गाता तथा नृत्य करता था। उसके साथ एक अन्य पुरुष नर्तक बुन्देली दुल्हिन का श्रृँगार कर नृत्य करता था। कभी-कभी दुल्हिन का वेश रखने वाला नर्तक अति-श्रृँगारिक व फूहड़ भाव-भंगिमाओं को प्रदर्शित करता था। जिससे दर्शक खिलखिलाकर हँस पड़ते थे, इसीलिये इस दुल्हिन के वेशधारी नर्तक को हास्य नर्तकी भी कहा जाता था। इन दोनों के साथ एक पुरुष विदूषक जोकर जैसी अजीबोगरीब वेशभूषा में नाचता था।

कान्हड़ा नर्तक के हाथों में हमेशा केकड़िया वाद्य होने के कारण वह भलीभाँति नृत्य करने में असमर्थ रहता है, संभवत: नृत्यांश अधिक बढ़ाने तथा लोकरंजन की दृष्टि से प्राचीन कान्हड़ा नर्तकों ने रावला नृत्य शैली को जन्म दिया होगा।

पहले रावला में भी महान शूरवीरों की गाथाओं के कुछ रोचक प्रसंग गाये जाते थे। कालांतर में इनका स्थान श्रृँगारिक एक हल्के स्तर के लोकगीतों ने लिया। लोक ने इसे नकार दिया और

रावला

महोबे खां घेरें परो री चौहान।
घेरें परो री, घेरें परो दइया, घेरें परो री चौहान
गढ़ दिल्ली सें चढ़ो पिछौरा,
महोबे तंबू दये तान।
महोबे खां घेरों परौ री चौहान
कहाँ गये आल्हा कां गये ऊदल
कां गये वीर मलखान।
महोबे खां घेरे परो री चौहान
बैठी मल्हना सोच करत है,
कौन बचावे जा आन।
महोबे खां घेरें परो री चौहान
सुमरो सारदा मल्हना रानी,
ऊदल सपन दओ आन।
महोबे खां घेरे परो री चौहान।

यह 'रावला' गीत जिसमें 'आल्हा' का कुछ अंश गाया गया है। सन् 1981 में आकाशवाणी छतरपुर के लोकसंगीत संयोजक एवं प्रसारण अधिकारी स्व. श्री सतीश तिवारी के सहयोग से ध्वन्यांकित किया गया था, जिसका उपयोग अब हो रहा है।

कोरकू जनजाति के मृत्यु गीत

डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य

मध्यप्रदेश के सतपुड़ा अंचल में छिन्दवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, हरदा और पूर्व निमाड़ तथा महाराष्ट्र के अमरावती और मोर्शी जिले में मुण्डा समूह की कोरकू जनजाति का निवास है। इस समूह की हो, मुण्डा, संथाल जनजातियाँ बिहार में निवास करती हैं।

संगीत और नृत्यप्रिय कोरकू जनजाति में मृत्यु भोज एवं सिडोली उत्सव के अवसर पर मृत्युगीत गाने की परम्परा रही है। मृत्यु गीतों को कोरकू बोली में मिमलाव, फुलजगनी, गाथा, दशा या सिडोली सिरिन्ज कहते हैं। गाथा गीतों में मृतक द्वारा किये गए कार्यों का बखान और उनकी प्रिय वस्तुओं को स्मृति चिह्न के रूप में गाया जाता है। दशा गीतों में प्रयुक्त घरेलू वस्तुओं के प्रतीक कई दार्शनिक अर्थ खोलते हैं।

कोरकू ग्राम के किसी प्रतिष्ठित की मृत्यु पर उसकी स्मृति में काष्ठ स्तम्भ (मण्डा) लगाने की परम्परा है। मृत्यु के बाद मण्डा स्थापित किये जाने तक महिलाएँ प्रतिदिन मृत्यु गीत गाती हैं। यहाँ प्रस्तुत इस गीत में पिता के न रहने पर पारिवारिक स्थिति और धन लोलुप पुत्र की स्थिति का चित्रण है-

ए माय डो, ए माय डो।
इयां आबा टुंगान ओलेन, हिंगान बांग डोगे माय मा रे।
ए बेटा, ए बेटा।
आमा आबा सवा मोका धरती टालान,
उकूएन जा बेटा मा रे।
ए माय डो, ए माय डो,

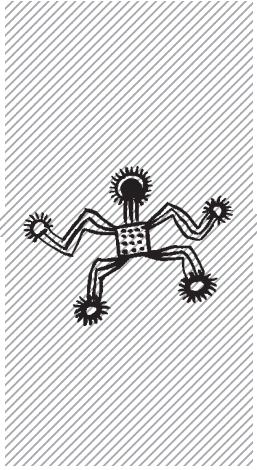

इयां आबा हण्डा गागार, घाले मा डो माय मा रे।
ए बेटा, ए बेटा।
आमा आबा नी हाण्डा गागार,
उरा धराण टाला गाड़ाटिन्ज के बेटा मा रे
ए माय डो, ए माय डो।
इयां आबा नी डोबाकेन, घाले मा डो माय मा रे।
ए बेटा, ए बेटा।
आमा आबा नी डोबाकेन,
खूंटा टालान टोलकेन जा बेटा मार रे।

स्रोत : श्रीमती सीटूबाई कोरकू, ग्राम-टेमलाबाड़ी, हरदा

हे माँ! पिताजी दिखायी नहीं देते, कहाँ गये हैं? हे बेटा! तुम्हारे पिताजी अब इस दुनिया में नहीं है। उनका शरीर जमीन में सवा हाथ नीचे गड़ा है। माँ! पिताजी का धन वाला हण्डा कहाँ है? बेटा! धन वाला हण्डा, घर में खम्भे के पास नीचे जमीन में गड़ा है। माँ! गाय-बैल कहाँ है? बेटा! गाय-बैल पायग्या में खूँटे से बंधे हैं।

कोरकू अपने पितरों को सदा प्रसन्न रखना चाहते हैं, इसीलिए मृत्यु पश्चात् घाट पंगति के दिन उनका आवाहन करते हैं। यह पितरों के प्रति गहन आस्था और सम्मान का प्रतीक है। कोरकू अपने पितरों की आत्माओं को कभी भी अप्रसन्न नहीं होने देते, क्योंकि अप्रसन्न रहने से कोरकू परिवार कभी भी सुखी नहीं रह सकता। यह कोरकुओं की प्रबल अवधारणा है।

नाचोलीटेन हाजे डाई,
नाचोलीटेन हाजे मा रे।
आमा कोन डो आमा किमिन,
जोंदरा घाटो चौका चाउल समाके जा डाई।
आमा कोन डो आमा किमिन,
गूं सोकड़ा मेंढा बकरा समाके जा डाई।

स्रोत-श्रीमती सीटू बाई कोरकू, ग्राम टेमलाबाड़ी, हरदा

हे पिताजी! हँसी-खुशी से आओ, नाचते गाते आओ। तुम्हारे लड़के-बहू ने तुम्हारे लिए ज्वार का घाटा और चावल का भात बनाया है। तुम्हारे लिए गेहूँ की रोटी और बकरे का माँस बनाया है। हे पिताजी! आओ हँसी-खुशी से आओ।

रिपि रिपि डो रिपि कोरा,
रिपि कोराटेन हाजे जा आबा, हाजे मा रे।
रागो बकी डो रिसना बकी,
रिपि कोराटेन हाजे जा आबा, हाजे मा रे।
ऐ बेटा, ऐ बेटा,
इयां साटी लियेन बारा गाड़ी कासा पूंजा,
रेच्या टिन्जके चुफर हाजे, रेच्या टिन्जके चुफर हाजे।

स्रोत-श्रीमती मांगीबाई कोरकू, ग्राम आमाखाल, हरदा

हे पिताजी! रास्ता साफ है, इस रास्ते से आप आना। रोते हुए या गुस्से से मत आना, आप हँसी-खुशी से आना। हे बेटा! मेरी छाती पर बारह गाड़ी मिट्टी और कूड़ा-करकट पड़ा है, मैं कैसे आऊँ। मेरी छाती पर बारह गाड़ी कांटे पड़े हैं, मैं कैसे आऊँ।

कोरकू जनजाति की अवधारणा है कि शरीर छोड़कर गयी आत्मा को जब तक दूसरा शरीर नहीं मिलता, तब तक वह किसी वृक्ष में निवास करती है। आत्मा को शरीर मिले और उनकी सदैव कृपा बनी रहे, इसीलिए कोरकू समय-समय पर वृक्षों की पूजा करते हैं और होम-धूप देकर उन्हें प्रसन्न करते हैं।

बागी रे रे ना डो, बागी रे रे ना।
माय देवतराय गांव मेरान,
गाड़ा घाटोन डो, बागी रे रे ना।
जाम्बू सिन्जेन डो इटान,
माय इयां रावा रागो उरा आरूकेन।

स्रोत-श्रीमती सोनाय कोरकू, ग्राम-टेमलाबाड़ी, हरदा

मेरी माँ कितनी निष्ठुर है, जो मुझे अकेला छोड़कर चली गयी। मेरी माँ मुझसे नाराज हो गयी है, इसीलिए वह डेढ़तलाई गाँव के पास नदी किनारे जामुन वृक्ष पर घर बनाकर रह रही है।

पन्तरी कोरान डो, झांझरी बोरे मेलानकेन।
सेने डो सोनाय, सेने डो सोनाय।

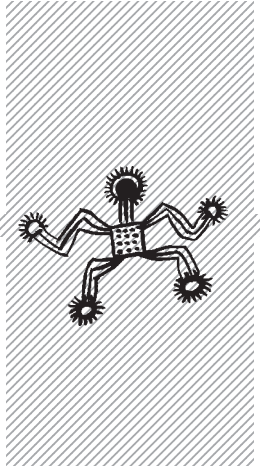

आमा डो कनकार के झारी नी टेम्बियाटेन डा नी आनुए।
आमा डो कनकार के, सोकड़ा नी दाड़ी डो इडीये।

स्रोत–श्रीमती केण्डई कोरकू, ग्राम–टेमलाबाड़ी,हरदा

हे सोनाय! मेरी माँ दुर्गम रास्ते से गाँव के बाहर आकर बेर वृक्ष के नीचे बैठी है। हे सोनाय जा! तेरी सास को खाने के लिए दाल रोटी और पीने के लिए पानी दे आ। मेरी माँ बहुत भूखी प्यासी है। हे सोनाय! जल्दी जा। कहीं ऐसा न हो कि माँ भूखी-प्यासी ही वापिस चली जाये।

कोरकू मृत्यु गीत की स्वरलिपि

ध़ – सा ए ऽ मा	सा रे रेग य डो ऽऽ	रे रे सा ए ऽ मा	सा सा सा य डो ऽ
ध़ सा रे इ यां आ	रे सा सा ऽ बा ऽ	ध़ सा रे टुं गान ओ	रे सा सा ऽ ले न
ध़ सा रे हिं गान बां	रे रे रे ग डो गे	रे रे सा मा य मा	सा सा सा ऽ रे ऽ
ध़ सा रे ए ऽ बे	रे रे रे ऽ टा ए	ग ग रे ऽ बे ऽ	रे सा सा ऽ टा ऽ
ध़ सा रे आ मा आ	रे सा सा ऽ बा ऽ	ध़ सा रे स वा मो	रे सा सा ऽ का ऽ
ध़ सा रे धर ती टा	रे सा सा ऽ ला न	ध़ सा रे उ कू ए	रे सा सा न जा ऽ
रे रे रे बे टा मा	रे सा सा ऽ रे ऽ	सा सा सा ऽ ऽ ऽ	सा सा सा ऽ ऽ ऽ

टीप : कोरकू मृत्यु गीत, बिना किसी ताल-वाद्य के समवेत स्वरों में कोरकू महिलाएँ गाती हैं। प्रस्तुत गीत में ध़ सा रे ग स्वर समूह, राग भूपाली की छाया को दर्शाता है।

भारतीय प्राचीन उकेरित आभूषण

डॉ. कमला गर्ग / डॉ. शिव धमेजा

प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओजस्वी एवं प्रखर शिल्प शृँखला में तत्कालीन समाज में प्रचलित उत्कीर्णित आभूषणों की नयनाभिराम छवि प्रस्तुत हुई है। इन सौन्दर्यमयी प्रतिमाओं के गढ़न में उकेरित आभूषणों की प्रचुरता यह प्रमाणित करने में सक्षम है कि सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव स्वयं को भाँति-भाँति के अलंकरणों द्वारा सज्जित करता रहा है। प्राचीन काल से अब तक आभूषणों के विकास का एक दीर्घकालीन इतिहास है। पाँच हजार वर्ष पूर्व की सैंन्धव सभ्यता के शिल्पगत साक्ष्यों में उकेरित आभूषण अपने आकार, निर्माण शैली तथा चित्ताकर्षक आभा में अद्वितीय हैं।

शिल्पांकित आभूषणों के गढ़न में लोकधर्म एवं लोकविश्वास की कलात्मक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इनमें अलंकरण व रूपसज्जा की दृष्टि से क्रमिक विकास हुआ है। प्रारम्भिक चरण में आकार भारी व अत्यधिक सज्जायुक्त होते थे, शनैः-शनैः इनके आकार व सज्जा में परिष्कृत कोमलता दृष्टिगत होती है। उत्कीर्णन कला के रूप में तत्कालीन भारतीय समाज ही प्रस्तर में लिपिबद्ध सा हो गया है। फलतः प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विविध पक्षों के अध्ययन के प्रसंग में चित्रांकित व उकेरित अलंकरणों की कला अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है।

आभूषणों पर रंगों व रेखाओं के माध्यम से किया गया चित्रण अथवा उकेरन काल, धर्म, समाज व मान्यताओं का प्रतिनिधि होता है तथा अंकित आकृतियाँ व खुदाई की उत्कृष्ट कलाकारी परम्परा को प्रस्तुत करती है। इन चित्रण व उकेरनयुक्त आभूषणों की परिपाटी प्राचीन काल से अधुना अविरल प्रसारित हो रही है।

शिल्पगत साक्ष्यों से उपलब्ध कलात्मक अवशेष प्राचीन भारतीय कला के उज्जवल पक्ष का प्रकाशन करते हैं तथा आभूषणों के

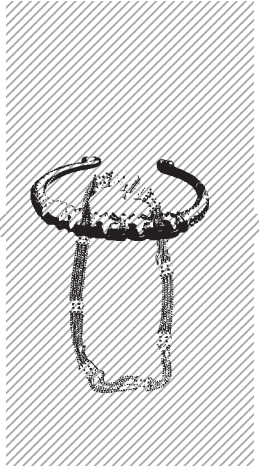

अध्ययन के प्रसंग में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अत: व्यापक स्तर पर किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर शिल्पगत साक्ष्यों में उपलब्ध आभूषण व उन पर प्राप्त उकेरित चित्रों का विवरण उल्लेखित है।

शिरोभूषण

शिरोभूषणों के प्रारम्भिक उदाहरण संसार की प्राचीन सैन्धव संस्कृति के प्रसंग में प्राप्त होते हैं। सुप्रसिद्ध त्रिफुलिया अलंकरण से युक्त दुशाला ओढ़ी हुई पुरुष प्रतिमा में फीते के समान उकेरन किया केशबन्ध दर्शनीय है।

मौर्ययुग की दीदरगंज यक्षी एवं बेसनगर से प्राप्त यक्षी प्रतिमाओं में स्त्रियों में प्रचलित शिरोभूषणों का अंकन प्राप्त होता है। बेसनगर यक्षी का सिर रत्नजड़ित वस्त्र से ढँका है। इस आभूषण की समानता अधुना राजस्थान में प्रचलित बोल या बोर से व्यक्त की जा सकती है। भरहुत की प्रतिमाओं के शिरोवेष्टन अलंकृत महीन वस्त्र से निर्मित प्रतीत होते हैं। मथुरा कला केन्द्र में दो शाल भंजिकाओं को उकेरित व अलंकृत पट्टी पहने हुए दर्शाया गया है। साँची स्तूप की पुरुषाकृतियों में अनेक प्रकार की मौलि के अंकन प्राप्त होते हैं। इस मौलि में सामने का अलंकरण शंख अथवा तुरही के आकार का है। मथुरा शिल्प की मूर्तियों में अलंकृत चपटे धातुफलकों का बहुतायत से प्रयोग दिखाई देता है। पूर्ववर्ती साँची की परम्परा में सुन्दर रीति से बनी पगड़ियाँ, धातुनिर्मित शीर्षपट्टों एवं रत्नलड़ियों से निर्मित हैं, इन्हें अर्धमुकुट कहा जाता है। एक आकृति में सिर पर अलंकृत टोपी जैसी शिरोभूषा है। गुप्तयुगीन अलंकृत शिरोबन्ध के उदाहरण कौशाम्बी से प्राप्त हुए हैं। एक सुन्दर स्त्री के मस्तक पर महीन पच्चीकारी व रत्न सज्जा से अलंकृत भव्य केशबन्ध अंकित हैं।

कौशाम्बी मूर्तिशल्प की कुछ पुरुषाकृतियों में खुले मकर के मुखों का अलंकरण युक्त शिरोभूषण दिखाई देता है। मकरिकाभिप्राय भारतीय कलाकारों को विशेष प्रिय था। यही कारण है कि कला एवं आभूषण दोनों में इस अभिप्राय के नानाविध अंकन प्राप्त होते है। कौशाम्बी संग्रहालय में संग्रहीत लघु पुरुष मस्तक पर आयताकार मुकुट का अंकन प्राप्त होता है, मध्य में चैत्य गवाक्ष सदृश अलंकरण है। इसके भीतर सिंह मुख से उद्गत होती मुक्तामालाओं का अभिप्राय बना है। मुकुट के किनारे पर भी दोनों ओर छोटे पशु शीर्ष बने हैं। सारनाथ से प्राप्त शिरोवेष्टेन में शीर्ष पट्ट को कमलपुष्प के आधे भाग में अलंकृत किया गया है। यहाँ की लोकनाथ प्रतिमा, जो राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में संग्रहीत है, में ललाट के चतुर्दिक मणिजटित बछी अंकित है, इसके मध्य में चूड़ामणि मकरिकाभिप्राय बना है। इसके ऊपर लम्बा अर्द्धवृत्त संलग्न है, जिसमें ध्यानी बुद्ध अंकित हैं। शिल्पांकित साक्ष्य तथा साहित्यिक विवरण विस्तृत रूप से शिरोवेष्टेन के आदिमस्वरूप की अपेक्षा सुरुचिपूर्ण एवं सरलीकृत स्वरूप के क्रमिक विकास को इंगित करते हैं।

कर्णाभूषण

शिरोवेष्टन की भाँति कर्णाभूषण में भी सभ्यता के प्रथम चरण से अधुना बीसवीं शती तक अनेक परिवर्तन दर्शनीय हैं। पाषाणयुगीन उत्खनन से प्राप्त कर्णाभूषण व सैन्धव संस्कृति से गुप्तकालीन मूर्तियों में कुण्डलों के अंकन द्वारा इस कथन की पुष्टि हो जाती है। इसी परम्परा का निर्वाह आज भी हो रहा है।

आद्यैतिहासिक काल में हड़प्पा व मोहनजोदड़ो नामक सिन्धु घाटी के अवशेषों से प्राप्त ताँबा व कांस्य धातु के महीन तार निर्मित छल्ले, कानों में धारण की गई बाली अथवा कुण्डली की भाँति प्रतीत होते हैं।

मौर्ययुग की लोककला के अन्तर्गत निर्मित यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाएँ उस युग के आदर्श वस्त्राभूषणों की मनोहर झाँकी प्रस्तुत करती हैं। शुंगयुगीन भरहुत स्तूप के शिल्प में भी सभी प्रमुख प्रतिमाओं में गरेरीनुमा कर्णाभूषण का अंकन हुआ है, जिसका चौकोर भाग राजप्रासाद का प्रतीक है, जिसे सर्पाकृति के अभिप्राय से विभूषित किया गया है।

चंदा यक्षी, सिरिमा देवता आदि प्रतिमाओं के कर्णाभूषणों में अत्यन्त महीन अलंकरण कार्य दर्शनीय है। चौकोर भाग पर चतुस्त्रज या षट्स्त्रज पुष्प का अंकन हुआ है। गरेरीनुमा भाग पर महीन रेखाएँ व बिन्दुओं के क्रमबद्ध अभिप्राय उकेरित हैं।

भरहुत शिल्पाकृतियों के आभूषणों में अंकित रवे की

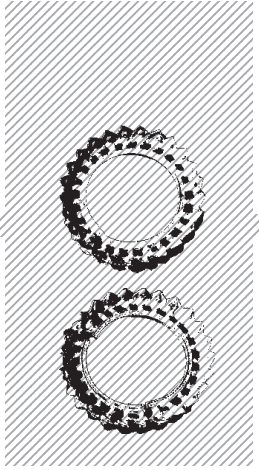

सज्जा व महीन तार द्वारा नक्काशी की परम्परा आज भी आदिम जनजातियों में अपरिहार्यरूपेण प्राप्त होती है। साँची से प्राप्त कतिपय उदाहरणों में घुमावदार कर्णाभूषण पर दुहरी तिर्यक रेखाएँ व बिन्दु दर्शनीय हैं। सारनाथ में अवलोकितेश्वर प्रतिमा को चौकोर कर्णाभूषण धारण किए हुए दिखाया गया है। इलाहाबाद संग्रहालय में संग्रहीत स्त्री प्रतिमा में त्रिफुलिया अलंकरण से युक्त मणिकुण्डल दिखाई देता है।

कालिदास के ग्रंथों में भी आभूषणों के प्रसंग में तत्प्रचलित तांटक चक्र का उल्लेख प्राप्त होता है। कुमारसम्भव में इसकी तुलना रथ के पहियों से की गई है तथा इसका बहुलांकन शिल्पगत साक्ष्यों में भी प्राप्त होता है।

ग्रीवाभूषण

प्राचीन सभ्यता से प्राप्त कलात्मक अवशेषों में अंकित ग्रीवाभूषणों का अंकन प्रत्येक विधा द्वारा निर्मित मूर्तियों में दर्शनीय है। ग्रीवा में धारणीय आभूषणों की परिपाटी पुरा काल से प्रारम्भ व सैन्धव सभ्यता से पल्लवित हुई है। सिन्धु घाटी के कलात्मक अवशेषों में कुछ हारों के सूत्रों पर पुष्पांकित अभिप्राय बने प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के अधिकतम छह लड़ियों वाले हार का अंकन एक मृण्मय स्त्री प्रतिमा में हुआ है।

भरहुत शिल्प को यदि शुंगयुगीन वस्त्राभूषणों की प्रदर्शनी कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। दन्तकर्म व काष्ठशिल्प से प्राप्त महीन पच्चीकारी व नक्काशी का उपयोग प्रत्येक आभूषण की सज्जा में किया गया है। भरहुत की चन्दा यक्षी के ग्रीवा में फलाकार में सात लड़ियाँ है तथा मध्य में सुप्रसिद्ध श्रीवत्स तथा नन्दिपद चिह्न हैं। दोनों ओर अंकुश के चिन्ह वाला फलक है। यह प्रतिमा भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहीत है। भरहुत शिल्प की स्त्री प्रतिमाओं में बौद्धों के सुप्रसिद्ध त्रिरत्न प्रतीक को लटकने में प्रयुक्त किया गया है व इसकी निकटस्थ समानता आधुनिक युगीन ईसाई धर्म के क्रॉस से दर्शायी जा सकती है। ये प्रतीक चिन्ह भी अलंकृत व रत्नजटित होते थे। एक अन्य तिकोने हार में आयताकार बन्धों पर गुणांक अभिप्राय, रत्नधारियाँ, चतु:स्त्रज पुष्प आदि की सज्जा रहती थी।

ग्रैवेयक नामक हार में अलंकरण अभिप्रायों में पूर्ण विकसित कमल-पुष्प, अर्धविकसित कमल, पत्ती सदृश ज्यामितीय अभिप्राय, गुणांक चिह्न, बिन्दु के घेरे, रत्नपट्टिका आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष उदाहरण भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहीत, भरहुत से प्राप्त सुप्रवास यक्ष की प्रतिमा में देखा जा सकता हैं। साँची स्तूप संख्या एक के उत्तरी स्तम्भ पर बनी द्वारपाल प्रतिमा में अंकित तिकोने हार पुष्पांकित व रत्नजटित बन्ध द्वारा सुसज्जित हैं।

मथुरा से ज्ञात साक्ष्यों के अन्तर्गत स्कन्ध प्रान्त पर चौड़े हार जिसकी लड़ियाँ तिर्यक दशा में हैं, प्राप्त हैं, इन पर कुण्डली के समान लम्बी धारियाँ अंकित हैं। इसका उदाहरण मथुरा संग्रहालय में ऋष्यशृंग प्रतिमा में दर्शनीय है। बोधिसत्व प्रतिमाओं में अर्द्धचन्द्राकृति हार के मध्य में और स्कन्ध पर मुचकुन्द पुष्प आदि से अंकित बन्ध सज्जित हैं। यह प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में संग्रहीत है। मथुरा के ही अन्य प्रतिमा उदाहरणों में कण्ठों के मध्य में आयताकार बन्ध संलग्न रहता है, जिसपर चतु:स्त्रज पुष्पांकन प्राप्त होता है। इस प्रकार के हार मथुरा संग्रहालय की स्त्री प्रतिमाओं में देखे जा सकते हैं। अंगविज्जा नामक जैन धर्म के प्राकृत भाषा में विरचित ग्रन्थ में कुषाणयुगीन प्रचलित आभूषणों की दीर्घ सूची प्राप्त होती है। इसमें अष्टमंगलक माला का भी उल्लेख हुआ है। जैन धर्म में इन मांगलिक चिह्नों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह मांगलिक चिह्न हैं- मीन, मिथुन, देवविमानगृह, श्रीवत्स, वर्द्धमान, त्रिरत्न, पुष्पदाम, इन्द्रयष्टि या वैयजन्ती व पूर्णघट। साँची के गुप्तयुगीन महत्त्वपूर्ण उदाहरणों में सूक्ष्मालंकरण के सुन्दर ग्रीवाभूषणों के विषय में पदमपाणि व वज्रपाणि की प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। ये प्रतिमाएँ सारनाथ संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

इस प्रकार शिल्पगत साक्ष्यों में उत्कीर्णित ग्रीवाभूषणों की नयनाभिराम छवि हमारी राष्ट्रीय धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

हस्ताभूषण

प्रागैतिहासिक युग से आभूषण धारण करने की परम्परा चली आ रही हैं। भारत की प्राचीनतम ज्ञात सैन्धव संस्कृति में स्त्री-पुरुष दोनों द्वारा हस्ताभूषण प्रयोग करने के प्रमाण उपलब्ध

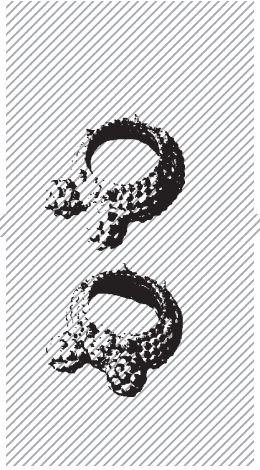

हैं। वैदिक युग में हाथों के आभूषण विशिष्ट मान्यताओं व प्रतीकों के रूप में धारण किए जाते थे। इनमें प्रतिसर, हिरण्यबाहु, खादि, वल या वलय अधिक प्रचलित है।

मथुरा की कुषाणयुगीन स्त्री प्रतिमाओं में विविध अलंकरण युक्त भुजबन्ध दिखाई देते हैं। जिन्हें भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता व मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत यक्षी प्रतिमाओं में देखा जा सकता है।

मौर्य

शुंग युग में विदिशा से प्राप्त यक्ष मूर्ति की भुजाओं पर चार धारियों वाला अंगद अंकित है। इस प्रकार के अंगद सामने की ओर पर्याप्त अलंकृत होते थे, जिनमें तिर्यक रेखाओं की प्रधानता थी।

भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में संग्रहीत भरहुत शिल्प कला उदाहरण वृक्षक देवता को धातु निर्मित चौकोर ताबीज सदृश अलंकरण से युक्त भुजबन्ध पहने दर्शाया गया है। इस पर स्वस्तिक चिन्ह उकेरित हैं। सिरिमा देवता की आकृति में अंकित भुजदण्ड में नीचे की ओर अलंकृत पतली पट्टी दर्शनीय है। इसके ऊपर चौड़ी पत्ती वाले पुष्प का अंकन किया गया है। यह रेखीय अभिप्रायों द्वारा सज्जित है। मायादेवी के स्वप्न वाले पद्मक में माया देवी भी इस प्रकार का भारी भुजबन्ध धारण किए हुए प्रदर्शित है। भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में संग्रहीत सुचिलोम यक्ष की मूर्ति में तीन भारी कड़े धातुनिर्मित हैं। तीनों पर रेखीय अभिप्राय वे ज्यामितिक अलंकरण बने हैं। ये कोण, गुणांक चिन्ह, खड़ी एवं पड़ी धारियों आदि में हैं। कड़ों पर रत्नजटित तिर्यक रेखाएँ व विपरीत दिशाओं में बाणग्र अभिप्राय सदृश की गई है।

साँची की कला में सर्वाधिक अलंकृत आभूषण उत्तरी तोरण के पश्चिमी स्तम्भ के द्वारपाल द्वारा धारण किए हुए दिखाए गए है। इसके हस्ताभूषण के दोनों ओर तिर्यक रेखाओं के अन्दर महीन रत्न लगे हैं। मध्यवर्ती कड़े के ऊपर पुष्पांकित बन्ध संलग्न हैं। सम्पूर्ण कड़े पर गुँथी हुई श्रेणी के समान अभिप्राय बना है, अंतिम कड़े पर गोल रत्नों की तीन पंक्तियाँ हैं, ऊपर पुष्पांकित बन्ध है। कुषाणयुगीन शिल्पगत अवशेषों में गजलक्ष्मी का भुजबन्ध अत्यन्त सज्जित है। सम्पूर्ण घेरे में लम्बी पुष्प पंखुड़ियाँ बनी हैं। यह उल्लेखनीय है कि गान्धार कलाकृतियों में भी इसी प्रकार के बहुलंकृत भुजबन्ध दिखाई देते हैं।

इनके अतिरिक्त साहित्यिक विवरण के अन्तर्गत चतुर्भाणी संग्रह, कालिदास ग्रन्थ, दिव्यावदान, अश्वघोष ग्रन्थ, अंगविज्जा व कौशाम्बी, साँची तथा सारनाथ के शिल्पगत साक्ष्यों में अनेकानेक प्रकार के हस्ताभूषणों व भुजबन्धों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं।

कटिप्रदेश

आभूषणों के उद्भव व विकास में शरीर संरचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से मानव सौन्दर्यवर्द्धन की भावना के साथ सरलता से अंगों पर धारण किए जा सकने वाले आभूषणों का प्रयोग करता आ रहा है। आभूषण प्रियता की इसी सहज प्रवृत्ति ने अन्य अवयवों की भाँति कटिबन्धों व पदकों में धारित आभूषणों को अन्य आभूषणों के समकक्ष लाने का प्रयास किया है।

सैन्धव संस्कृति से ज्ञात बहुसंख्यक मृण्मय स्त्री मूर्तियों में एक से चार लड़ियों तक की मेखला भी अंकित मिलती है। कुछ मूर्तियों में धातु की पट्टियों में वृत्ताकार या त्रिकोणाकृति पदकों से बँधे कटिबन्ध दर्शनीय हैं। इनमें पदकों की संख्या तीन तक भी मिलती है। आर्यों के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद में अनेक शब्द प्राप्त होते हैं, जिनका अर्थ करधनी से लगाया जा सकता है– न्योचनी, वरुणपाशा, हिरण्यवर्त्तनी, रशना, निनाह, मेखला आदि।

मौर्ययुगीन मूर्तिशिल्प की मेखला में लगे पदकों पर पुष्पाभिप्राय व रत्नपंक्तियाँ अंकित हैं जबकि शुंगयुगीन मूर्तिशिल्प के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध सिरिमा देवता, सात लड़ियों वाली धातुनिर्मित पदकों सहित मेखला धारण किए हुए हैं। ये पदक षट्स्त्रज पुष्पों से सज्जित हैं व परस्पर काटती हुई रेखाओं का जाल भी इन पर दिखाई देता है। यह मूर्ति कलकत्ता में संग्रहीत है।

कुषाणयुगीन बहुसंख्यक वैदिक स्तम्भों पर भी विभिन्न

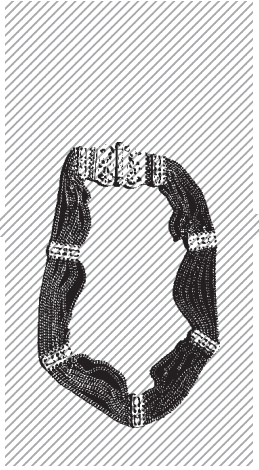

मेखलाओं का अंकन मूर्तियों में हुआ है। ये मेखलाएँ आकार व उकेरन की दृष्टि से शुंगयुगीन मेखलाओं से सर्वथा अलग हैं। इनकी निकटस्थ समानता दीदारगंज यक्षी में अंकित मेखला से दर्शायी जा सकती है। कुषाणयुगीन कमरबन्ध प्रायः अलंकृत, रत्नजटित एवम् धातुनिर्मित बन्ध से संलग्न रहते थे। कुछ मेखलाओं के वृत्ताकार पदक में विकसित पुष्प का अभिप्राय बना है। इनके अतिरिक्त महीन तिर्यक रेखाओं का जाल, उत्पल, मुचकुन्द आदि पुष्पाभिप्रायों का अंकन भी प्रचलित था। इसी प्रकार का उदाहरण लखनऊ राजकीय संग्रहालय में संरक्षित शालभंजिका की आकृति में प्रदर्शित है।

कौशाम्बी कलाकेन्द्र से उपलब्ध साक्ष्यों से मेखलाओं के विशिष्ट प्रकार व अभिप्राय दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ मकरमुखों के अभिप्रायों से संलग्न मेखलाओं का प्रचलन अधिकांश दिखाई पड़ता है। एक खण्डित स्त्री धड़ में बेलनाकार मणियों तथा विभाजक मणियों की तीन लड़ियाँ मकरमुख से उद्गत होती दर्शायी गई हैं। मकरमुखों का पृष्ठभाग एक आयताकार व धातुनिर्मित फलक में संलग्न है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में संग्रहीत विष्णु प्रतिमा में गोलाई में उभरे कटिबन्ध पर तिर्यक रेखाओं के अभिप्राय बने हैं व मौलसिरी पुष्प का बन्ध लगा है।

सारनाथ कला केन्द्र से प्राप्त शिल्पगत साक्ष्यों में लोकनाथ की एक प्रतिमा बहुलंकृत रत्नजड़ित कटिबन्ध अंकित है। इसमें लम्बी चतुष्कोण व पुष्पाकृति मणियाँ क्रमिक रूप में लगी हैं। शेष भाग पर लतावल्लरियाँ बनी हैं।

साँची कला केन्द्र से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमा में अंकित भव्य कटिबन्ध अन्य शिल्पगत साक्ष्यों में अप्राप्य है। सर्वप्रथम कटि भाग पर चिपकी पट्टी पर लतावल्लरियों का अंकन, मध्य भाग पर लतावल्लरियाँ, जिसमें बन्ध सदृश आभूषण संलग्न है। इससे लटकता हुआ भाग है जिसपर चैत्य गवाक्ष व चन्द्रसाल अभिप्राय बना है। चैत्य गवाक्ष के ऊपरी भाग के फलक पर कीर्तिमुख अभिप्राय व सबसे अन्त में पुनः पुष्पाभिप्रायों का अंकन है।

इनके साथ साहित्यिक साक्ष्यों में विविध प्रकार की करधनी के नामोल्लेख मिलते हैं यथा प्रचलमेखला, शिंचीगुण, शिंजनमेखला, कांचीगुण, शिमणिरश्ना, मेखलामध्यमणि, रश्ना आदि प्राप्त हुए हैं। निश्चयतः तत्युगीन समाज में इनका व्यापक स्तर पर प्रचलन होगा।

चरणालंकार

भारतीय सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में चरणाभूषणों की प्राचीनता सैन्धव संस्कृति तक ले जायी जा सकती है। बहुसंख्यक मृण्मय मूर्तियों में नकली सहश सतह वाले कड़ों का अंकन प्राप्त होता है। वैदिक संस्कृति में पैरों में खादि, पडवीश, जिगंमक, पालिगाद, किंकणी व उद्घोटन आदि आभूषण धारण करने का उल्लेख हुआ है। सुप्रसिद्ध दीदारगंज यक्षी ने पदाभूषणों में अलंकृत कड़े धारण किए हुए हैं। इन पर लघुमुक्ताओं की तिर्यक पंक्तियों का अभिप्राय व मुख भाग पर भिन्न अलंकरण हुआ है इसी प्रकार के कड़े अधुनापि उत्तर भारत, बिहार के ग्रामीण समाज में प्रचलित हैं। वहाँ इन्हें झाँझ नाम से जाना जाता है।

फाग साहित्य

लोकेन्द्र सिंह नागर

फाग साहित्य का नाम लेते ही मन बसन्त और होली के उन्माद में सराबोर हो जाता है। भाषा का रूप बुन्देली निखर-निखर उठता है अपने शृँगार और सभी नवरसों में! बुन्देली भाषा और संस्कृति लगता है कि सदियों पुरानी अपनी धरोहर को सँवारने में लगी है। बुन्देली भाषा का अर्थ बुन्देलों द्वारा बोली जाने वाली बोली से नहीं लगाना चाहिये। बुन्देलों ने तो स्वयं इस क्षेत्र में आकर इसे सीखा है। हम जब इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में जब दिल्ली की गद्दी पर पृथ्वीराज चौहान तृतीय आसीन था, जिसे पिथौरा राय भी कहते हैं, इसके और महोबा के परमारि देव चन्देल के बीच कई युद्ध हुये हैं। महोबा के चन्देल के यहाँ बड़े-बड़े योद्धा और सूरमा थे जिनमें आल्हा-ऊदल एवं मलखान-सुलखान प्रमुख थे। इन लोगों ने बावन लड़ाईयाँ लड़ी हैं जो सफल रही हैं। दिल्ली पत को भी नीचा देखना पड़ा। उन्हीं आल्हा-ऊदल के दो भानजे थे जगनिक और सियानन राय। उनमें से जगनिक ने आल्हा के नाम पर महाकाव्य की रचना की है। इसका मूल अंक तो देखने को नहीं मिला लेकिन इलियट डाउसन ने अपने कार्य काल में इसका संकलन करवाया था। यही संकलन मान्यता प्राप्त है। आल्हा वीर रस का काव्य है। तब से लेकर ईसुरी के काल तक कोई दूसरा बुन्देली का कवि नहीं हुआ। हुआ होगा तो ज्ञात नहीं। लेकिन ईसुरी ने जो लिखा, जन-जन तक पहुँचाया, वे साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक को देखते ही मन प्रसन्न हो गया। फाग के रंगों से सराबोर आवरण पृष्ठ अति सुन्दर बन पड़ा है। जब कलेवर में झाँक कर देखा तो एक चौपाई स्मरण हो आई- 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच तत्व यह रचित शरीरा'। फाग साहित्य में पाँच विद्वानों द्वारा संकलन और अनुवाद प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम प्रसून स्वरूप पं. श्री महेश कुमार जी 'मधुकर' दतिया का है। मधुकर जी सुनाम ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ होने के साथ-साथ कवि हैं साहित्यकार हैं, उदार हैं। सत्य के हामी।

मधुकर जी ने पृष्ठ पन्द्रह से लेकर पृष्ठ छप्पन तक फागों को विस्तार दिया है। जिन लोगों से सुना उनका नाम लिखा है। वे स्वयं

गाते हैं। अस्तु गायकी का प्रभाव परिलक्षित होता है। गाने में मात्राओं का कम हो जाना आलाप में बढ़ जाना स्वाभाविक है। पाठान्तर होना- दुबारा फिर उसी को उद्धृत करने जैसी चूकें हो जाती हैं, वे चाहते तो किसी चौकड़िया को स्वर देकर किसी राग और ताल में बाँध सकते थे। ईसुरी की चौकड़िया सहज ही 'दादरा' में बँधी रहती है। मधुकर जी निश्चय ही अनेक साधुवादों के योग्य हैं, उनकी क्षमता है।

द्वितीय प्रसून के रूप में हम पढ़ते हैं। डॉ. ओमप्रकाश जी चौबे को। इनके प्रयास की झलक हमें पृष्ठ उनसठ से लेकर दो सौ आठ तक देखने को मिलती है। बुन्देली लोक साहित्य के नाम पर अभी हम ईसुरी, गंगाधर आदि के बीच ही कुलान्चे लगा रहे थे। डॉ. चौबे साहब ने हमें नये लोक साहित्यकारों से परिचय कराया। फाग को उसके श्रृँगार प्रधान रस से बाहर निकाला है। फागों के साथ-साथ फाग को विभिन्न रसों-विभिन्न वर्णनों से सम्माना है। डॉ. चौबे जी ने 'अटका' फाग का प्रयोग किया है जो गुह्य ज्ञान में आता है। हमारे लोक में इसका बड़ा प्रचलन था। पंचायतें अटकों के माध्यम से ही सुलझती थीं। डॉ. चौबे साहब का श्रम अकथनीय है। बुन्देली भाषा को सुदृढ़ करने वाली फागें हैं सम्मान बढ़ाने वाली भी। पाठान्तर गायकी दोष हो जाना स्वाभाविक है, जो महत्त्वहीन हैं। डॉ. चौबे साहब को साधुवाद।

तृतीय प्रसून स्वरूप मुझे 'बघेली फाग' के दर्शन होते हैं। इसके संकलक श्री सन्तोष कुमार जी तिवारी हैं तथा अनुवादक श्री गोमती प्रसाद जी विकल हैं। विकल साहब की फागें पृष्ठ दो सौ ग्यारह से लेकर तीन सौ छियालीस तक दी गई हैं। इनकी फाग यात्रा भगवान श्री राम की जनकपुर यात्रा से श्रीगणेश पाती है। जहाँ जानकी जी से उनकी भेंट होने वाली है। इन्होंने फागों को नाम दिये हैं- दहका, लेजम, डग्गा, बुन्देली बैसवारा, नारदी, बेलवरिया आदि। तालों में- तीन ताल- चौताल आदि। निश्चय ही विकल जी का श्रम श्रेष्ठ है, उत्कृष्ट है। अनुवाद जैसे दुरूह कार्य को परिणाम देना बहुत कठिन है। लेखक की भावना को यथा स्थान बनाये रखना कठिन है, बघेली का प्रभाव सुन्दर है। इनकी एक फाग जिसके बोल हैं- श्याम बने मधुबानियाँ, ऊधो श्याम बने मधुबानियाँ। सूरदास की छाप लगी है, लिखा है कि वा दिन की सुध भूल गयी है, गो खिलावै कमियों, इससे यह बोध होता है कि गोपी और राधा के संग श्याम का बाल स्वरूप ही स्थापित है। श्री तिवारी और श्री गोमती प्रसाद विकल साहब को कोटिश: साधुवाद।

चतुर्थ प्रसून के रूप में आती है 'मालवी फाग' प्रस्तुत कर्ता हैं श्रीमती कृष्णा वर्मा जी जिन्होंने एक मिथक तोड़ा है। श्रीमती वर्मा जी को पढ़कर लगा कि फाग जो अभी तक मात्र पुरुष प्रधानता से लिपटी चली आ रही थी, उससे हटकर भी कुछ है इस सोच को चीरकर नया मार्ग प्रशस्त किया है श्रीमती वर्मा जी ने। मालवा का तो नाम सुनते ही हृदय गद्-गद् हो जाता है। मालवा की सौंधी गन्ध मस्त कर देती है मन को। वहाँ की शालीनता, अपनत्व, पहनावा सभी तो सुहावने हैं। मालवी भाषा का अपना एक लालित्य है। उनकी फागों में निहित है- देवर भाभी की होली, भगवान राम और कृष्ण की होली, सभी सुन्दर बन पड़े हैं। फाग के माध्यम से अनन्त कथाओं का उल्लेख किया गया है, जो ज्ञान वर्धन के साथ ऐतिहासिक भी है। उनकी फागों ने सराबोर किया है तन को मन को- साधुवाद!

पंचम प्रसून स्वरूप में हम पाते हैं 'निमाड़ी फाग'। जिसे डॉ. श्रीराम परिहार साहब द्वारा लिखा गया है और श्री वसन्त निरगुणे साहब ने सगुण रूप में प्रतिपादित किया है। निमाड़ क्षेत्र इन्दौर संभाग का ही धार जनपद है। मांडू से नीचे दूर तक निमाड़ क्षेत्र फैला हुआ है। फसलों के समय में तो देखने से स्वर्ग सा लगता है। ऐसी माटी से फाग का फूट पड़ना सहज और स्वाभाविक है। परिहार साहब धन्य हैं। जिन गायकों से फागों का संकलन किया है उनके नाम दिये गये हैं, ससम्मान। श्री निरगुणे जी ने विविधता प्रस्तुत की है। उन्होंने जहाँ राम-कृष्ण का बाल रूप दर्शाया है वही ननद-भावज को रंग से भी रंगा है आमोद-प्रमोद की झलक दी है, वहीं निराकार का भी पुट देखते ही बनता है। लेखक और अनुवादक दोनों विद्वान बधाइयों के योग्य हैं।

समीक्षित कृति-**फाग साहित्य**
मध्यप्रदेश के जनपदों की फागें
प्रकाशक-**आदिवासी लोक कला अकादमी,**
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद
मूल्य-200/- वर्ष-2005

इस अंक के लेखक

डॉ. रामनिवास शर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला (पंजाब)

लखनलाल खरे, सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, कोलारस, शिवपुरी (मध्यप्रदेश)

डॉ. परशुराम विरही, भारतीय विद्यालय मार्ग, देवीपुरम्, शिवपुरी (मध्यप्रदेश)

डॉ. शिवनारायण यादव, प्राचार्य, कन्या महाविद्यालय, बड़वानी (मध्यप्रदेश)

डॉ. हरिमोहन पुरवार, बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई (उत्तरप्रदेश)

डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव, अनन्य कालोनी, सेंवढ़ा, दतिया (मध्यप्रदेश)

श्री राधाकृष्ण बावनिया, 59 प्रकाश नगर, धार (मध्यप्रदेश)

डॉ. आदित्य प्रसाद सिन्हा, हेसल, पोस्ट-हेहल, राँची (झारखण्ड)

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, 2, स्टेट बैंक कॉलोनी, देवास रोड, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

श्री रमेश पण्डित, 711, सुदामा नगर, इन्दौर (मध्यप्रदेश)

डॉ. रामनारायण सिंह मधुर, बारापत्थर, सिवनी (मध्यप्रदेश)

डॉ. अर्जुनदास केसरी, रार्बट्सगंज, सोनभद्र (उत्तरप्रदेश)

सुश्री रागिनी चतुर्वेदी, 230/1, डी-न्यू मेहदौरी, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)

प्रो. देवसिंह पोखरिया, आचार्य, हिन्दी विभाग, कुमाऊँनी विश्वविद्यालय,एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराँचल)

श्री गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त, ई-डी.-25, विद्युत मण्डल कॉलोनी, रामपुर, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

डॉ. मंजूला जोशी, 28 सांईनाथ कालोनी, ब्लॉक-ए, बड़वानी (मध्यप्रदेश)

प्रो. गुलाब डाबर, शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, बड़वानी (मध्यप्रदेश)

रमेश चन्द्र तोमर 'निमाड़ी', दवाना, तहसील-ठीकरी, बड़वानी, (मध्यप्रदेश)

श्री अश्विनी केशरवानी, राघव, डागा कालोनी, चापा (छत्तीसगढ़)

श्री वसन्त निरगुणे, 7, उमा बिहार, राजहर्ष कालोनी, नयापुरा, कोलार रोड, भोपाल (मध्यप्रदेश)

डॉ. कमला गर्ग, अध्यक्ष, ललित कला संकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य, आई-3, राजवैद्य कालोनी, राजहर्ष, कोलार, भोपाल (मध्यप्रदेश)

श्री लोकेन्द्र सिंह नागर, रघुवंश नगर, भाण्डेर मार्ग, दतिया (मध्यप्रदेश)

डॉ. आशा खरे, सी-9-9695, वसंतकुंज, नई दिल्ली